1366

Bill No. 3/07-08

114.

2008-0273

भैषज्य संहिता - ~~Compiled~~ By अत्रिदेव विद्यालंकार - in Hindi.
(हिन्दी समिति ग्रन्थमाला - 119),
Lucknow, 1965.

Very slightly pinholes in the margin without affecting any reading matter.

(14)

मैषज्य संहिता

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला-संख्या—११९

भैषज्य संहिता

[आगम और प्रत्यक्ष दृष्टि]

प्रत्यक्षतो हि यद्दृष्टं शास्त्रदृष्टं च यद् भवेत् ।
समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्धनम् ॥
——सु० शा० आ० ५।४८

लेखक
अत्रिदेव विद्यालंकार
भूतपूर्व अधीक्षक, आयुर्वेदिक फार्मेसी,
बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी

हिन्दी समिति, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९६५

मुद्रक
वीरेन्द्रनाथ घोष
माया प्रेस प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद-३

प्रकाशकीय

औषधि-ज्ञान का समावेश वेद में तो है किन्तु औषधियों के उपयोग के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं मिलता। बाद में एतद्विषयक ज्ञान के विकास के साथ-साथ नयी कल्पनाएँ प्रारम्भ हुईं। रोग और रोगी की अपेक्षा से ही ये कल्पनाएँ करनी होती हैं। इसी को योजना या युक्ति की संज्ञा दी जाती है और जिस व्यक्ति को इसका ज्ञान होता है, वही श्रेष्ठ माना जाता है; क्योंकि सम्पूर्ण ओषध निर्माण शास्त्र इसी कल्पना पर आधारित है। औषध-ज्ञान कई भागों—द्रव्य परिचय ज्ञान, औषध निर्माण ज्ञान, औषध कर्म ज्ञान, चिकित्सा शास्त्र ज्ञान—में विभक्त है। इनमें औषध निर्माण ज्ञान का सम्बन्ध 'भैषज्य संहिता' से है।

प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेद शास्त्र के विद्वान् एवं अनुभवी चिकित्सक श्री अत्रिदेव विद्यालंकार ने भेषज-ज्ञान के आगम और क्रियात्मक दोनों पक्षों का सम्यक् अध्ययन बड़ी ही सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत करके इसे अत्यधिक उपयोगी बनाने का सफल प्रयास किया है। आशा है कि इस पुस्तक से आयुर्वेदिक चिकित्सा में व्यावहारिक रुचि रखने वाले विशेषज्ञ तथा अन्य सभी व्यक्ति समान रूप से लाभान्वित होंगे।

सुरेन्द्र तिवारी
सचिव, हिन्दी समिति

विषय-सूची

प्रथम भाग [आगम पक्ष]

द्वितीय भाग [क्रियात्मक पक्ष]

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय संस्कृति में वेदों का स्थान विशेष महत्त्व का है। वेद सबसे प्राचीन पुस्तक है। कुछ विद्वानों की यह भी मान्यता है कि वेद में सभी प्रकार के ज्ञान का मूल-स्रोत भी पाया जाता है। वैदिक वाङ्मय से उस समय के रहन-सहन तथा जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद में अनाजों के नामों में व्रीहि और यव का नाम आया है। अनाजों का उपयोग कूट या पीसकर किया जाता था। एक मंत्र में चक्की पीसने का उल्लेख आता है।[1] परन्तु अन्य किसी प्रक्रिया का उल्लेख नहीं मिलता। वेद में देवताओं के सोमपान का उल्लेख है, परन्तु सोम क्या था; इसको किस प्रकार से पीने के योग्य बनाते थे, इस विषय में अधिक प्रकाश नहीं मिलता।

ब्राह्मण ग्रन्थों में सोमपान की प्रक्रिया विस्तार से दी है। इसमें सोम को जंगल से लाने और उसे धोकर तथा कूट कर सोमरस निकालने का उल्लेख है।[2] इसके अतिरिक्त और किसी प्रक्रिया का उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु इस सोमपान-विधि में कुछ बातें स्पष्ट हो जाती हैं। इनमें एक बात यह है कि सोम को रखने के लिए एक फलक होता था; कूटने के लिए दो तख्ते होते थे; जिनकी लम्बाई ३६ अंगुल और

---

१. ऋग्वेद ३।५७।२०. (व्रीहिर्यवश्च भेषजौ)।

२. (क) ऋग्वेद का सारा नवम मण्डल जिसमें ११४ सूक्त हैं; सोम से भरा है; सोम को औषधियों का राजा कहा है; (सोम औषधिनामधिराजा–गोपथ १।१७): यह पर्वत की चोटी पर होती है (श्रृंगे शिशानो ऊर्षति–ऋ० ९।५।२)। सोम मुंजवान पर्वत होती है (सोमस्येव मौंजवतस्य भक्षः––ऋ० १०।३४।१) मौंजवान की पहिचान हिन्दुकुश पर्वत की श्रृंखला से की जाती है, जो काबुल तक चली गई है। वंक्षु नदी के दक्षिण में गलचा भाषा-भाषी मुंजवान क्षेत्र से की जाती है। देखिये, भैषज्य कल्पना––पृष्ठ ८, ९

(ख) चक्की पीसने का स्पष्ट उल्लेख नहीं –पत्थर से कूटना–दरड़ा करना ही अर्थ निकलता है; 'उपलप्रेक्षणि' शब्द है।

चौड़ाई १८ अंगुल होती थी। यदि ये दोनों तख्ते सड़ा के रक्खे जायें तो समचतुष्कोण बनता था। इन तख्तों को **'अभिस्रवण'** कहते थे। कूटने के लिये **ग्रावा** थे। ये ग्रावा पत्थर के होते थे। इनका ऊपर का हिस्सा पतला और नीचे का मोटा होता था। कूटते समय मंत्र पढ़ते हुए थोड़ा-थोड़ा जल डाला जाता था। कूटी हुई सोम को रखने के लिये **'आधवनीय'** नामक पात्र होता था। यह पात्र मिट्टी या धातु का बना होता था।[1] इस पात्र में रख कर सोम को पानी में अच्छी प्रकार से घोला जाता था। जब सोम-वल्ली अच्छी प्रकार घुल जाये तब इसको निचोड़ कर शेष भाग को बाहर निकाल दिया जाता था। इस भाग को (फोक) **ऋजीष** कहते हैं। छानने के वस्त्र का नाम **दशा पवित्र** था। इस छलनी में से सोम को छाना जाता था। छानने की विधि वैसी ही थी जैसे कि ऊपर लटकते हुए घड़े में से एक-एक बूँद जल नीचे शिवलिंग पर गिरता है। अर्थात् दशा में एक छेद करके उसमें कुशा की बनी पवित्री लगा देते थे और उसमें से एक-एक बूँद स्वतः गिरता था। दबाकर अंगुलियों से नहीं निकाला जाता था। कुशा के स्थान पर ऊन का धागा या ऊन की बत्ती भी लगा दी जाती थी। नीचे टपकते हुए सोमरस को पात्र में एकत्र कर लिया जाता था। जिस पात्र में सोम एकत्र करते थे, उसे **ग्रह** या **चामस** कहते थे।

सोम-पान-विधि भैषज्य कल्पना की **स्वरस** विधि ही है। इसमें औषधि का पूरा रस आ जाता है। इस विधि के सिवाय अन्य किसी कल्पना का उल्लेख वेद में नहीं मिलता। वेद में औषधियों का उल्लेख है। परन्तु उनका उपयोग किस प्रकार करना है, इसका कोई निर्देश नहीं है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि औषधियाँ स्वतन्त्र रूप में अलग-अलग ही बरती जाती थी। दो या अधिक औषधियों को मिलाकर देने की प्रथा बाद की है (भारतवर्ष में दाल-चावल, दाल-रोटी, रोटी-शाक मिला कर खाने की प्रथा जितनी अधिक मिलती है; पश्चिमी देशों में उतनी नहीं। वे चावल अलग खायेंगे और दाल, शाक अलग)। वेद में सब वनस्पतियों का उपयोग अलग-अलग रूप में है, मिलाकर नहीं (इसी से कुछ वैद्य यह मानते हैं कि औषधियों को मिलाकर न बरतें। एक एक को अलग ही बरतें) परन्तु यह ज्ञान की प्रथम अवस्था है।

वेद में उल्लेख है कि जिस प्रकार समिति में बहुत से लोग राजा के चारों ओर एकत्र होते हैं, उसी प्रकार जिसको बहुत सी औषधियों का ज्ञान है; (जिसके चारों ओर बहुत सी औषधियाँ एकत्र रहती हैं) वही मेधावी भिषक् है और वही रोगों का नाश कर

---

१. सुश्रुत चिकित्सा० अ० २६ एवं चरक चिकि० अ० १. सोमोनामौषधि राजा पञ्चदश पर्वा सोम इव हीयते वर्धते च।

सकता है (ऋ० १०।९७।६)। एक दूसरे मंत्र में औषधियों को माता नाम से स्मरण किया है (ऋ० १०।९७।४)।

इस प्रकार से औषधि-ज्ञान का वेद से पता चलता है। परन्तु इनका उपयोग किस प्रकार से होता था, इसका स्पष्टीकरण नहीं मिलता। गुग्गुलु की गन्ध के विषय में लिखा है कि इसकी गन्ध 'सुरभि' होती है (अथर्व० १९।३८।१)। यह गन्ध गुग्गुलु के जलाने से ही मिलती है। गुग्गुलु की गन्ध से कृमियों के भगाने का उल्लेख है (अथर्व० ४।३७।३)। परन्तु इस प्रकार के वचन बहुत कम हैं। रोहिणी वनस्पति के लिए लिखा है कि यह टूटी अस्थि को जोड़ती है (अथर्व० ४।१२)। परन्तु इसके उपयोग के विषय में कुछ भी निर्देश नहीं मिलता। इसी प्रकार लाक्षा का उपयोग घावों के भरने में (अ० ५।५।५) होता था। इसको पिलाया जाता था (अथर्व० ५।५।२)। कैसे पिलाया जाता था; इसका स्पष्ट निर्देश नहीं है (छाती से रक्त आने पर लाक्षा का उपयोग चरक में भी है)।

भेषज और औषधि में भेद—वैदिक वाङमय में इन दोनों शब्दों के अर्थों में कोई भेद नहीं प्रतीत होता। भेषज से ही भिषक् बनता है। वेद में वैद्य या चिकित्सक के लिए भिषक् शब्द ही मिलता है। परन्तु काश्यप संहिता में भेषज और औषध इन दोनों शब्दो के अर्थों में भेद बताया गया है। उसके अनुसार बलि, होम, स्वस्त्ययन, शान्ति कर्म आदि उपाय भेषज हैं। औषध शब्द का सम्बन्ध शरीर के दोषों का शमन करने वाली सोंठ आदि से है। चरक संहिता में प्रथम प्रकार की भेषज को **दैव व्यपाश्रय** चिकित्सा कहा गया है, और दूसरी प्रकार की औषध को **युक्ति व्यपाश्रय** चिकित्सा नाम दिया गया है। परन्तु वैदिक वाङ्मय में ऐसा कोई भेद नहीं किया गया है।

इसी प्रकार **आहार** और **औषध** इन दो शब्दों में भी बाद में भेद माना जाने लगा है। चरक के टीकाकार चक्रपाणिदत्त के अनुसार रस प्रधान द्रव्य आहार है और वीर्यप्रधान द्रव्य औषध है। आम अपने रस से कार्य करता है इस लिये वह आहार है। सोंठ अपने वीर्य से काम करता है इसलिये औषध है। वीर्य भी क्रिया भेद के अनुसार मृदु, मध्य और तीक्ष्ण तीन प्रकार का है।

भेषज एवं औषधि तथा आहार एवं औषध के ये भेद पिछले ग्रन्थों में ही मिलते हैं। वैदिक वाङमय में प्रक्रिया एवं नामकरण सरल है। बाद में जैसे-जैसे ज्ञान का विकास होता गया, नयी नयी कल्पनाएँ प्रारम्भ होने लगीं। चरक संहिता में स्वरस, कल्क, शृत कषाय, शीत कषाय और फाण्ट, ये पाँच ही कल्पनाएँ मिलती हैं। आसव-अरिष्ट, वर्त्ति, चूर्ण आदि कल्पनाओं के रूप में औषधियों का उपयोग चरक संहिता में है, परन्तु उन सब का समावेश इन्हीं पाँच कल्पनाओं में करना होता है। ये कल्पनाएँ

रोग और रोगी की अपेक्षा से ही करनी होती हैं—सब कल्पनाओं का उपयोग सब अवस्था में नहीं किया जा सकता।[1]

उदाहरण के लिये मण्डूकपर्णी या ब्राह्मी का स्वरस मेधावर्धक गुण के लिए जितना उपयोगी है; उतना इनका चूर्ण उपयोगी नहीं। आदी का रस आँख में लगाने या नासिका में डालने से जितनी जल्दी मूर्च्छा को दूर कर चेतनता लाता है, उतना इसका चूर्ण नहीं। दूध के साथ मुलैहठी अथवा अश्वगन्धा का चूर्ण जितना वीर्यवर्धक है, उतना अश्वगन्धा का क्षाय या अरिष्ट नहीं। इस लिये कल्पना का विचार रोगी और रोग दोनों की दृष्टि से करना होता है। इसी विचार का नाम **योजना** या **युक्ति** है। इस योजना या युक्ति को जानने वाले व्यक्ति का स्थान सबसे ऊँचा है, जैसा अत्रिपुत्र ने कहा है—

मात्रा कालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठिता।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्य ज्ञानवतां सदा।—चरक सूत्र० अ० २।१६

कल्पना—का अर्थ औषध की शक्ति का निर्माण करना है। उदाहरण के लिए मिर्च में तीक्ष्ण वीर्य है। यह वीर्य, जब तक वह सम्पूर्ण है, कार्य नहीं कर पाता। इसी मिर्च को पीस कर बारीक चूर्ण कर जब नाक में सुंघाते या आहार में डालते हैं; तो इसके तीक्ष्ण-उष्ण वीर्य एवं कटु रस का अनुभव होता है। चूर्ण कल्पना ने इसकी शक्ति का निर्माण किया या उसकी शक्ति को स्पष्ट कर दिया। इसी से चक्रपाणिदत्त ने कहा है कि—

"शक्ति विशेष कल्पनार्थं च कल्पना क्रियते"—चक्रपाणिदत्त चरक सू० अ० ४. शक्ति विशेष की कल्पना करने के लिए ही कल्पना की जाती है। इसी कल्पना के आधार पर सारा औषध निर्माण शास्त्र आश्रित है। औषध ज्ञान स्वयं कई भागों विभक्त है, यथा—

१. द्रव्य परिचय ज्ञान
२. औषध निर्माण ज्ञान
३. औषध कर्म ज्ञान
४. चिकित्सा शास्त्र ज्ञान

इनमें औषध निर्माण ज्ञान का ही सम्बन्ध भैषज्य संहिता से है। इसके साथ

---

१. **कषाय कल्पना व्याध्यातुर बलापेक्षिणी, न त्वेवं सर्वाणि सर्वत्रोपयोगीनि भवन्ति। चरक**

सम्बन्धित आवश्यक रूप में औषध कर्म ज्ञान और चिकित्साशास्त्र ज्ञान का उल्लेख किया गया है।

वैदिक काल में औषध निर्माण का कार्य स्वरस निकालने तक ही सीमित जान पड़ता है। वैदिक वाङमय में एक सौ से अधिक वनस्पतियों का उल्लेख है। अपामार्ग, कूष्ठ, पीपल, गुग्गुलु, सोम, रोहिणी, पिप्पली आदि के रोगहर गुणों का भी निर्देश है।[1] परन्तु इन औषधियों का व्यवहार किस रूप में होता था, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। कई वनस्पतियाँ ताबीज के रूप में बाँधी जाती थीं। वनस्पतियों से बाँधने के लिये बनी वस्तु को '**मणि**' नाम दिया गया है। इनको भुजा या गले में डाला जाता है। चरक संहिता में अत्रिपुत्र ने कुमार को मणि धारण कराने के लिए कहा है। **मणयश्च धारणीयाः**–(शा० अ० ८)। ये मणियाँ भी वनस्पति से बनी होती थी। वैदिक वाङमय में **अस्तृतमणि** (अथर्व० १९।४६); **औदुम्बरमणि** (१९।३१); **जंगिड़मणि** (अथर्व० १९।३४ : १९।३५) : **दर्भमणि** (अथर्व० १९।२८) आदि कई मणियों का उल्लेख मिलता है। कई औषधियों से मार्जन किया जाता था (दाभ या कुशा आज भी मार्जन के रूप में बरती जाती है)। मुख्यतः वैदिक काल में वनस्पतियों का उपयोग खाने या लगाने के लिए ही होता था। अस्थिसन्धान करने वाली वनस्पति का तो उपयोग बाहर लगाने में ही दीखता है। लगाना पीसने (कल्क) से ही सम्भव है। इसलिये स्पष्ट है कि औषध निर्माण का प्रारम्भ उसका रस निकाल कर या पीस कर कल्क के रूप में हुआ है।

स्वरस (रस) या कल्क (पीसना) इन दो कल्पों के अतिरिक्त कोई तीसरा कल्प भी वैदिक काल में प्रचलित था, यह जानने का कोई साधन हमारे पास नहीं है। आयुर्वेद की '**पंचविध कषाय कल्पना**' यह इन्हीं दो कल्पों का विकसित रूप ही समझना चाहिए।[2]

कल्पों का विकास क्रम—औषध द्रव्य को तत्काल कूट कर निकाला हुआ रस अथवा पीस कर बनाया कल्क आठ-दस घण्टे में बिगड़ने लगता है। अतः प्रति बार नया बनाने की आवश्यकता प्रतीत होती है। क्वाथ, हिम तथा फाण्ट में यही बात है। इस लिए ऐसे उपाय ढूंढ़े गये जिनमें रोगी और वैद्य दोनों को सुगमता रहे। चूर्ण कल्प

---

१. देखिये : 'वेदों में आयुर्वेद' पुस्तक—श्री रामगोपाल शास्त्री कृत :

२. वैद्य जुगतराम शंकर प्रसाद; संचालक—झण्डू फार्मास्युटिकल वर्क्स—बम्बई के उपोद्घात के आधार पर।

भी इसीलिए निकाला गया। इसमें वस्तु को सुखा कर कूट लिया जाता है। इसमें औषध के स्वाभाविक रस बहुत अंश तक बने रहते हैं।

कल्पों का मुख्य लाभ--

अल्पस्यापि महार्थत्वं प्रभूतस्याल्प कर्मताम्।
कुर्यात् संश्लेष विश्लेष काल संस्कार युक्तिभिः॥--चरक० क० १२।५२

थोड़ी वस्तु भी बहुत काम कर सके (आँवले के चूर्ण को आँवले के रस की २१ या अधिक भावना देने से उत्तम बलवर्धक हो जाता है); बहुत बड़ी मात्रा भी थोड़ा काम करे (दन्ती बीज को निम्बू के रस से बहुत बार भावित करने से उसका विरेचन एवं तीक्ष्ण गुण कम हो जाता है); बहुत सी औषधियाँ कुछ दिनों तक रखने के बाद प्रयोग में लायी जाती हैं (**पश्चात् जात रसं पिबेत्**)। संस्कार से वस्तु के कल्प में गुण बदल जाता है; दही शोथ करता है, परन्तु इसका बना तक्र शोथनाशक है।

कल्पों का विचार रोगी की प्रकृति-दोष-काल आदि का विचार करके निर्णय किया जाता था। इस विषय में बौद्ध साहित्य का सुन्दर उपाख्यान है। इसके अनुसार--

भगवान बुद्ध का शरीर दोषग्रस्त था। उस समय भगवान बुद्ध ने जुलाब (विरेचन) लेने का विचार किया। इसके लिए आनन्द ने जीवक के पास जाकर भगवान बुद्ध की इच्छा को बताया। जीवक ने कहा--भन्ते! भगवान के शरीर को कुछ दिन स्निग्ध करो (स्नेह न करो)। कुछ दिनों पीछे आनन्द ने तथागत का शरीर स्निग्ध होने की सूचना दी। जीवक ने सोचा कि भगवान बुद्ध को मामूली जुलाब देना मेरे जैसे बड़े वैद्य के लिए योग्य नहीं है। इस लिए तीन उत्पलहस्तों को नाना औषधियों से भावित करके स्वयं भगवान के पास ले कर गया और कहा भन्ते! इस पहले उत्पलहस्त को भगवान सूँघे। इससे आप को दस बार दस्त होंगे। इस दूसरे उत्पल हस्त को सूँघने से फिर दस बार शौच आयेगा और तीसरे उत्पलहस्त के सूँघने से भी।

औषध देने के पीछे जीवक को सूझा कि तथागत का शरीर दोषग्रस्त है। इस लिये तीस दस्त नहीं होंगे। एक कम तीस होंगे। विरेचन होने पर जब भगवान गरम पानी से स्नान करेंगे तब एक और दस्त होगा।

चरक संहिता में भी यह कल्पना अभिपुत्र ने इसी प्रकार से दी है। इसके अनुसार 'मैनफल की पिप्पलियों को मैनफल के कषाय से इक्कीस बार भावित करके' इसका बहुत ही सूक्ष्म चूर्ण बना लें (**पुष्परजः प्रकाशेन**)। इस चूर्ण को ले जाकर सायंकाल तालाब में खिले किसी बड़े कमल के अन्दर छिटक आये। रात भर यह चूर्ण उसी में रहे। प्रातः फिर इस पर चूर्ण छिरक कर तोड़ लाये। इसके बाद रोगी को हल्दी की बनी

खिचड़ी, सैन्धव या दूध की लस्सी में गुड़, राब जो भी ठीक समझे, मिलाकर पेट भर पिलाये। पीछे इस पुष्प को सुँघाये। इससे वमन होता है। (चरक० कल्प० १।१९)।

इसी प्रकार विरेचक औषध को कमल पुष्प पर छिटक कर सुंघाने से विरेचन होता है। वाग्भट ने अष्टांग संग्रह में इस कल्पना को और अधिक विस्तृत किया। उसके अनुसार—

"एतेन सर्वमाल्यगन्ध प्रावरण पटा व्याख्याताः" —संग्रह-कल्प।

इस विधि से सब मालायें, सुगन्ध, ओढ़ने के उत्तरीय पट आदि को भी बनायें।[1]

मद्य कल्प

स्वरस कल्प के पीछे मद्य का ही कल्प मिलता है। वाल्मीकि रामायण में स्थान-स्थान पर मद्य के कल्पों का उल्लेख है। रावण की पानभूमि का वर्णन करते हुए कवि ने नाना प्रकार के निर्मल प्रसन्ना, सुरा, शर्करासव, माध्वीक, पुष्पासव, फलासव आदि का नाम दिया है।

इसी प्रकार किष्किन्धा काण्ड में भी वानरों के मधुपान का उल्लेख है। मधु-शहद न होकर एक प्रकार का मद्य है जो सम्भवतः महुवा (मधूक पुष्प) से तैयार होता था।

ये मद्य उस समय चिकित्सा में कितने उपयोगी थे; इसका कुछ भी उल्लेख वाल्मीकी रामायण से पता नहीं चलता, परन्तु आमोद की वस्तु अवश्य थी। इस प्रक्रिया में सन्धान प्रक्रिया मुख्य है। जिन वस्तुओं में मादक गुण नहीं है, उनमें भी सन्धान प्रक्रिया से मादक गुण आ जाता है। यह गुण नया गुण होता है। शालि चावल, साँवक आदि का गुड़ आदि से सन्धान करने पर इनमें एक नया गुण, नया स्वाद आ जाता है। इसके गुण पहले से भिन्न होते हैं। इस प्रक्रिया में औषधि के गुण भी देर तक सुरक्षित रहते हैं; और यह कल्प जल्दी बिगड़ता नहीं (इसी से अरिष्ट कहा जाता है)[2]

---

१. सुगन्धित प्रावार-उत्तरीय पट का उल्लेख मृच्छकटिक में आता है।

२. आज कल जो टिंचर अथवा लिकर बनाये जाते हैं, वे भी इसी प्रक्रिया के अन्दर ही आते हैं। इनमें प्राचीन अरिष्ठ-आसवों की कल्पना में भेद इतना ही है, कि इनमें अलकोहल पृथक् से मिलाया जाता है। आयुर्वेद की अरिष्ट-आसव कल्पना में पहले अलकोहल या मद्य तैयार किया जाता है। पीछे से यह मद्य औषधियों का रस लेता है। आजकल इसकी दो विधियाँ हैं—१—मैंसरेशन—इसमें औषध द्रव्यों को कूट कर अलकोहल में सात दिन भिगोने के बाद छान लेते हैं। २—परकोलेशन विधि—इसमें शंकु के आकार के पात्र में अल्कोहल में भिगोये द्रव्यों को रख देते हैं। इसके सँकरे मुख में लगे कार्क में अलिहकोल थोड़ा-थोड़ा टपकता रहता है; और जब निचले द्रव में औषध का स्वाद आना बन्द हो जाता है, तब बन्द कर देते हैं।

पाणिनि के सूत्रों में कषाय और अभिषव शब्द आते हैं। पाणिनि के अनुसार कषाय कई प्रकार के होते थे। **अभिषव**—आसूत करने के लिये औषधियों में पहले जो खमीर उठाया जाता था, उसका नाम **अभिषव** है। जब पूरी तरह उठ जाता था, तब आसाव्य कहते थे (पा० ३।१।१२६)। अर्थात् अब वह ऐसी स्थिति में आ गया कि अब इसको चुआया जा सकता है।

पाणिनि ने मधुपान से सम्बन्धित एक विशेष मुहावरे का प्रयोग दिया है; **'कर्णेहत्य पिबति'—अर्थात् तलछट तक पी गया, फिर भी मन नहीं भरा।**

मद्य चुआने की भट्टी को आसुति कहते थे (५।२।११२), इसका स्वामी आसुति वाल कहलाता था; भबके को शुण्डिक (४।३।७६) कहते थे। भबके से मद्य खींचने वाला शौण्डिक (४।३।७६) कहलाता था। पाणिनि काल में मैरेय और कापिशायन ये दो मद्य बहुत प्रचलित थे। **अंगानि मैरेय** ((६।२।७०) सूत्र से पता चलता है कि पाणिनि को पता था कि मैरेय किन-किन वस्तुओं से बनता है।

पाणिनि के सूत्रों में तोल-मान का भी अच्छा उल्लेख है। भैषज्य कल्पों में तोल या मान मुख्य वस्तु है। शूर्प, गोणी, भार, वाह, निष्क आदि मान का उल्लेख पाणिनि के सूत्रों में मिलता है। शूर्प-छाज होता है। छाज का एक परिमाण होता है। गोणी का भी एक माप होता है। कुम्हार जो गोण गधों पर लादता है; वह एक माप की होती है। उसमें गेहूँ आदि वस्तु जो भरी होती है; उसका मूल्य गोण या गाणी के हिसाब से ही होता था। यही बात भार और वाह की है, खेती कटने में काटने वाले को अनाज का एक भार मजदूरी में मिलता है; जो लगभग दो मन का होता है। वाह का भी एक निश्चित माप था। पाणिनि के सूत्रों में इन मापों-तोलों का उल्लेख पाया जाता है। पाणिनि के सूत्रों से पता चलता है कि मान को निश्चित करने का नाम नन्द ने प्रारम्भ किया था।[1]

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भेषज कल्पों का प्रारम्भ जो एक बूँद या पतली रेखे के रूप में प्रारम्भ हुआ था बाद में धीरे-धीरे बढ़ कर क्रमशः विकसित होता गया। स्वरस कल्पना को ही पीछे क्वाथ या चूर्ण कल्पों में काम में लाया जाने लगा। इन्हीं से आसव, अरिष्ट, आदि कल्प बनने प्रारम्भ हो गये। यह समय ईसा से लगभग चार सौ वर्ष से दो सौ वर्ष पूर्व तक था। इसके बाद कुषाण काल (२१० ई० पूर्व से १७६ ई० पश्चात) आता है। इस समय की आयुर्वेद संहिता "चरक संहिता" प्रसिद्ध है, जिसमें भैषज्य निर्माण

---

१. देखिये—'आयुर्वेद का बृहत् इतिहास' में पृष्ठ १३८

प्रक्रिया को ठोस रूप दिया गया। इसमें औषधि लेने के विषय में प्रायः सब आवश्यक सूचनाएँ दी हैं। वास्तव में भैषज्य संहिता का क्रमबद्ध रूप इसी से प्रारम्भ होता है ।

औषधि ग्रहण सम्बन्धी विचार

"मंगलाचारः कल्याण वृत्तः शुचिः शुक्लवासाः संपूज्य देवता।
अश्विनौ गौ ब्राह्मणांश्च प्राङमुखः उदङमुखो वा गृह्णीयात्।। --चरक क० अ० १

वेदों में औषधि के लिए मातर शब्द आया है (ऋ० १०।९७।४); माता की तरह रक्षा करने वाली हैं। जिसके चारों ओर औषधियाँ एकत्र रहती हैं; (जो औषधियों को जानता है) वही उत्तम भिषक् है (ऋ० १०।९७।६), औषधियाँ राजा सोम के साथ संवाद करती हैं कि हे सोम राजन्! जिस रोगी को औषधि जानने वाला वैद्य हमको देता है, उस रोगी को हम रोग से पार कर देती हैं (ऋ० १०।९७।२२) ।

औषधियों में चेतना को अन्तःसुप्त अवस्था में माना गया है। जिस प्रकार गूलर या वट का पुष्प अन्तःमुख रहता है, स्पष्ट दीखता नहीं, उसी प्रकार इनकी चेतना भी अन्तःसुप्त रूप में मानी गयी है। परन्तु इनमें चेतनता का अनुभव किया गया है। इसी से इनके लिए वेद में माता आदि उच्च कोटि के विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं। ये भी पुरुष या अन्य चेतन प्राणियों की भाँति दुःख-सुख का अनुभव करती हैं। इसी से कहा गया है कि—

धत्ते भरं कुसुम पत्र फलावलीनां
धर्मव्यथां वहति शीतभवा रुजश्च ।
यो देह मर्पयति चान्य सुखस्य हेतोः
तस्मै वदान्य गुरवे तरवे नमोऽस्तु ।। --भामिनीविलास

जो वृक्ष पत्ते, फूल, फल आदि के बोझ को सिर पर उठाता है; धूप और सरदी-जन्य पीड़ा का सहन रात-दिन करता है और दूसरे के सुख के लिए अपने शरीर का त्याग कर देता है, ऐसे वंदनीय वृक्ष को नमस्कार है। यह प्राचीन उदात्त भावना वनस्पतियों के लिए है।

इसीलिए वनस्पति या वृक्ष का कोई अंग लेने के लिए विशेष पूजा करने का विधान बताया गया है। इसके अनुसार—मंगल आचार, कल्याण बरताव-व्यवहार, शुद्ध मन, पवित्र, श्वेत वस्त्र धारण किये, देवता, अश्विनौ, गौ, ब्राह्मण की पूजा करके, उपवास रखकर, पूर्व या उत्तर दिशा की वनस्पति का संग्रह करना चाहिए। इसको

लाकर योग्य गुणशाली पात्रों में रखना चाहिए। जिन घरों में औषधियाँ रक्खी जायें, उनके द्वार उत्तर की ओर होने चाहिए। वायु का सीधा प्रवेश इनमें न हो; परन्तु वायु आती जाती रहे। इन घरों में सदा पुष्प, धूप, उपहार, पूजा-बलिकर्म करना रहे। इन स्थानों को अग्नि, जल, सील-धुँवा-धूल, चूहे, पशु आदि से बचाये, औषधियों को भली प्रकार ढाँक कर छींकों पर लटका कर रखना चाहिए।[1]

औषधि संग्रह के लिये स्थान—जो देश समतल भूमिवाला हो; जहाँ की मिट्टी अच्छी चिकनी, नरम, मधुर रस वाली तथा काले-पीले (लाल) रंग की हो; जहाँ जल की अनुकूलता हो; जहाँ कुश और रोहिष घास की प्रचुरता हो, जहाँ भर काल (ऋतु) के अनुसार छाया, शीत, धूप, वायु, और जल (वर्षा) से सेवित हो, जहाँ अभी जल्द जमीन न जोती गयी हो; श्मशान, चैत्य, वधस्थान, बड़ा खड्डा, बाँवी जहाँ न हो; ऐसे पवित्र, स्वच्छ, जांगल या साधारण देश में उत्पन्न हुई; कीड़े, विष, शस्त्र, कड़ी धूप, जोर की हवा, जोर की वर्षा, अग्नि आदि से बची; (पाले से मरी औषधि—**जन्तुवान्हि हिमैर्व्याप्ताः**—(शार्ङ्गधर पु० अ० १) तंग स्थान में या मार्ग में जो उत्पन्न न हुई हो; अन्य बड़े वृक्षों से ढंकी न हो, जिसकी जड़ें जमीन में गहरी गयी हों; जो बड़ी हो, पुष्ट हो, जिसके सम्पूर्ण रस-वर्ण-गन्ध, और प्रमाण उत्पन्न हो गये हों; तथा जो अपनी ऋतु में उत्पन्न हुई हो ऐसी औषधि को लेना चाहिए।[2]

मन की पवित्रता—औषधि लेते समय पवित्र होकर, श्वेत वस्त्र धारण कर; शुद्ध मन से, श्रद्धापूर्वक, इष्ट देव, अश्विनी कुमार, गाय-ब्राह्मणों का मानसिक पूजन करके, पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके औषधि का ग्रहण करे (**अथ कल्याणचरितः श्राद्ध शुचिरुपोषितः। गृह्णीयादौषधं सुस्थं स्थित काले च कल्पयेत्**—(अ० सं० क० ६)

उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न औषधियों के शाखा और पत्र जो पुराने न हों (मध्यमावस्था में हों—पीले न पड़ गये हों) ; वे वर्षा और वसन्त में लेने चाहिए। ग्रीष्म या शिशिर ऋतु में जब औषधियों के पत्ते गिर गये हों या गिर कर नये आ गये हों, उस समय उनके मूल लेने चाहिए। शरद् ऋतु में (वर्षा के बाद-शीत के पूर्व में) छाल, कंद और क्षीर लेने चाहिए। हेमन्त में वृक्षों का सार (हीर-मध्य का ठोस काष्ठ) लेना चाहिए। फूल और फल जिस ऋतु में होते हों, उस ऋतु में लेने चाहिए।

सुश्रुत का कहना है कि कई आचार्यों के कथनानुसार प्रावृड् ऋतु में मूल, वर्षा में पत्र, शरद् ऋतु में छाल, वसन्त में सार, और ग्रीष्म में फल लेने चाहिए। परन्तु यह

---

१. संग्रह सू० अ० ३९..
२. चरक० क० अ० १; अ० हृ० क० अ० ६

मत ठीक नहीं है। जो औषधियाँ सौम्य हैं (मधुर -तिक्त-कषाय रस वाली हैं), उनको सौम्य ऋतु में (वर्षा-शरद्-हेमन्त में) संग्रह करना चाहिए, और जो आग्नेय (कटु, अम्ल, लवण, रसवाली) हों, उनको आग्नेय ऋतु में (वसन्त, ग्रीष्म और प्रावृड्) में लेना चाहिए। सौम्य औषधियाँ सोमगुण वाली भूमि से और सौम्य ऋतुओं में लेने से मधुर, स्निग्ध और अधिक शीत गुणवाली होती हैं। इस प्रकार आग्नेय औषधियाँ आग्नेय गुण वाली भूमि से आग्नेय ऋतुओं में लेने से अधिक गुणशाली होती हैं। समान गुणवाली भूमि से समान गुण वाली ऋतु में ली हुई औषधि अव्यापन्न (अदूषित) तथा अधिक रस और वीर्य वाली होती है। शार्ङ्गधर का कहना है कि वमन तथा विरेचन के लिए वसन्त के अन्त में औषधियाँ लेनी चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य औषधियाँ शरत्काल में और ताजी लेनी चाहिए। हेमन्त में लिया हुआ कन्द, शिशिर में लिया हुआ मूल; वसन्त में लिया हुआ फूल; ग्रीष्म में लिया पत्र अधिक गुणकारी होता है। शरत्काल में लिये पाँचों अंग गुण देने वाले होते हैं (राजनिघण्टु अ० २)। सब कार्यों के लिए सब प्रकार के द्रव्य नये-ताजे सरस लेने चाहिए। यदि नये न मिलें तो जिनको लाये एक साल न बीता हो; लेना चाहिए। जिन द्रव्यों के स्वाभाविक गन्ध, रस, वर्ण आदि न बदले हों ऐसा ताजा या एक साल के अन्दर का लाया हुआ द्रव्य काम में लाना चाहिए।[1]

पृथ्वी और जल के गुणों की अधिकता वाली भूमि से विरेचन (अधोभाग हर) द्रव्य लेने चाहिए। अग्नि, वायु और आकाश के गुणों की अधिकता वाली भूमि से वमन (ऊर्ध्व भाग हर) द्रव्य लेने चाहिए। पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के गुणों की अधिकता वाली भूमि से उभयतो भागहर द्रव्य लेने चाहिए। आकाश के गुणों की अधिकता वाली भूमि से संशमन द्रव्य लेने चाहिए। इस प्रकार लिये द्रव्य अधिक गुणशाली होते हैं।

भूमि परीक्षा—जो भूमि बड़े खड्डों, कंकड़ों, ठीकरों के टुकड़ों, बांबी वाली न हो; विशेष ऊँची नीची न हों; श्मशान, वधस्थान, देवालय की न हो; बालू या पत्थर वाली न हो; क्षार वाली न हो; फटने वाली न हो जिसमें पानी बहुत गहरा न हो; (जो जलाशय से बहुत दूर न हो); स्निग्ध-चिकनी मिट्टी वाली हो; जिसमें घास आदि सदा उगते हों, जो नरम स्थिर (वायु, जल आदि से जिसकी मिट्टी खिसकती न हो), और समतल हो; जिसकी मिट्टी काली, लाल, पीली हो, ऐसी भूमि की औषधि लेने में उत्तम होती है।

जो भूमि पत्थर वाली, स्थिर (कठिन), साँवले या काले रंग की तथा मोटे वृक्ष

---

१. सुश्रुत सूत्र० भूमि प्रविभा० अ०

और घास युक्त हो वह पृथ्वी के अधिक गुण वाली होती है। जो भूमि चिकनी, शीतल, निकट जलवाली, स्निग्ध गुण विशिष्ट, धान्य और तृणयुक्त कोमल वृक्षों की अधिकता वाली और श्वेत वर्ण वाली हो, वह जल के गुणों वाली होती है। जो भूमि नाना प्रकार के रंगों की मिट्टी वाली, छोटे छोटे और हल्के वजन के पत्थर वाली, कहीं कहीं पर छोटे छोटे वृक्ष और तृणाङ्करों वाली हो वह अग्नि महाभूत के गुणों की अधिकता वाली होती है। जो भूमि रूक्ष, भस्म, या गधे के जैसे रंग वाली और अधिकांश पतले, रूखे, कोटर-युक्त, थोड़े रस वाले वृक्षों से युक्त हो; उस भूमि को वायु के गुणों की अधिकता वाली जानना चाहिए। जो भूमि नरम, ऊँची, नीची, खड्डों वाली, अव्यक्त रस के (फीके) जल वाली, चारों ओर सारहीन वृक्षों वाली, बड़े पहाड़ों वाली और श्याम वर्ण की हो, उसको आकाश के गुणों की अधिकता वाली जाननी चाहिए।

देश-भूमि के भेद—अन्य प्रकार से भी आयुर्वेद ग्रन्थों में मिलते हैं। पंच महाभूतों की दृष्टि से भूमि परीक्षा औषधि संग्रह में मुख्य है,देश दृष्टि से भूमिका विभाग रहन-सहन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से देश तीन प्रकार का है—**जांगल, साधारण** और **आनूप**। इनमें—

जांगल देश दूर तक खुला मैदान जैसा; कदर, खैर, असन, अश्वकर्ण, धव, तिनिश, शाल, वेर, तिन्दूक, पीपल, बरगद, आदि वृक्षों से भरा; जेड, अर्जुन, शीशम आदि वृक्षों वाला होता है। इसमें कठोर, सूखी वायु के वातगर्त्त-बवण्डर बराबर चलते रहते हैं, इनसे छोटे-छोटे वृक्ष दोलायमान रहते हैं, निरन्तर मृगतृष्णा का भ्रम उड़ती हुई धूल-रेती उत्पन्न करती रहती है। यहाँ की रेती बारीक, कर्कश, कठोर होती है। बटेर, तीतर, चकोर इस भूमि में प्रायः रहते हैं। यहाँ के रहने वाले व्यक्ति प्रायः वात-पित्त बहुल, स्थिर, कठोर होते हैं, (जैसा राजस्थान में मारवाड़ या कच्छ का प्रदेश)।

आनूप देश में हिन्ताल, तमाल, नारियल, केले के जंगल बहुत होते हैं। नदी-नालों तथा समुद्र का किनारा पास होता है। ठण्डी वायु प्रायः बहती रहती है। नदियों में वेंत, जलवेंत, वीलो आदि सुन्दर झाड़ियाँ लगी होती हैं। पानी पास में मिलता है। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर नदियाँ मिलती हैं। पर्वतों एवं कुञ्जों, मन्द वायु से हिलते हुए वृक्षों तथा अनेक प्रकार के जंगली फूलों से इसके वन शोभित होते हैं। इस प्रदेश के वृक्ष स्निग्ध और विस्तृत प्रतान-शाखा प्रशाखा वाले होते हैं। इस देश में हंस, चक्रवाक, बलाका, नन्दीमुख, कादम्ब, मद्‌गु, पुण्डरीक, कोयली, मत्तकोकिल आदि पक्षी कलरव करते रहते हैं। यहाँ के लोग सुकुमार प्रकृति के होते हैं। इनकी प्रकृति प्रायः वात-कफ वाली होती है। (जैसा बंगाल, केरल, अण्डमन द्वीप)॥

साधारण देश में आनूप और जांगल दोनों देशों की वनस्पतियाँ, वृक्ष, पशु-पक्षी

मिलते हैं। यहाँ के लोग स्थिर-दृढ़ घटन वाले, कोमल-सुकुमार वर्ण के, साधारण गुण वाले होते हैं।[1]

वनस्पतियों पर ऋतु का प्रभाव बहुत पड़ता है। इसी से कहा गया है कि "जो वनस्पतियाँ समय पर अपनी ऋतु में उत्पन्न हुई हों, जिनमें रस-वीर्य-गन्ध सम्पूर्ण हो चुके हों; समय-धूप-अग्नि-जल- वायु-कृमि आदि से जो अदूषित हों; जिनकी गन्ध, रस, वर्ण, स्पर्श, प्रभाव सुरक्षित हो पूर्ण बना हो, उन वनस्पतियों का संग्रह करें।"

इसी के साथ मारक (जनपदोध्वंस) अवस्था में औषधियों के गुणों में अन्तर आ जाता है। यह परिवर्तन, वायु, पानी, देश और काल में परिवर्तन आने से होता है। इसी से अत्रिपुत्र ने अग्निवेश को सम्बोधन करते हुए कहा है—

"हे सौम्य ! यह देखा जाता है कि नक्षत्र, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि, दिशा आदि के जो प्राकृतिक गुण हैं, वे भी ऋतुओं में विकृत होने से बदल जाते हैं। भूमि में भी शीघ्र परिवर्तन हो जाता है, जिससे औषधियों के रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव भी पहले के समान गुण वाले नहीं रहते। इनके परिवर्तन से रोग होना निश्चित है। इसलिये हे सौम्य ! इनके रस-वीर्य-विपाक आदि नष्ट होने से पूर्व ही भूमि में विरसता आने से पहले ही इन औषधियों को उखाड़ कर संग्रह कर लेना चाहिए; जिससे कि इन वनस्पतियों का रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव ठीक बना रहे। हम जिनका भला करना चाहते हैं और जो हमारा भला करते हैं, उनके लिये इन वनस्पतियों के रस-वीर्य-विपाक-प्रभाव का उपयोग कर सकें। ठीक प्रकार से समय पर उखाड़ी और ठीक प्रकार से बनायी एवं अच्छी प्रकार बना कर दी हुई औषध के किसी मारकरोग का नष्ट करना कठिन नहीं होता।[2]

औषध लेते समय नक्षत्र आदि विचार—वैदिक क्रियाओं में तिथि, करण, मुहूर्त, नक्षत्र और योग इन पाँचों का विचार किया जाता था। अध्ययन विधि, पुत्रेष्टि आदि कर्मों में जिस प्रकार प्रशस्त मुहूर्त विचारा गया है, उसी प्रकार औषध लाने के लिये भी मुहूर्त, नक्षत्र का विचार किया गया है। मैनफल के संचय में कहा गया है—"मैनफल का संचय वसन्त और ग्रीष्म ऋतु के मध्य में, पुष्य, अश्विनी या मृगशिरा नक्षत्र में, मैत्र मुहूर्त और शुभकरण के समय करना चाहिए।[3] ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से पुष्य, अश्विनी नक्षत्र प्रायः औषध को लाने, प्रयोग करने में उत्तम माने गये हैं। चन्द्रमा को

---

१. चरक० कल्प० अ० १।८।९।१०.
२. चरक० विमान अ० ३।४
३. चरक० क० अ० १।१५

वनस्पतियों का स्वामी कहा है। यही सोम वनस्पतियों को रस से परिपूर्ण करता है। चन्द्रमा का शुभ नक्षत्र के साथ योग होने पर शुभ मुहूर्त्त में ली हुई औषध अवश्य प्रभाव-शाली होती है। इसी से नक्षत्र विचार किया गया है।[1]

औषध लाकर उसको सुरक्षित रखना—औषध द्रव्य लाने के पीछे उसको छाया में या मंदी धूप में सुखाना चाहिए। औषध रखने के पात्र—स्वच्छ तथा औषध रखने के उपयुक्त वस्तु के बने होने चाहिए (अम्ल द्रव्य लोह के पात्र में, लवण द्रव्य मिट्टी के पात्र में नहीं रखने चाहिए)। भारतवर्ष में वायु प्रायः उत्तर या पूर्व दिशा में बहती है। (उत्तरी भारत में विशेषकर), इसलिये इन घरों के द्वार भी उत्तर या पूर्व की ओर रखने को कहा गया है। भेषजागार धुँवा, धूल, धूप, अग्नि, जल, भाप, चूहा या चौपायों से बचा हो, वहाँ पर किसी प्रकार की नमी न रहे, शुष्क स्थान हो। औषध द्रव्यों को रखने के लिये पाट के थैले, मिट्टी के बरतन या जस्ता चढ़े लोहे के ढक्कनदार पात्र होने चाहिए। इन पात्रों को लकड़ी के तख्तों पर, बाँस पर लटका कर या छिक्कों में टाँग कर रखना चाहिए। भूमि पर नहीं रखना चाहिए (च० क० अ० १)।

किस प्रकार के द्रव्य लेने चाहिए—बेल के फल को छोड़कर अन्य सब फल ठीक पके हुए लेने चाहिए। बेल का फल कच्चा लेना चाहिए, क्योंकि वह विशेष गुणकारी होता है। जिस फल में कोई रोग हुआ हो, कीड़े पड़ गये हों, बहुत अधिक पका हो, बे-मौसम में हुआ हो, ठीक न पका हो, उसे नहीं लेना चाहिए। जो शाक कड़ा, ज्यादा पका, कीड़ा लगा, खराब भूमि में बेमौसम उगा हो; रसयुक्त न हुआ हो, सूख गया हो, उसे नहीं लेना चाहिए। जो धान्य हिम (पाला) अग्नि, अति गरमी, खराब वायु या सर्प आदि जहरीले प्राणियों की लाला से दूषित हो, जिसमें कीड़े पड़ गये हों, जो जल में डूबा हो, खराब जमीन में उत्पन्न हुआ हो, बेमौसम का हो, अन्य धान्य के साथ उत्पन्न हुआ हो; अति पुराना होने से हीन वीर्य बन गया हो, उसे नहीं लेना चाहिए। जो कन्द अति कच्चा, बिना ऋतु के उत्पन्न, अति पुराना, रोग और कीड़ा लगा हुआ हो, उसे नहीं लेना चाहिए। जो शाक बिना स्नेह (घी तेल) में छोंके बिना ही पका हो, कोमल न हो, जिसमें सम्पूर्ण रस न आया हो, उसे नहीं खाना चाहिए। मूली को छोड़ कर अन्य सूखा शाक नहीं खाना चाहिए।[2]

समय भेद से औषधियों की रखने की मर्यादा—ठीक बने अच्छे पात्र में सुरक्षित

---

१. विशेष मुहूर्त्त में औषध ली जाती है। इस सम्बन्ध में राजा प्रद्योत और जीवक सम्बन्धी विवरण 'आयुर्वेद का बृहत् इतिहास' पृष्ठ १०४ पर देखें।

२. सु० सू० अ० ४६; अ० सं० सू० अ० ७.

रखी हुई वनस्पति, यदि ज्यों की त्यों रखी रहे, एक वर्ष बाद गुणहीन हो जाती है। चूर्ण दो मास के बाद हीनवीर्य हो जाते हैं। गोलियाँ और अवलेह एक वर्ष बाद तथा औषध सिद्ध घृत या तैल सोलह मास बाद हीनवीर्य हो जाते हैं। आसव, अरिष्ट, भस्म तथा रस के योग्य जितने पुराने होते हैं, उतने ही अधिक वे गुणशाली होते हैं।[1]

यह नियम प्राचीनकाल का है। परन्तु आज पैकिंग, रिफ्रेजेटर, कोल्ड स्टोर्स आदि ऐसे नये-नये साधन निकल आये हैं जिनके द्वारा औषध या वस्तु को बहुत समय तक सुरक्षित रख सकते हैं। सहारनपुर जिले में मुसलमान नवाब या रईस आम की ऋतु में आमों को टहनी सहित कटवा कर शहद भरे मटकों में रखते थे। ये आम शीत ऋतु में काम में लेते थे। देश की हवा, ऋतु, रखने के पात्र आदि के ऊपर वस्तु के गुणों की सुरक्षा निर्भर करती है। यदि ठीक प्रकार से पैक हो; वायु का संचार न हो तो वस्तु नहीं बिगड़ती। शीत ऋतु में वस्तुएँ अधिक समय तक बनी रहती हैं। आर्द्र ऋतु की अपेक्षा शुष्क वायु में वस्तु अधिक गुणकारी रहती है। चूर्ण, वटी, अवलेह आदि शुष्क ऋतु में या शीत ऋतु में तैयार करने चाहिए।

औषध सेवन काल

औषध द्रव्य, औषध देने का उद्देश्य, और रोग इनका विचार करके भिन्न-भिन्न समयों में औषध सेवन कराया जाता है; सुश्रुत ने औषध सेवन के दस काल बताये हैं—

१. **अभक्त** (निरन्न)—प्रातःकाल सूर्योदय के कुछ बाद, खालीपेट औषध खायी जाये तो यह अभक्त औषध सेवन काल कहा जाता है। इस प्रकार सेवन की औषध अधिक गुणकारी होती है। बालक, वृद्ध, स्त्री, सुकुमार प्रकृति में इस प्रकार की गयी औषध ग्लानि या बल का क्षय करती है। ऐसी अवस्था में इनको मुरमुरे (चावलों के परमल) या सूखे भूने चने थोड़ी मात्रा में औषध के बाद तुरन्त दे देने चाहिए। मुरमुरे या चने खिला कर भी औषध दी जा सकती है।[2] शार्ङ्गधर के मत से पित्त और कफ की वृद्धि में वमन या विरेचन कराने या लेखन के लिये प्रायः प्रातः बिना कुछ खाये औषध सेवन करना चाहिए। प्रायः सब कषाय प्रातःकाल बिना कुछ खिलाये देने चाहिए। जो औषध पहले दिन खायी जाय, उसे आहार के पचने पर लेना चाहिए और औषध के पचने तक

---

१. शार्ङ्गधर—प्र० ख० अ० १.
२. सुश्रुत उत्तर अ० ६४, शार्ङ्गधर प्र० खं० अ० २.

अन्न न लेना चाहिए। इसे **अनन्न** या **अभक्त** कहते हैं (**यत्राहारे जीर्णे भेषजं, भेषजे जीर्णे चाहारः; तत् अनन्नम्—अभक्तं नाम-हेमाद्रि।**

२—**प्राग्भक्त**—औषध खिलाकर तुरन्त ऊपर से अन्न दिया जाये तो उसको प्राग्भक्त औषध भक्षणकाल कहते हैं। अन्न से पहली खाई औषध शीघ्र पचती है। बल हानि नहीं करती। अन्न के साथ मिल जाने से, वमन होकर बाहर नहीं आती। बालक, डरपोक, कृश और स्त्रियों को अन्न खाने के पहले औषध देनी चाहिए (**प्राग्भक्तं नाम यदनन्तर भक्तम्-वृद्ध वाग्भट**)। वृद्ध वाग्भट के मत से अपानवायु के विकारों में नाभि के नीचे के अवयवों को बल देने, उनके विकारों को शान्त करने तथा शरीर को पतला करने के लिए प्राग्भक्त औषध देनी चाहिए।[१]

३—**ऊधोभक्त**—अन्न खाने के बाद तत्काल जो औषध ली जाये, उसको ऊधोभक्त कहते हैं। अन्न खा कर ऊपर से ली हुई औषध नाभि के ऊपर के अवयवों में होने वाले रोगों को दूर करती है। उन अवयवों को बल देती है। अष्टांग संग्रह के मत से व्यान-वायु के विकारों में प्रातःकाल के भोजन के बाद और उदान वायु के विकारों में सायंकाल के भोजन के बाद औषध देनी चाहिए। ऊधोभक्त रूप में खाई हुई औषध शरीर को स्थूल करती है।[२]

४—**मध्येभक्त**—यदि आधा भोजन करके औषध ली जाये और फिर शेष आधा भोजन किया जाये, तो इसको मध्येभक्त औषध काल कहते हैं। इस प्रकार सेवन की हुई औषध शरीर के मध्य देह में (कोष्ठ और वक्ष) होने वाले रोगों को दूर करती है। वृद्ध वाग्भट के अनुसार समान वायु के विकार, कोष्ठ के रोग और पित्त के रोगों में मध्येभक्त औषध देनी चाहिए।[३]

५—**अन्तराभक्त**—यदि औषध प्रातः और सायंकाल के भोजन के बीच में ली जाये अर्थात् प्रातःकाल का भोजन जीर्ण होने के बाद औषध ली जाये और औषध जीर्ण होने के पीछे सायंकाल में भोजन किया जाये, तो यह अन्तराभक्त औषध काल है। इस प्रकार से सेवन की हुई औषध हृदय और मन को बल देती है, दीपन और पथ्य है। अन्तराभक्त औषध दीप्ताग्नि पुरुषों को और व्यान वायु के विकारों में दी जाती है।[४]

६—**सभक्त**—औषध यदि अन्न के साथ पका कर दी जाये या पकाये हुए अन्न

---

१. अ० सं० सू० अ० २३
२. अ० सं० सू० अ० २३; सू० उ० अ० ६४
३. अ० सं० सू० अ० २३, सू० उ० अ० ६४
४. वही

में मिलाकर दी जाये तो इसको सभक्त औषध काल कहते हैं। सभक्त औषध दुर्बल-स्त्री-बालक-सुकुमार-वृद्ध और औषध लेना पसन्द न करने वालों को, अरुचि में और सर्वांग-गत रोगों में देनी चाहिए।[१]

७—**सामुद्ग**—का अर्थ सम्पुट है। जिस प्रकार मोती दो सिप्पीयों में बन्द रहता है, उसी प्रकार औषध को भी दो भोजनों के बीच में रख कर देना सामुद्ग है। जो पाचन, अवलेह, चूर्ण आदि औषध लघु और अल्प अन्न देकर दी जाये, और अन्त में फिर अन्न दिया जाये, उसको सामुद्ग कहते हैं। सामुद्ग औषध हिक्का, कम्प, आक्षेप में तथा दोषों के ऊर्ध्व और अधः दोनों भागों में फैला होने पर देना उत्तम है।[२]

८—**मुहुर्मुहुः**—अन्न खाकर अथवा अन्न के साथ जो औषध बार-बार दी जाये, उसको मुहुर्मुहुः औषध काल कहते हैं। श्वास, बढ़ी हुई खाँसी, हिचकी, वमन, तृषा और विष विकारों में बार-बार औषध देना चाहिए।[3]

९—**सग्रास**—जो औषध प्रत्येक ग्रास में या कुछ ग्रासों से मिलाकर दी जाये, उसे सग्रास या ग्रास कहते हैं। मन्दाग्नि वालों की जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाले चूर्ण तथा वाजीकर औषध ग्रास में मिला कर देना चाहिए।[४]

१०—**ग्रासान्तर**—औषध यदि दो ग्रासों (निवालों) के बीच में दी जाये, तो उसको ग्रासान्तर औषध काल कहते हैं। वमन कराने वाले धूम और श्वास-कास में प्रसिद्ध अवलेह दो ग्रासों के बीच में देने चाहिए। वृद्ध वाग्भट के मत से सग्रास और ग्रासान्तर औषध प्राणवायु के विकारों में देने चाहिए।[५]

वक्तव्य—वृद्ध वाग्भट ने सुश्रुत में कहे इन दस औषध कालों के अतिरिक्त रात्रि को सोते समय औषध लेने का एक काल (**नैश**) अधिक बताया है। ऊर्ध्वजत्रु के (गले के ऊपर के) विकारों में रात को सोते समय औषध लेने का विधान किया है।[६] त्रैफलाघृत को आँखों के विकारों में रात्रि के समय ही (सूर्यास्त के पीछे) लेने का उल्लेख है।

बाद में शार्ङ्गधर ने पाँच औषध-सेवन-काल बताये हैं, यथा प्रातः सूर्योदय

---

१. वही
२. वही
३. सु० उ० अ० ६४, अष्टांग संग्रह सू० अ० २३
४. वही
५. वही
६. अष्टांग संग्रह सू० अ० २३—तस्यत्वेका दशाधाऽवचारणं, तद्यथा-अभक्तं.... निशिच। जत्रूर्ध्वामयेषु निशायाम्।

के कुछ बाद, दिन के भोजन के समय; रात्रि के भोजन के समय; बारंबार और रात को सोते समय।

औषध मात्रा विचार

आयुर्वेद की दृष्टि से मात्रा का निश्चित करना कठिन है, क्योंकि प्रकृति, रोग, देश, सात्म्य आदि के अतिसूक्ष्म रहने से मात्रा निश्चित होना कठिन है। इसलिए दोष, जठराग्नि बल; रोगी के शरीर का गठन, रोगी की शक्ति, वय, व्याधि, द्रव्य, रोगी का मृदु-मध्य-तीक्ष्ण कोष्ठ, देश, काल, सत्व, सात्म्य आदि का विचार करके औषध का निश्चय करना चाहिए। जैसे बड़ी आग को थोड़ा जल नहीं बुझा सकता, वैसे ही उपयुक्त मात्रा से कम मात्रा में दी गयी औषध रोग का नाश नहीं कर सकती। इसी प्रकार घास आदि की वृद्धि के लिए यदि आवश्यकता से अधिक जल दिया जाये तो उससे हानि ही होगी। मात्रा से अधिक दी गयी औषध रोग को नष्ट करने में समर्थ होने पर भी शरीर को हानि पहुँचाती है। इसलिए रोग और औषध का बल देख कर न अधिक और न कम किन्तु उचित मात्रा में औषधि देनी चाहिए।[1]

आयुर्वेद ग्रन्थों में (चरक संहिता में) द्रव्यों का (तथा कल्पों का) जो प्रमाण बताया गया है; वह सामान्यतः मध्यम कोष्ठ वय और बलवालों के लिए है। इस प्रमाण को मध्यम प्रमाण मानकर उसमें दोषादि के अनुसार अधिकता (वृद्धि) या न्यूनता (कमी) करनी चाहिए।[2]

संस्कार

आयुर्वेद शास्त्र में संस्कार शब्द का वही महत्त्व है, जो महत्त्व गृह-सूत्रों में या वैदिक क्रियाओं में है। संस्कार का अभिप्राय नये गुणों का आधान करना है। **(संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते–चरक वि० अ० १।)** उपनयन संस्कार आदि वैदिक संस्कार भी मनुष्य में नये गुणों का आधान करते हैं। संस्कार से औषध के पुराने गुण बढ़ते हैं। अवाञ्छनीय गुण निकाले जाते हैं। नये गुणों का समावेश किया जाता है।

छोटे बच्चों में उत्तम संस्कार से उत्तम गुण आते हैं। छोटी आयु में सिखाये गये उत्तम संस्कार व्यर्थ नहीं जाते। जिस प्रकार कच्चे पात्र पर की गयी चित्रकारी

---

१. शार्ङ्गधर प्र० ख० अ० २।

२. औषध सम्बन्धी विषय श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य लिखित 'द्रव्य-गुण-विज्ञानम्' से संगृहीत।

पकने पर नष्ट नहीं होती (यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत--पंचतंत्र)। का इसी प्रकार बचपन में पड़ी आदत या संस्कार स्थायी हो जाता है। बच्चे में उत्तम गुणों समावेश हो, इसीलिये वैदिक संस्कारों का क्रम बनाया गया है। जन्म से पूर्व संस्कार प्रारम्भ करके मृत्यु पर्यन्त उसके लिये संस्कारों का विधान है। प्रत्येक स्थिति के लिए उसे कर्त्तव्य-ज्ञान कराने के लिए संस्कार हैं।

यही बात आयुर्वेद की औषधियों के सम्बन्ध में संस्कार के लिए है। संस्कार से नये गुण उत्पन्न होते हैं। संस्कार का ही एक दूसरा पर्याय **करण** है। इसका अर्थ स्वाभाविक द्रव्यों का अभिसंस्कार करना है। कच्ची केरी (आम) गरम होती है। इसके खाने से आँख दुखती है। इसी केरी को आग में भून कर, छील कर, पीस कर, पानी में घोल कर पीने से शीतल और लू को नष्ट करने वाली बन जाती है। केरी में गुणों का परिवर्त्तन अग्नि सन्निकर्ष से हुआ है। उसका अपना स्वाभाविक उष्ण गुण अग्नि के योग से बदल गया। इसी का नाम **संस्कार** या **करण** है।

ये संस्कार प्रायः **जलसन्निकर्ष; अग्निसन्निकर्ष; शौचक्रिया, मन्थन, देश, काल, वास,** (गन्ध), **भावना, कालप्रकर्ष, पात्र** आदि से उत्पन्न किये जाते हैं। आजकल प्रचलित औषध निर्माण की सब क्रियाओं का समावेश इनमें प्रायः हो जाता है। इन क्रियाओं द्वारा ही दूध से दही, छाछ, मक्खन, मावा (खोया), घी बनता है, परन्तु गुणों में ये सब वस्तुएँ परस्पर बहुत भिन्न होती हैं।

होम क्रिया में जिस प्रकार घी अग्नि को प्रदीप्त करता है और अधिक मात्रा में डाला हुआ यही घी दुर्बल अग्नि को बुझा भी देता है, उसी प्रकार ग्रहणी रोग में उचित मात्रा में दिया घी (षट्पल घृत) अग्नि को बढ़ाता है, परन्तु अधिक मात्रा में दिया यही घी अग्नि को और भी मन्द कर देता है। घी दूध से निकलता है। दूध अग्नि को जिस प्रकार बुझा देता है, उसी प्रकार नूतन अतिसार में (जब अग्नि मन्द होती है) दिया दूध अग्नि को और भी मन्द करता है।

१--**जल क्रिया से होने वाले संस्कार**--जल द्वारा कई प्रकार से संस्कार किये जाते हैं, यथा--(क) पानी में घोल कर--वस्तु को पानी में घोल कर उसके गुणों में परिवर्त्तन किया जा सकता है। हाथ की बनी खण्डसारी खाण्ड रूखी खाने में गरम होती है,[1] परन्तु पानी में घोलकर बनाया इसका शर्बत ठण्डा, शान्तिदायक और प्यास-

---

१. देहातों में गाय-भैंस आदि के बच्चा होने पर जब आर्लनाल (प्लेसन्टा) बाहर नहीं आता, तब इसी खाण्ड को सूखा ही खाने के लिये देते हैं। सीरा रहने से यह गरम होती है। गरमी होने से रक्त संचार बढ़ने पर प्लेसन्टा छूट जाता है।

नाशक होता है। यही बात, सीरे वाली राब, मींजा आदि दूसरी वस्तुओं के साथ भी लागू होती है।

(ख) पानी में भिगो कर रखने से, किसी वस्तु को पानी में कुछ समय तक भिगो कर रखने से उसके गुणों को बदल सकते हैं। यथा इमली या आलूबुखारा गरम है, अम्ल रस होने से उष्ण है। इन्हीं को कुछ समय पानी में भिगोकर-मथकर घोल कर बनाया पानक ठण्डा, गरमी नाशक होता है। यही बात धनिया के विषय में भी है। धनिया गरम है। उसे कूट कर पानी में रात भर भिगो कर रखने पर प्रातः नितार कर पीने से दाह, बेचैनी, प्यास को दूर करती है।

(ग) **परिस्रुतमद्य**—आधुनिक टिंचर्स भी इसी क्रिया का रूप है। इसमें टिंचर्स या तो **मेसरेशन** विधि से (औषध को जौ कूटकर के छः गुणे अलकोहल में सात दिन भिगो कर छान लेने) अथवा परकोलेशन विधि से (शंकु के आकार के बने पात्र में अलकोहल में भिगोई औषधियाँ रखकर; इसके निचले तंग सिरे से थोड़ा-थोड़ा मद्य टपकाने से) बनाते हैं। आयुर्वेद का **कर्पूरासव** प्रथम विधि से बनता है। इसमें कर्पूर, इलायची, मोथा, सोंठ, अजवायन, मिर्च इन वस्तुओं को उचित मात्रा में प्रसन्ना मद्य के अन्दर एक मास रखने पर यह आसव बनता है। यह आसव विसूचिका की उत्तम औषध है।[1]

२—**अग्नि सन्निकर्ष**—अग्नि के सन्निकर्ष से किये जाने वाले संस्कार भी कई प्रकार के हैं—

(क) तिर्यक पातन (distilation)—इस क्रिया में उड़नशील द्रव्य के वाष्प बना कर दूसरे पात्र में एकत्र किये जाते हैं। इससे मैल या अवाञ्छनीय पदार्थ नीचे तलछड़ पर रह जाता है। अर्क बनाने की क्रिया में यही विधि बरती जाती है। अजवायन, गाजवां, मकोय, चन्दन, गुलाब आदि का अर्क इसी तरह बनता है। इनका उड़ने वाला पदार्थ पृथक् पानी में आ जाता है। शेष अवाञ्छनीय तत्व वहीं पात्र में रह जाता है। यूनानी हकीमों में यह क्रिया बहुत प्रचलित है। प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में औषधियों का अर्क बनाने की प्रक्रिया का उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु पारद का तिर्यक् पातन, शंखद्राव बनाने में या सुरा चुआने में इस क्रिया का उल्लेख अवश्य मिलता है। शंखद्राव के पृथक्-पृथक् द्रव्य (क्षार) इतने उपयोगी नहीं होते, जितना इस विधि

---

१. **तुलां प्रसन्नां परिगृह्य शुद्धां पलाष्टकं चोडूपते क्षिपेच्च।**
एला च सूक्ष्मा घन शृंगवेर यमानिका वेल्लजमत्र सर्वम्॥
पल प्रमाणं निहितं च भाण्डे, मासं निदध्याद् भिषगप्रमत्तः।
विसूचिकां परमौषधं तत्... —भै० रत्नावली।

से निकला शंखद्राव उपयोगी होता है। गुलाब जल में जो ठण्डक मिलती है, वह इसी क्रिया का परिणाम है जिसके फलस्वरूप इसके दूसरे अवाञ्छनीय तत्त्व पानी में नहीं आ सके।

(ख) ऊर्ध्वपातन (Sublimation)—इस क्रिया में नीचे के पात्र में वस्तु रखकर उसे गरम करके इसके वाष्प ऊपर के पात्र में एकत्र किये जाते हैं। हिंगुल से पारा निकालने में यह क्रिया बरती जाती है। इसमें हिंगुल को नीचे के पात्र में रखकर, इसका मुख दूसरे पात्र के मुख से मिलाकर, अच्छी प्रकार सन्धिबन्ध करके नीचे के पात्र को अग्नि पर रख देते हैं। इससे पारा उड़कर ऊपर के पात्र की पेंदी में लग जाता है। सिद्ध भैषज्य मणिमाला का अमीर रस (जो कि दाल चिकना, रस कपूर और शिगरफ़ से बनता है), रसायन सार का भीमसेनी कपूर; यूनानी वैद्यक के उड़ाये हुए जौहर इसी प्रकार बनते हैं। ऊपर का बर्तन पानी से ठण्डा रखा जाता है।

इसी क्रिया की भाँति **अधःपातन** क्रिया भी है। इसमें हिंगुल ऊपर की हाँडी में लगाकर हाँड़ी के ऊपर अग्नि देते हैं। इससे पारा नीचे की हाँडी में गिरता है। निचली हाँडी में पानी रहता है जिससे हाँडी ठण्डी रहे। यह ऊर्ध्व पातन क्रिया का ही प्रकारान्तर-विपरीत क्रिया है।

(ग) वाष्पीकरण (Evaporation)—इस क्रिया में अग्नि की सहायता से वस्तु का द्रव सुखा कर उड़ा दिया जाता है। बाद में शुष्क ठोस द्रव्य प्राप्त किया जाता है। आयुर्वेद के यवक्षार आदि सवक्षार; गिलोय सत्त्व आदि इसी विधि से बनते हैं। दूध का मावा हलवाई इसी प्रकार बनाते हैं। दूध और मावे के गुणों में अन्तर रहता है।

(घ) क्वाथ (Decoction)–आयुर्वेद की क्वाथ कल्पना इसी क्रिया का नाम है। इसमें औषध का क्रियाशील तत्त्व पानी में अग्नि की सहायता से ले लिया जाता है। जिन वस्तुओं का क्रियाशील तत्त्व जल्दी पानी में आ जाता है, उनको तो थोड़ी देर गरम पानी में भिगो कर या पानी में भिगो कर थोड़ा उबाल कर क्वाथ कर लेते हैं। जैसे चाय, या अमलतास का गूदे का क्वाथ। परन्तु जो वस्तु कठोर होती है, उनमें चारगुणा, आठगुणा या सोलह गुणा पानी डाल कर क्वाथ करके चतुर्थांश बचा कर काम में लाते हैं। इसमें एक लाभ यह है कि औषधियों की पृथक्-पृथक् क्वाथ न करके, सब द्रव्यों को मिलित रूप में लेकर पानी में एक साथ क्वाथ करके, उनका रस प्राप्त कर सकते हैं। आयुर्वेद का खदिरष्टिक, चन्दनबलादि तैल, पंचगव्यघृत आदि कल्प इसी प्रक्रिया से बनते हैं। क्षीरपाक कल्प भी इसी में आता है।

क्षीर पाक कल्पना में—जिस द्रव्य से क्षीर पाक करना हो; उस द्रव्य से आठ

गुणा दूध लेकर उसमें दूध से चारगुणा पानी मिला कर क्वाथ करना चाहिए। पानी के जल जाने पर इस को छान कर दूध का उपयोग करना चाहिए।[1]

वृद्ध वाग्भट्ट का कहना है कि क्षीरादि के साथ औषध को पकाने से औषध अपना सम्पूर्ण रस (सार भाग) क्षीरादि में नहीं छोडती। इसलिये प्रथम औषध को जल में पकाकर उसके क्वाथ के साथ क्षीरादि को पकाये। जलने न पाये, इसका ध्यान रहे।

३—**शौचक्रिया**—इस क्रिया का अभिप्राय धोना या साफ़ करना है। इस क्रिया से वस्तु के गुणों में परिवर्त्तन आ जाता है, यथा—

(क) प्रक्षालन (clarification). शतधौत घृत—इसी क्रिया का उदाहरण है। घी को लेकर पानी से या मंजिष्टादि क्वाथ से एकसौ बार या अधिक बार धोया जाता है। इस प्रकार करने से घी अधिक शीतवीर्य बन जाता है।

(ख) रंग निकालना (decolouration) इसमें पानी से धोकर वस्तु का रंग निकाल देते हैं; यथा–भांग की पत्तियों को पानी में मसल-मसल कर धोते हैं। जब तक उनसे हरा रंग निकलना बन्द या कम नहीं हो जाता। स्वर्णवंग बनाने में पारा और वंग के मिश्रण को नमक मिले पानी या निम्बू के रस से तब तक रगड़ते या धोते हैं, जब तक इसमें से काला रंग छूटना कम नहीं हो जाता या समाप्त नहीं हो जाता।

(ग) नितारना या छानना (Filtration)—इसमें वस्तु को कपड़े से छानते हैं जिससे मैल निकल जाये। गन्धक शोधन में गन्धक को पात्र के ऊपर बँधे वस्त्र में से छान कर दूध या भांगरे के रस में टपकाते हैं। इसमें इसके मिले पत्थर आदि पीछे वस्त्र में रह जाते हैं। कई बार द्रवांश को स्वयं स्थिर रख देते हैं, जिससे उसमें अघुलनशील द्रव्य स्वयं नीचे बैठ जायें और ऊपर स्वच्छ नितरा द्रवांश आ जाये। आयुर्वेद के घी, तैल, आसव-अरिष्ट आदि इसी तरह नितारे जाते हैं। यूनानी हकीम निम्बू का रस भी इसी प्रकार नितार कर काम में लेते हैं। चूने का पानी भी इसी क्रिया का उदाहरण है।

४—**मन्थ** (मथना)—किसी वस्तु को हाथ से या मथानी आदि की सहायता से मथा या विलोया जाता है। इससे वस्तु का संघटन टूट जाता है और वस्तु एक रूप बन जाती है। साथ ही चिकनाई आदि ऊपर आ जाती है या अलग हो जाती है। छाछ या तक्र बनाने में विलौने पर मक्खन अलग आ जाता है। इससे वस्तु के गुणों में अन्तर आ जाता है। यह विधि कई रूप में होती है—

---

१. श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य के अनुसार औषध को दरदरा करके उसमें १५ गुणा दूध और दूध के बराबर जल डाल, दूध शेष रहे, इतना पका कर कपड़े से छान लेना चाहिए।

(क) एमलसीफेकेशन (Emblsification)—जैसे तेल और चूने का पानी (क्षार) को परस्पर मिलाने में श्वेत रंग का चिकना पदार्थ बन जाता है। एरण्ड तेल का एमलशन (घोल) गोंद की सहायता से बनाते हैं। इसमें तेल के कण इस प्रकार पानी में मिल जाते हैं कि वे साफ़ दिखायी नहीं देते और पीने में बुरे नहीं लगते। यही क्रिया स्वर्ण वसन्त मालती बनाते समय मक्खन की चिकनाई को निकालने के लिए निम्बू के रस के साथ की जाती है।

(ख) कोलोडीयल सोल्युशन (Collodial Solution)— इसमें औषध के कण द्रव के अन्दर तैरते रहते हैं, जैसे कि सूर्य के प्रकाश में वायुमण्डल के अन्दर त्रसरेणु तैरते हुए खिड़की के अन्दर से दीखते हैं। आयोडीन आदि भारी पदार्थों के कण इसी रूप में बनाये जाते हैं। भारतीय रसशास्त्र में स्वर्ण आदि धातु की भस्म के रूप में स्वर्ण पत्र को या स्वर्ण को घिस कर देने की प्रथा; पारा और गन्धक के रस सिन्दूर, पर्पटी, कज्जली आदि कल्प इसी के उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त प्रवाल, मोती, कहरवा, संगयशब आदि वस्तुओं की पिट्ठी बनाकर देने की प्रथा भी इसी का रूप है। यूनानी वैद्यक का खमीरा मर वारीद इसी का उत्तम उदाहरण है।[1]

५—**देश**—देश से अभिप्राय सामान्यतः जांगल, आनूप और साधारण देश से है; परन्तु इसके सिवाय दिशा, जल-वायु, रखने का स्थान, भूमि भी लिये जाते हैं। इनसे वस्तुओं के गुणों में अन्तर आ जाता है। यथा—

(क) **दिशा**—भारतीय चिकित्सा शास्त्र में प्रायः उत्तर या पूर्व दिशा की वनस्पतियाँ लेने का उल्लेख है। भारत में श्मशान ग्राम के दक्षिण दिशा में बनाये जाते हैं। पश्चिम दिशा में सूर्यास्त होता है। इस लिए पुंसवन संस्कार के लिये अथवा क्षार विधि में पूर्व या उत्तर की शाखा के लेने का ही विधान है।[2]

(ख) **जलवायु**—देश की जलवायु का भी प्रभाव औषधियों पर पड़ता है। सनाय मक्का की, मस्तकी रूम की, मुलैहेटी ईरान की अच्छी होती है। कुछ औषधियाँ समुद्र के किनारे की अच्छी होती हैं, कूठ कश्मीर में जैसी अच्छी होती है, वैसी टिहरी-गढ़वाल में नहीं होती।

(ग) **स्थान**—कई स्थानों की मिट्टी किसी औषध के लिए उत्तम होती है। मालवा की काली मिट्टी रूई और ज्वार के लिए जैसी उत्तम है, वैसी उत्तर प्रदेश की नहीं।

---

१. चरक संहिता में स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि को मधु के साथ रसायन के रूप में देने का उल्लेख किया है—चरक चि० अ० १। ३० पाद

२. चरक० शा० अ० ८, सु० सूत्र क्षार कर्म अध्याय

इसी से मुनि ने स्निग्ध-कृष्ण-मधुर-सुवर्ण रंग की मिट्टी औषधियों के लिये पसन्द की है।

६—काल—समय पर ली गयी औषधियाँ समय पर काम करने में समर्थ होती हैं। मन्दक दधि (जो दधि ठीक प्रकार से नहीं जमता) त्रिदोषकारक है, परन्तु ठीक प्रकार जमा दही वातनाशक है। अपक्व आम का रस अरुचिकारक है। कच्चा कैथ गले के लिये हानिकारक है। पकने पर इनके ये दोष नष्ट हो जाते हैं। कच्चा बिल्व स्तम्भक है। पक्व बिल्व विरेचक है।

ऋतु का अन्तर्भाव भी इसी के अन्दर होता है। आँवले को कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष या माघ में संचय करने का विधान अत्रिपुत्र ने किया है।

७—वास—का अर्थ गन्ध से है। अवलेह या चाटनों तथा आसवों में तेजपात, इलायची आदि सुगन्धित द्रव्य, बाद में मिलाये जाते हैं। उनका एक काम इनमें मिलकर अनुकूल सुगन्ध पैदा करना भी है। शर्बत या मिठाई में गुलाब-केवड़े का जो जल छिड़कते हैं, उसका उद्देश्य इनमें सुगन्ध पैदा करना है। पाकों में केसर-कस्तूरी आदि को भी बाद में इसीलिये मिलाया जाता है।

८—भावना—भावना से औषध के गुणों में वृद्धि अथवा परिवर्त्तन किया जाता है। आँवले के चूर्ण को आँवले के ही रस की बीस या अधिक भावना देने पर इसका रसायन गुण बढ़ जाता है। धातुओं की भस्मों में भावना का बहुत महत्त्व है। त्रिफला से बनायी लोहभस्म, गोमूत्र से बनायी लोहभस्म में गुणों की दृष्टि से अन्तर है। कचनार की छाल के क्वाथ से बनी स्वर्ण भस्म क्षय रोग के लिए उत्तम है।

९—काल प्रकर्ष—(Preservation)—समय के कारण वस्तु या द्रव्य के गुणों में परिवर्त्तन आते हैं। अन्न एक साल बाद हीन वीर्य हो जाते हैं। दो-तीन साल पुराने चावल हल्के हो जाते हैं। आसव, धातु या रस जितने पुराने होते हैं, उतने ही अधिक गुणशाली होते हैं। इसके विपरीत शर्बत, चूर्ण आदि अधिक समय रखने से खराब हो जाते हैं। पुराना घी उन्माद के लिये उपयोगी होता है, परन्तु आहार के लिये उपयोगी नहीं होता।[1] इसलिये औषधियों को बना कर कुछ समय रखने का विधान है।[2]

---

१. दस-बारह वर्ष पुराना घी ११६ फा० की सामान्य गरमी में भी स्वतः नहीं पिघलता, वैसा ही जमा रहता है। इस पुराने घी को सामान्यतः आहार के लिये उत्तम नहीं कहा जाता। वनस्पति घी डालडा आदि भी ग्रीष्म ऋतु में ११६–११८ ताप-परिमाण आने पर भी नहीं पिघलते। इसलिये आहार की दृष्टि से ये उपयोगी नहीं।

२. पक्षाज्जात रसं पिवेत्—(ख) स्थापयेदन्तभूमेः पक्षम् —चरक०

१०—**भाजन**—से अभिप्राय पात्र (container) से है, औषध रखने या बनाने के लिये कई स्थानों पर पात्र का उल्लेख है। आयुर्वेद की अवलेह प्रायः ताम्र पात्र में सिद्ध किये जाते हैं (यहाँ पर इतना स्पष्ट नहीं कि इनके अन्दर कलई होती थी या नहीं)। दही या घी ताम्र के पात्र में रखने से विकृत हो जाता है। पानी के लिए ताम्र का पात्र उत्तम होता है। इसी प्रकार विषनाशक अजित आदि अमदों को गाय के सींग में रखने के लिये कहा गया है। गाय का सींग उष्ण और स्निग्ध होता है। पात्र में रखने से पात्र के गुण दोषों का प्रभाव औषध पर पड़ता है। इसी से घी को लोहपात्र में, पेया या दही को चाँदी के पात्र में देने के लिए कहा गया है।

इसके अतिरिक्त संयोग, युक्ति, संख्या, विभाग, परिमाण आदि क्रियाओं का भी संस्कार में उपयोग होता है। उदाहरणार्थ :—

संयोग—घी और मधु यदि समान मात्रा में लिये जायें, तो इनका परिणाम अच्छा नहीं होता। ये दोनों संयोग विरोधि हो जाते हैं। दही का पानी अलग निकाल लिया जाये तो पनीर का गुण दही से भिन्न हो जाता है। यह सुपच होती है। दही का पानी वमन तथा अपचन में उपयोगी होता है। इसी प्रकार दूध को निम्बू के रस से फाड़कर उसकी कूचिका और पानी अलग किया जाये, तो दोनों के गुणों में अन्तर रहता है।

स्पष्ट है कि आयुर्वेद का **संस्कार** शब्द बहुत व्यापक है। इस एक छोटे से शब्द के अन्दर प्रायः आधुनिक औषध निर्माण की सब क्रियाओं का समावेश हो जाता है। संस्कार को जो अर्थ नये गुणों का आधान करना अत्रिपुत्र ने दिया है, वही कार्य आधुनिक निर्माण क्रिया से भी किया जाता है।

रसशास्त्र में भी संस्कार शब्द इसी अर्थ में प्रचलित है। पारे के जो संस्कार किये जाते हैं, वे सभी उसमें नया गुण उत्पन्न करते हैं। यही कारण है कि इन संस्कारों का एक क्रम है। जिस प्रकार वैदिक कर्मकाण्ड में गर्भाधान, प्रंसवन, सीमन्तोन्नयन आदि सोलह संस्कारों की एक क्रमबद्ध शृंखला मिलती है, उसी प्रकार पारद के संस्कारों की भी एक क्रमबद्ध शृंखला है। एक के बाद दूसरा संस्कार आता है। यह नहीं कि एक को छोड़ कर या उनका क्रम छिन्न कर संस्कार किये जायें। इससे पता चलता है कि पहले के संस्कार से पारे में कुछ परिवर्तन-गुणान्तर आ गया, जिससे अब उस पर दूसरा अगला संस्कार सफल हो सकता है।

पारद के संस्कार आवश्यकतानुसार एक, तीन, आठ, अट्ठारह किये जाते हैं। चिकित्सा की दृष्टि से सामान्यतः एक या तीन ही किये जाते हैं। पारद के अट्ठारह संस्कार धातुवाद में प्रचलित हैं।

पारद की भाँति दूसरे धातु-रत्न आदि का जो शोधन या मारण अथवा पिष्टी आदि की जाती है, वह भी एक प्रकार का संस्कार ही है। इन क्रियाओं से भी इनमें भिन्न गुण उत्पन्न होता है। इसलिए आयुर्वेद का संस्कार शब्द बहुत व्यापक है। यह शब्द वैदिक प्रक्रिया की भाँति आयुर्वेद में आता है।

उपयोगी सूचनाएँ

आयुर्वेद ज्ञान के दो पक्ष हैं—(१) आगम या शास्त्रपक्ष और (२) प्रत्यक्ष पक्ष या कर्माभ्यास। इन दोनों पक्षों का ज्ञान शिष्य के लिए आवश्यक है। इसी से अत्रिपुत्र ने वैद्य एवं गुरु के लिए इन दोनों से परिचित होना आवश्यक बताया है।[1] औषध निर्माण से लेकर चिकित्सा व्यवसाय तक इन दोनों प्रकार के ज्ञान की अपेक्षा रहती है। इनमें से केवल एक पक्ष के ज्ञान से कर्म मार्ग में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती। इसी से सुश्रुत में कहा गया है :—

प्रत्यक्षतो हि यद् दृष्टं शास्त्रदृष्टं च यद् भवेत्।
सभासतः तदुभयं भूयो ज्ञान विवर्धनम्॥ सु० शा० ५।४

यदि कोई वस्तु प्रत्यक्षतः देखी गयी हो और बाद में शास्त्र द्वारा भी उसके विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिया गया हो; तो इससे ज्ञान में अधिक वृद्धि होती है।

इसी कारण इस संहिता में इन दोनों विषयों पर विचार किया गया है। इनमें शास्त्रपक्ष संक्षेप में और क्रियात्मक पक्ष विस्तार से देने का यत्न किया गया है। शास्त्र-पक्ष के लिए लेखक के तथा अन्य लेखकों के लिखे ग्रन्थ देखे जा सकते हैं।[2]

---

१. (क) श्रुतेः पर्यवदा तत्त्वं बहुशो दृष्टकर्मता।
दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुण चतुष्टयम्॥ चरक० सू० अ० ९।६
(ख) ततोऽनन्तरमाचार्यं परीक्षेत—तद्यथा—पर्यवदात श्रुतं परिदृष्टकर्माणं-दक्षं . . .
वि० अ० ८।४

२. लेखक के ग्रन्थ रसशास्त्र, भैषज्य कल्पना; अन्य लेखकों के—रसामृत, द्रव्यगुण-विज्ञानम् उत्तरार्द्ध, द्रव्य-गुण-विज्ञान—परिभाषा खण्ड—ये तीनों ग्रन्थों के कर्त्ता—श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य हैं, इनको देखें।

क्रियात्मक पक्ष में भी उन्हीं योगों का उल्लेख किया गया है जो अधिक प्रयुक्त होते हैं। योग निर्माण के सम्बन्ध में अत्रिपुत्र ने कुछ स्पष्ट निर्देश दिये हैं —

"तेभ्यो भिषग् बुद्धिमान् परिसंख्यातमपि यद् द्रव्यमयौगिकं मन्येत तत्तदपकर्षयेत् यच्चानुक्तमपियौगिकं मन्येत तत्तद्दद्यात्; वर्गमपि वर्गेणोपसंसृजेदेकमेकेनानेकेनवा युक्तिं प्रमाणीकृत्य । —वि० अ० ८।१४५

बुद्धिमान वैद्य को चाहिए कि योग में जो द्रव्य दिये हों, उनमें यदि किसी द्रव्य को रोगी के लिये अनुपयोगी समझे तो उसको निकाल दे, और जो द्रव्य उपयोगी समझे वह यदि योग में नहीं भी कहा गया है, तो उसे इसमें मिला दे। एक वर्ग को दूसरे एक वर्ग से या अनेक वर्गों से मिला दे। यह सब कार्य ठीक प्रकार समझ कर (युक्ति को प्रमाण मान कर ही) करना चाहिये।

यही कारण है कि एक ही नाम वाले योग के कई पाठ मिलते हैं। रस योगों के विषय में इनकी बहुतायत है।[1] चूर्णों और घृतों के विषय में ये कुछ कम हैं। औषध निर्माण में इससे बहुत असुविधा होती है। उदाहरण के लिये, चन्द्रप्रभा गुटिका, चन्द्रप्रभा गुड़िका, चन्द्र प्रभा बटिका—ये तीन पाठ भैषज्य रत्नावली में दिये हुए हैं। इनमें चन्द्र प्रभा गुड़िका और चन्द्रप्रभा बटिका, ये दोनों पाठ प्रमेदाधिकार में हैं। इनमें से चन्द्रप्रभा गुड़िका पाठ योग रत्नाकर का है; चन्द्रप्रभा बटिका पाठ शार्ङ्गधर संहिता का है; और चन्द्रप्रभा गुटिका पाठ अर्श रोगाधिकार का है। इसी से 'चन्द्रप्रभा' इस शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ भी हो गये। चन्द्रप्रभा से कर्पूर वावची अर्थ किये गये। परन्तु प्रमेह रोग में कर्पूर जितना उपयोगी है, उतनी बावची नहीं।

अत्रिपुत्र की बात पर ही काश्यप संहिता में बल दिया गया है।[2] साथ ही अत्रिपुत्र की भाँति यह भी सचेत किया गया है कि ऋषि प्रणीत योगों में—आप्त-विद्वानों से लिखे योगों में बुद्धिमान् व्यक्ति ही सोच समझ कर परिवर्तन करे, अन्यथा उनको वैसे का वैसा ही बताये और बरते। क्योंकि द्रव्य कभी रस से, कभी वीर्य से,

---

१. अग्नि कुमार रस के पचास पाठ रसयोग सागर में दिये हैं। इसी प्रकार से एक ही रस के बहुत पाठ मिलते हैं—इसके लिये रस योग सागर-भैषज्य रत्नाकर देखे जा सकते हैं।

२. ये यथा च समुद्दिष्टा योगा स्वे स्वे चिकित्सिते ।
ते तथैव प्रयोक्तव्या न तेष्वस्ति विचारणा ॥
को हि नाम प्रणीतानां द्रव्याणां तत्त्वदर्शिभिः ।
नाना विधानामेकत्वं तत्कर्म ज्ञातुमर्हति ॥

कभी गुण से और कभी विपाक से कार्य करता है। मिलित योग में किससे कार्य हुआ, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि भिन्न प्रकार की दो सुगन्धियाँ मिलाने पर एक नये प्रकार की ही सुगन्ध बन जाती है। इसी प्रकार दो-तीन द्रव्यों के मिलाने पर नया गुण उत्पन्न हो जाता है। (इसी को चरक में—विकृति विषम समवेत शब्द से कहा है)।[1]

यही कारण है रस योगों में यह बात विशेष महत्व रखती है। उदाहरण के लिये—

चिन्तामणि चतुर्मुख के घटक—रस सिन्दूर, लोह, अभ्रक, स्वर्ण हैं इनको घीक्वार से मर्दन किया जाता है, फिर एरण्डपत्र में रखकर धान्यराशी में रखते हैं।

चतुर्मुख के घटक—पारा, गन्धक, लोह, अभ्रक, स्वर्ण हैं, इसको भी घीक्वार से मर्दन करके एरण्डपत्र में लपेट कर धान्यराशी में रखते हैं।

चिन्तामणि—रससिन्दूर, अभ्रक, लोह, स्वर्ण इनको घीक्वार के रस से मर्दन करके प्रयोग में लेते हैं।

चिन्तामणि और चिन्तामणि चतुर्मुख में प्रक्रिया भेद है। चतुर्मुख और शेष दोनों में कज्जली और रससिन्दूर का अन्तर है। घटक एक होने पर भी प्रक्रिया एवं अनुपात भेद से अन्तर हो गया। इसी प्रकार प्रसिद्ध योग मृत्युञ्जय में हिंगुल के स्थान

किञ्चिदन्य रसं द्रव्यं गुणतः किञ्चिदन्यथा।
वीर्यतश्चान्यथा किंचित् विद्यादत्र, विपाकतः॥
अथ चैकत्वमागत्य प्रयोगो न विरुध्यते।
उत्पद्यते यथार्थं च समवाय गुणान्तरम्॥
पृथक् पृथक् प्रसिद्धेऽपि गन्धे गन्धान्तरं यथा।
गन्धानां मनोह्लादि प्रत्यक्षं समवायिकम्॥
तस्मादार्ष प्रयोगेषु प्रक्षेपापचयं प्रति।
न प्रमाद्येदविज्ञाय दोषौषध बलाबलम्॥ काश्यप० खिल० २।७०-७५

१. "न हि विकृति विषम समवेतानां नानात्मकानां परस्परेण चोपहतानामन्यैश्च-विकल्पनैः विकल्पितानामवयव प्रभावानुमानेन समुदाय प्रभाव तत्त्व मध्यवस्यातुं शक्यम्—चरक०. वि० अ० १।९

इसलिए रस योगों के गुणों का निर्णय घटकों की दृष्टि से नहीं किया जा सकता। क्वाथ, अरिष्ट, अवलेहों के लिए भी बहुत अंशों में यही बात है। घटकों के आधार से योग का गुण धर्म लिखना विचारणीय है—जैसी कि आजकल परिपाटी चल गयी है।

पर कज्जली मिलाने से कृष्ण मृत्युञ्जय बनाते हैं। कज्जली, पर्पटी, रससिन्दूर में घटक समान होने पर अग्नि संयोग से भिन्न संस्कार होने के कारण गुणों में अन्तर आ गया। पंचामृत पर्पटी और लीला विलास के घटक समान होने पर भी थोड़ी प्रक्रिया भेद से गुणों में अन्तर आ गया है। इसी से रोग में भिन्न-भिन्न उपयोग मिलता है।

इसलिये योग के घटकों के विषय में अत्रिपुत्र ने एक उत्तम सिद्धान्त निर्धारित किया है—

"तस्माद् बुद्धिमतामूहापोह वितर्काः मन्दबुद्धेस्तु यथोक्तानुगमनमेवश्रेयः, यथोक्तं हि मार्ग मनुगच्छन् संसाधयति कार्यम्. . .वि० अ० ८।१४५

बुद्धिमान मनुष्य को अधिकार है कि वह योग के विषय में ऊहापोह, अधिकता न्यूनता का विचार करे। मन्दबुद्धि के लिए तो यही उचित है कि जैसा लिखा हो, ठीक वैसा ही करे। इस रास्ते से चलने पर भी उसे सफलता मिल जाती है।

भैषज्य निर्माण में विकास—अत्रिपुत्र ने पाँच ही कल्प बताये हैं। स्वरस, कल्क, शृत, शीत आर फाण्ट। परन्तु चरक संहिता में चूर्ण, घृत, तेल, आसव, अरिष्ट आदि दूसरे कल्प भी मिलते हैं। इन भिन्न-भिन्न कल्पों का इन पाँच में ही समावेश कर लिया जाता है, क्योंकि ये इन्हीं के रूपान्तर हैं।

परन्तु काश्यप संहिता में **अभिषव** नाम का एक नया कल्प है। अत्रिपुत्र के अनुसार यह शीत कषाय में ही आता है।[1] परन्तु इतना सत्य है कि बाद में विकास की प्रवृत्ति रही। प्राचीन आचार्यों के ज्ञान का विस्तार होता रहा। उसी का परिणाम है कि अर्क, मुरब्बा, पानक आदि बहुत से नये कल्पों का आविष्कार हुआ। इनका उद्देश्य एक यही रहा कि रोगी को औषध ग्लानि न करे, सुगमता से दी जा सके तथा औषध की कार्यक्षमता बनी रहे।[2] औषध प्रयोग में यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिसका परिणाम यह हुआ कि पाँच प्रकार के कल्प आज पचास साठ तक पहुँच गये। इसमें रस शास्त्र के पर्पटी, सिन्दूर आदि कल्प भी मिलकर इनकी संख्या सत्तर के लगभग पहुँच गयी। इनसे औषध निर्माण की प्रगति का पता चलता है।

---

१. (क) **चूर्णं शीत कषायश्च स्वरसोऽभिषवस्तथा ।**
फाण्टः कल्कस्तथा क्वाथो यथा वृत्तं निबोधमे ॥ काश्यप-खिल० ३।३५
निशा व्यूष्टोऽभिषवः साधु साधितः ॥

२. **अल्पमात्रं महावेगं बहुदोष हरं सुखम् ।**
लघु पाकं सुखास्वादं प्रीणनं व्याधिनाशनम् ॥
अनपाय्य विपन्नं च नाति ग्लानि करं च यत् ।
गन्धवर्ण रसोपेतं विद्यान्मात्रवदौषधम् ॥ चरक० सि० अ० १३६।१२–

वर्त्तमान टिंचर प्रणाली (मद्य में औषध के गुण आसुत करना) प्राचीनों की आसव-अरिष्ट प्रक्रिया का ही रूपान्तर है। आसव-अरिष्ट में पहले मद्य बनाना होता है, मद्य बनने पर औषध को वीर्य-गुण मद्य में आसूत होता है—आता है। टिंचर बनाने में हम सीधा मद्य ही लेकर उसमें ही औषध को नियतकाल तक भिगोते हैं। फिर इस मद्य को चुआ लेते हैं।

आसव में सामान्यत: औषधियों का क्वाथ नहीं किया जाता। आसव सामान्यत: नरम-कोमल द्रव्यों से बनता है। अरिष्ट में कठिन द्रव्यों का क्वाथ करके उनको आसुत किया जाता है। सिद्धान्त एक ही है कि औषध का गुण पूर्णता या अधिक से अधिक कल्प में आ जाये। आसव-अरिष्ट का यह भेद शाश्वत नहीं। इसमें अपवाद भी होता है। परन्तु सिद्धान्त यही है कि औषध का गुण-वीर्य पूर्णत: इस कल्प में प्राप्त कर लिया जाये।

इसी प्रकार रस कल्पों का सुधरा रूप इंजैक्शन या छोटी-छोटी टैबलैट्स हैं। रस शास्त्र की विशेषता के सम्बन्ध में कहा गया है कि "रसौषधियाँ मात्रा में थोड़ी होती हैं। इनके लेने से किसी प्रकार की अरुचि नहीं होती। इनसे जल्दी आरोग्य मिलता है। इसलिये काष्ठौषधियों की अपेक्षा इनका महत्त्व अधिक है।[1]

यही बातें आज इंजैक्शन या 'एक्टिव पिंसीपल'—कार्यक्षमता वाले द्रव्य से बनायी टैबलेट्स से पूरी होती है। सर्पगन्धा की बड़ी मात्रा न लेकर-सरपेसिल की एक ग्राम की मात्रा कार्य कर देती है। रोगी को इसके खाने में अरुचि या किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। गुण भी जल्दी प्रकट होता है। प्राचीन काल में यह भी बात रस शास्त्र की औषधियों के सम्बन्ध में थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ६५० ईसवी पूर्व से प्रारम्भ औषध कल्प दसवीं शती तक बहुत विस्तृत हो गया। मुगल काल में इसमें बहुत सुधार हुआ। इसके नये-नये कल्प मिले। वेदों में औषधियों का अलग-अलग उल्लेख है, परन्तु मिलाकर मिश्रित-योग रूप में नहीं। साथ ही किस प्रकार अथवा किस विधि से उसका उपयोग होता था इसकी भी स्पष्ट जानकारी वेदों में नहीं मिलती।

द्वित्वविचार—बंगाल की परिपाटी में औषध निर्माण में—(क्वाथ, तैल, घृत, आसव में) कविराज गंगाधर जी का सिद्धान्त चलता है। यह सिद्धान्त निम्नांकित है :—

जब किसी योग में द्रव तथा आर्द्र या शुष्क द्रव्यों का परिमाण रत्ती से लेकर कुड़व पर्यन्त मानों में लिखा हो तो उसका परिमाण उतना ही समझना चाहिए। दुगना नहीं

---

१. अल्प मात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसंगतिः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादोषधिभ्योऽधिको रसः ॥ रसेन्द्रसारे —१

करना चाहिए। किन्तु प्रस्थ से लेकर खारी पर्यन्त में यदि द्रव और आर्द्र द्रव्य (गीले हरे) लिखे हों तो इनको दुगना लेना चाहिए। परन्तु सूखे द्रव्य का दुगना नहीं करना चाहिए।

कुड़व, तुला, भानिका, पल इन मानों के नाम से किसी भी द्रव्य का मान निर्दिष्ट हो –भले ही वह शुष्क हो या आर्द्र हो—तो वहाँ इनको दुगना नहीं करना चाहिए। कुड़व का भी कहीं पर दुगना होता है, यथा दन्तीघृत में।[1]

घी, खांड़, जल, मधु, तैल, दूध, आसव तथा नारियल आदि में कुड़व परिमाण आठ पल का समझना चाहिए अर्थात् दुगना समझें।

सूखे द्रव्य की जो मात्रा है, उससे उसी आर्द्र द्रव्य की मात्रा दुगनी लेनी चाहिए। क्योंकि आर्द्र द्रव्य की अपेक्षा शुष्क द्रव्य गुरु और तीक्ष्ण होता है।

द्रव-जल का दुगना करने में भी भेद है; इसका कारण सुश्रुत का निम्न पाठ है–

शुष्काणामिदं मानम् आर्द्र द्रवाणाञ्च द्विगुणम् ॥ सु० चि० ३१।७

वैद्य श्री हरिप्रपन्न जी तथा श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य इस पाठ को दूषित मानते थे। उनकी दृष्टि से शुद्ध पाठ—'आर्द्र द्रव्याणाम्'—है। इस पाठ की सत्यता इन्होंने अपने-अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित की है।[2]

भारतवर्ष में बंगाल के अतिरिक्त किसी प्रान्त में यह द्विगुण परिभाषा लागू नहीं

---

१. गुंजादिमानमारभ्य यावत्स्यात् कुडवस्थितिः।
द्रवार्द्र शुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥
प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद् द्रवार्द्रयोः।
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम् ॥
कुडवे मानिकायाञ्च तुलामाने तथैव च।
पलोल्लेखागते माने न द्वैगुण्य मिहैष्यते ॥
कुडवेऽपिकचिद् द्वित्वं यथा दन्तीघृते स्मृतम्।
सर्पिः खण्ड जल क्षौद्र तैल क्षीरासवादिषु ॥
अष्टौ पलानि कुडवो नारिकेले च शस्यते ॥
शुष्क द्रव्यस्य या मात्रा आर्द्रस्य द्विगुणा हि सा।
शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात् तस्मादर्धं प्रयोजयेत् ॥

२. रसयोग सागर–द्वितीय भाग—पृष्ठ ६९४, एवं द्रव्य-गुण-विज्ञानम्—परिभाषा खण्ड में मान प्रकरण देखें।

है। शास्त्र में जितना मान लिखा है उतना ही लिया गया है।[1] विचार एवं सरलता की दृष्टि से लिखा हुआ परिमाण ही लेना चाहिए। जल के परिमाण में एक ही सिद्धान्त है कि वस्तु का पूरा रस जल में आ जाये, साथ ही अधिक जल होने से रस पतला भी न हो जाये। यूनानी लोग क्वाथ के द्रव्यों को प्रातः पकवा कर रोगी को देते हैं; और कई अवस्थाओं में इसी फोक को उसी दिन सायंकाल फिर पकवा कर देते हैं, क्योंकि प्रथम बार में सम्पूर्ण रस नहीं निकलता अथवा रस की मात्रा तीक्ष्ण या अधिक होने से रोगी को एक बार देना उचित न समझ कर दो बार देते हैं।

उपयोग में आने वाले गीले द्रव्य—वासा, नीम, परवल, केवड़ा, खरैटी, पेठा, शतावरी, पुनर्नवा, कुटज, अश्वगन्धा, प्रसारणी, गिलोय, मांस, नागवला, झिंटी (सहचर) गुग्गुलु, हींग, अदरख, ईख का रस, गुड़ ताजे गीले लेने चाहिए, इनको दुगना न करें। कुछ योगों में यथा–अनार्त्तव सम्बन्धी अवस्थाओं में पुराना गुड़ उत्तम मानते हैं, आसव आदि में ताज़ा गुड़ उत्तम है।

वंशलोचन की समस्या—जहाँ तक नैसर्गिक वंशलोचन प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए, परन्तु महँगा एवं प्रचुर मात्रा में न मिलने पर कृत्रिम का व्यवहार होता है। उसके स्थान में नैसर्गिक तिकुर का करना चाहिए। यह द्रव्य बंगाल, बनारस में पूजा-व्रत के दिनों में खाया जाता है।

भेषज कल्पना विज्ञानीय अध्याय

किसी भी जंगम, औद्भिद् या पार्थिव द्रव्य का उपयोग उसका चूर्ण, क्वाथ, भस्म, आदि कल्पना किये बिना, उसी द्रव्य के उसी रूप में शरीर पर प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस लिए कल्पना ज्ञान आवश्यक है। उसी ज्ञान के लिये यह अध्याय है।

कल्प, कल्पना ये शब्द औषध द्रव्य को शरीर के लिए उपयोगी बनाने के लिए हैं। इसी का एक नाम 'संस्कार' है। संस्कार का सामान्य अर्थ–उसमें नये गुणों का

---

१. इस संहिता में भैषज्य रत्नावली से संगृहीत पाठों में बंगला परिपाटी का अनुकरण किया गया है, यह केवल सरलता की दृष्टि से ही हुआ है। वैसे दूसरे प्रान्तों में द्रव्यों को अपने प्रान्त में चालू परिमाणों में ले सकते हैं। उत्तरी भारत में, राजपूताने में, बंगाल में, भैषज्य रत्नावली का अधिक व्यवहार है, इन स्थानों में एक पल आठ तोले के बराबर लेते हैं। गुजरात में शार्ङ्गधर का, महाराष्ट्र में–योग रत्नाकर का–दक्षिण में सहस्रयोग-संग्रह ग्रन्थ का चलन है। इसी से अभिपुत्र ने कहा है–"विविधानि शास्त्राणि भिषजां प्रचरन्ति लोके'—चरक० वि० अ० ८।

आधान करना है।[1] परन्तु कल्पना के सब रूपों में संस्कार का अर्थ नहीं आता। उदाहरण के लिए नीम के पत्तों को शिला पर पीस कर देने में जो कल्क या चटनी बनती है। वह कल्क कल्पना है। परन्तु कल्क कल्पना से नीम के पत्तों के गुणों में कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं आया। परन्तु कल्क रूप में देने से शरीर के लिए सरलता से उपयोगी हो गये। यही इसकी कल्पना-योजना-युक्ति है।

इसी कल्पना-योजना को देख कर ही अत्रिपुत्र ने कहा है कि "मण्डूकपर्णी का स्वरस बरतना चाहिए; मुलैहठी का चूर्ण दूध से, मूल-पुष्पसहित गिलोय का रस और शंखपुष्पी का कल्क पीसकर देने से रसायन गुण अच्छा होता है।[2]

इसमें भिन्न-भिन्न कल्पना-योजना बतायी है। दूध से मस्तु, दही, मावा (खोवा) बनते हैं। परन्तु इनके गुण भिन्न हैं। दही में पानी के प्रमाण की भिन्नता से उद्श्वित्, घोल, बनते हैं। इन सब कल्पनाओं के गुण भिन्न हैं। इसी से अत्रिपुत्र ने कहा है—

"अतः कषाय कल्पना व्याध्यातुर बलापेक्षिणी;
नत्वेवं सर्वाणि सर्वत्रोपयोगीनि भवन्ति"—चरक० सू० अ० ४।१२

व्याधि और रोगी का बल तथा द्रव्य का विचार करके किसी एक कषाय कल्पना की योजना करनी चाहिए। सब प्रकार की कषाय कल्पना सब रोगियों के लिए एक समान उपयोगी नहीं हो सकती।

पाँच कल्पनाएँ

अत्रिपुत्र ने पाँच ही कल्पनाएँ बतायी हैं; यथा -स्वरस, कल्क, शृत, शीत, और फाण्ट। इन पाँच कल्पनाओं में ही चूर्ण, बटी, रसक्रिया, भस्म, अर्क, पानक आदि सब कल्पनाओं का समावेश हो जाता है। ये पाँच कल्पनाएँ ही मुख्य और प्राथमिक हैं, अन्य कल्पनाएँ इनमें से किसी एक कल्पना के बाद बनायी जाती हैं। चूर्ण में द्रव्य को सूखा ही पीसा जाता है। (कल्क में द्रव्य को गीला लिया जाता है, या शुष्क द्रव्य को पानी आदि द्रव के साथ बारीक किया जाता है) ; गोलियों में पहले द्रव्यों का कल्क करके पीछे से बनायी जाती हैं; चक्रिका (टैबलेट्स) में चूर्ण करके, दाना बना कर मशीन से दबायी जाती हैं। घृत और तैल पकाने में स्वरस, कल्क-चूर्ण; क्वाथ लिया जाता है। रसक्रिया (फाणित-अवलेह-घन) बनाने में भी औषध द्रव्यों का स्वरस, क्वाथ, या चूर्ण बनाना पड़ता है। जितनी भी औषध कल्पनाएँ इस ग्रन्थ में लिखी जायेंगी उन सब में

---

१. देखिये लेखक की 'भेषज कल्पना'—अध्याय १

२. चरक चि० अ० १।२।३०

पहले इन पाँचों में से औषध द्रव्य की कोई एक कल्पना बनाने के बाद ही दूसरी कल्पना बन सकेगी। इसलिए ये पाँच विध कल्पनाएँ औषध कल्पनाएँ औषध कल्पनाओं में मुख्य एवं प्राथमिक, अन्य कल्पनाओं की मूल भूत कल्पनाएँ हैं।[1]

अत्रिपुत्र ने इन कल्पनाओं के साथ कषाय शब्द जोड़ा है, यथा, स्वरस कषाय, कल्क कषाय, शृत कषाय, शीत कषाय, फाण्ट कषाय। कषाय शब्द संस्कृत साहित्य में कषाय रस के लिए मुख्यतः आता है। संन्यासियों के गेरुएं कपड़े के लिए तथा अन्य अर्थों में भी कषाय शब्द आता है (चरक में अत्रिपुत्र ने यहाँ **"धातुराग निवसनम्—** शा० अ० ५।१० का शब्द का प्रयोग किया है)। परन्तु पाली साहित्य के महावग्ग में औषध के अर्थ में **कषाय** शब्द आता है। सम्भवतः द्रव औषध के लिये पाली साहित्य में यह शब्द प्रथम प्रचलित हो। बाद में सब औषध के अर्थ में चल पड़ा हो।[2] इसी से चरक में **पञ्चाशन्महाकषायाः**–इति संग्रहः कह कर आगे वर्गों के विभाग से कषायवर्ग कहे हैं। और इन कषाय वर्गों में औषधियों के नाम दिये हैं। इससे स्पष्ट है कि औषध के अर्थ में कषाय शब्द आता है। इस लिए कषाय कल्पना का अर्थ औषध कल्पना है। इसी प्रकार षट्कः कषाय वर्गः, चतुष्कः कषाय वर्गः, आदि का अर्थ छः औषधि का वर्ग (समूह) चार औषध का समूह है। इससे अनुमान होता है कि कषाय कल्पना का अर्थ औषध कल्पना है।

औषध की कल्पना के आधार (योनियाँ) पाँच रस हैं; अर्थात् औषध कल्पना पाँच रस वाली हो सकती है, जैसे-मधुर कषाय (मधुर औषध), अम्ल कषाय (अम्ल औषध), कटुक कषाय (कटु औषध), तिक्त कषाय (तिक्त औषध), और कषाय कषाय (कषाय औषध)।

इनमें लवण को औषध नहीं कहा गया। क्योंकि लवण सदा सूखा रहता है, जल मिलने से द्रव रूप ही हो जाता है। लवण का कल्क नहीं बनता, क्योंकि कल्क बनाने के लिये द्रव्य गीला-हरा होना चाहिए अथवा सूखे द्रव्य में जल मिलाना आवश्यक है। लवण का चूर्ण बनता है, परन्तु चूर्ण रूप में कषाय कल्पना करने का कोई अर्थ नहीं, क्योंकि कल्पना का अर्थ-योजना–या गुणान्तराधान है। लवण का चूर्ण करने से उसके गुणों में कोई अन्तर नहीं आता।

---

१. द्रव्य गुण विज्ञान –उत्तरार्द्ध पृष्ठ २३

२. चरक में इसी प्रकार के अन्य भी शब्द हैं, यथा 'दकोदर', "दक लावणिक यूषेण" इसमें दक शब्द ईषत् अर्थ में है। मोनियर विलयम में कषाय का अर्थ "मैडिसिनल पोषण" (Medicinal potion) औषध मात्रा दिया है।

ये पाँच कल्पनाएँ मधुर आदि पाँच रस वाले द्रव्यों से बनती हैं। इससे अत्रिपुत्र से उपदेश किये और अग्निवेश से बनाये तंत्र (चरक संहिता) में ही मधुर कषाय, अम्ल-कषाय, कटु कषाय, तिक्त कषाय, कषाय कषाय ये संज्ञाएँ (रूढ़ नाम) दी जाती हैं।[1] वास्तव में इन रस वाले द्रव्यों से (न कि रसों से) ये कल्पनाएँ बनती हैं।

पाँच प्रकार की कल्पना

औषध कल्पना पाँच प्रकार की है;[2]

१—स्वरस
२—कल्क
३—शृत
४—शीत
५—फाण्ट

इन पाँचों में फाण्ट से शीत; शीत से शृत; शृत से कल्क और कल्क से स्वरस गुरु और अधिक बल (शक्ति-वीर्य) वाला है। इसके विपरीत स्वरस से कल्क, कल्क से शृत; शृत से शीत, और शीत से फाण्ट लघु और अल्प बल वाला है। इसलिए व्याधि, रोगी और द्रव्य का, विचार करके पाँचों में से कोई एक कल्पना निश्चय करना चाहिए। सब प्रकार की कल्पनाएँ सब प्रकार के रोगियों में एक समान रूप में उपयोगी नहीं हो सकतीं। युवा व्यक्ति औरबच्चे के समान रोग में, पुरुष और स्त्री के समान रोग में एक ही कल्पना नहीं बरती जा सकती। इनके बल, रोग, औषध का विचार करके कल्पना में भिन्नता रखना आवश्यक होता है।

वहाँ पर पाँच ही कल्पनाओं का उल्लेख है। परन्तु बाद में चिकित्सा शास्त्र में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ हो गयीं। उदाहरण के लिये बटक या बटी कल्पना, इसमें रत्ती से लेकर मोदक या पिण्डी अथवा पिण्ड (रसोन पिण्ड आदि) तक के आकार की गोलियाँ बनीं। यूनानी चिकित्सा में यह विषय बहुत ही विस्तृत हुआ। उसमें अर्क, पानक, मुरब्बा गुलकन्द, जौहर आदि अनेक नयी कल्पनाएँ हुईं। यह चिकित्सा शास्त्र का यौवन काल था। आज भी यूनानी चिकित्सा में जितनी अधिक कल्पनायें मिलती हैं,

---

१. द्रव्य गुण विज्ञानम्—उत्तरार्द्ध पृष्ठ २१
२. काश्यप संहिता में—चूर्ण शीत कषायश्च स्वरसोऽभिषवस्तथा। फाण्टः कल्कस्तथा क्वाथो यथा वत्तं निबोध मे॥ खिल. ३।३५

उतनी प्राचीन ग्रन्थों में नहीं। आयुर्वेद के विकास की दृष्टि से इनको ग्रहण करना उत्तम है। इसी से उनको भी इसमें स्थान दिया गया है।

यह सत्य है कि इन सब कल्पनाओं का समावेश अत्रिपुत्र की कही पाँच कल्पनाओं में हो जाता है, फिर भी, उनके रूप और क्रिया-बनावट-गुणों की दृष्टि से भिन्नता रहने पर उनको जानना आवश्यक है। इसी से उनको यहाँ स्थान दिया गया है। यह विज्ञान की पृथक् शाखा है। इस शाखा के कई विभाग हैं, यथा—

१—**मैटरीया मैडिका**—(निघण्टु) या फार्मेको गौनोसी (Pharmacognosy) इसमें औषध द्रव्य के रसायनिक घटक, भौतिक स्वभाव, प्राकृतिक इतिहास, उत्पत्ति आदि का ज्ञान रहता है।

२—**फार्मेसी** (औषध निर्माण)—इसमें औषध बनाने, इनको परस्पर मिलाने का वर्णन है जिससे कि शरीर में देने पर शरीर के लिये उपयोगी बन सकें।

३—**फार्मे कोलोजी** (औषध क्रिया विज्ञान)—इसके द्वारा औषध का शरीर पर, उसके अवयवों पर, उसकी इन्द्रियों पर पड़ने वाले प्रभाव एवं स्वास्थ्य के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का ज्ञान होता है।

४—**थैराप्युटिक्स**—(चिकित्सा विज्ञान)—रोग में औषध का उपयोग। यह दो प्रकार है: १—सहेतुक या सयुक्तिक (युक्ति व्यपाश्रय) चिकित्सा; २—अहेतुक-दैव व्यपाश्रय चिकित्सा—जिसमें परिणाम बरत कर ही पता चलता है। आयुर्वेद की रस चिकित्सा बहुत कुछ अहेतुक है। इसीलिये रस चिकित्सा के सम्बन्ध में कहा जाता है, कि रस चिकित्सा में न तो दोषों का, न रोगों का, न दूष्यों का विचार किया जाता है। इनमें एक ही रसौषध (मकरध्वज ही) भिन्न-भिन्न अनुपान से बहुत से रोगों में बरती जाती है। इसी से कहा गया है—

रसेन वीर्येण गुणैश्च कर्म द्रव्यं विपाके च यद् विदध्यात्।
सद्योऽन्यथा तत् कुरुते प्रभावात् हेतोरतस्तत्र न गोचरोऽस्ति॥

—अ० सं० अ० १७

आयुर्वेद में 'प्रभाव' क्रिया ही ऐसी बतायी गयी है, कि उसके सम्बन्ध में हम कोई युक्ति या तर्क नहीं दे सकते। कोई औषध रस से काम करती है (यथा नीम की हरी शाखा या नीम के पत्ते), कोई वीर्य से (यथा कुचले का सत्व स्ट्रिकनीन), कोई गुणों से (यथा संखिया) और कोई विपाक से (यथा पिप्पली) कार्य करती है। परन्तु कोई

द्रव्य रस-वीर्य–विपाक-गुण के विपरीत यदि कार्य करता है तो इसका कारण प्रभाव ही है।[१] प्रभाव अचिन्त्य है। इसके विषय में हम तर्क नहीं कर सकते।

आयुर्वेद के अनुसार औषध का सम्बन्ध प्रथम जिह्वा या रसना से होता है। यदि उस द्रव्य की कार्यशक्ति रस पर निर्भर है, तो तुरन्त कार्य होता है। लाल मिर्च के खाने के साथ ही मुख से पानी आने लगता है (कटुको रसो वक्त्रं शोधयति–चरक) चीनी का मीठा शर्बत पीने के साथ यात्रा की थकान मिटती है। (मधुरो रसः बल-वर्णकरः पित्त विषमारुतघ्नस्तृष्णा प्रशमनः—चरक। यह इसका कार्य है। जिह्वा के साथ सम्बन्ध होते ही द्रव्य ने कार्य किया। कोई द्रव्य अपने वीर्य या शक्ति से कार्य करता है। अश्वगन्धा या दूध से शुक्र की जो वृद्धि होती है वह इनके शीत वीर्य के ही कारण है। इसी प्रकार राई या सरसों का लेप करने से जो उष्णिमा अनुभव होती है, वह इनके उष्ण वीर्य से है। औषध का सम्बन्ध शरीर से होना आवश्यक है। परन्तु प्रभाव पक्ष में औषध का सम्बन्ध शरीर से सब अवस्थाओं में आवश्यक नहीं है। यही भिन्नता आयुर्वेद में इस सम्बन्ध में है।

यूनानी चिकित्सा की दृष्टि से संसार के सब पदार्थ तीन रूपों में मिलते हैं—(१) ठोस (२) द्रव (जलीय) और (३) वायवीय। इसलिए सब प्रकार की औषधियाँ भी इन्हीं तीन रूपों में मिलती हैं। इनमें ठोस रूप में गोली, चूर्ण आदि हैं। द्रव रूप में शर्बत, तैल, अर्क आदि तथा वायवीय रूप में–धूपन (व्रणधूपन-योनिधूपन); उष्म स्वेद; आदि हैं। अवलेह आदि रूप ठोस और जलीय रूप के मिश्रण हैं। परन्तु आयुर्वेद में द्रव्यों का विचार पंच महाभूतों की दृष्टि से हुआ है, कषाय कल्पना की दृष्टि से नहीं। आयुर्वेद में कषाय कल्पना पाँच ही प्रकार की मानी है। शेष सब कल्पनाओं का आधार ये ही कल्पनाएँ हैं। कल्पना का यही एक मुख्य अभिप्राय है कि औषध के क्रियाशील तत्त्व की इच्छित मात्रा रोगी को मिल जाये। यह आवश्यक नहीं कि अधिक मात्रा दी जाये। उदाहरण के लिये जयपाल (जमालगोटे) या भिलावे के तेल की मात्रा को कम करने के लिए हम उसका शोधन करते हैं।[२]

---

१. प्रभाव के सम्बन्ध में—लेखक की 'भैषज्य कल्पना' में देखें।

२. कुछ वैद्य यूनानियों की देखा-देखी स्वरस को निकाल कर कुछ देर रख देते हैं। इसका बैठने वाला पदार्थ जब बैठ जाता है, और द्रवांश नितर जाता है, तब उसका उपयोग करते हैं। इस विधि में स्वरस का पूरा गुण नहीं होता। यह सत्य है कि इसमें अन्य पदार्थ नहीं जाता, परन्तु वह जाना आवश्यक है। स्वर्ण वसन्त मालती में निम्बू की भावना, वसन्त कुसुमाकर के बनाने में मालती, केले के रस आदि की

स्वरस कल्पना

"सद्यः समुद्धृत प्रक्षालित क्षुण्णस्य तान्तवनिष्पीड़ितस्य निर्यासः स्वासः"

—अ० सं० क० क० ८

कृमि आदि से अदूषित, ताजी, हरी वनस्पति को लेकर, उसे जल से धोकर, छोटे टुकड़े करके ऊखल में कूट या शिला पर पीस; यंत्र से या हाथ से दबा कर रस निकाले। फिर इसको वस्त्र में से छान ले। इस प्रकार के निकले रस को **स्वरस** कहते हैं।

यदि आर्द्र (हरे-ताजे) द्रव्य का स्वरस न मिले तो सूखे द्रव्य का यथावश्यक चूर्ण करके, उसको उतने ही जल में भिगो कर मृत्पात्र में चौबीस घण्टे ढक कर रख छोड़े। अगले दिन उसे हाथ से मसल कर कपड़े से छान कर इसका स्वरस के समान प्रयोग करे। इस प्रकार के बनाये स्वरस प्रायः चूर्ण को भावना देने के काम आते हैं। चरक ने यह अनुकल्प विधि औषधियों के भावना प्रकरण में ही लिखी है। (चरक चि० अ० १।पा० २।१२।

शार्ङ्गधर में अन्य भी नियम बताये हैं; यथा—

(१) एक कुड़व (१६ तोला) द्रव्य लेकर उसका चूर्ण बना कर; इसको बत्तीस तोला जल में भिगो दे। चौबीस घन्टे के पीछे छान कर काम में लायें।

(२) शुष्क द्रव्य को लेकर—उसके यवकूट करके आठ गुणे जल में पकाये, और जब जल चतुर्थांश रह जाये, छान कर काम में लायें।

ये सब अपवाद एक प्रकार से अग्रिम शृत कल्पना और शीत कल्पना के रूप में हैं। वास्तव में स्वरस कल्पना में हरी वनस्पति को कूट-निचोड़ कर निकाला रस ही स्वरस है। चरक ने जो शुष्क औषध के लिये नियम बताये हैं, वह भावना विषयक हैं। शार्ङ्गधर के भी बताये नियम भावना के लिये ही समझने चाहिए।

मात्रा—स्वरस सब से भारी एवं बलशाली है। इसीलिये इसकी मात्रा आधा पल (२ तोले) की है। अनुकल्प विधि से तैयार किये स्वरस की मात्रा एक पल (चार तोला) है। यह मात्रा कोमल औषधियों की जाननी चाहिए। मध्यम वीर्य वाली औषधियों की मात्रा एक तोला और तीक्ष्ण वीर्य औषधियों की मात्रा ३ मासा समझनी चाहिए।

भावना भी स्वरस को नितार कर देते हैं। यह मेरी दृष्टि से उचित नहीं है। वस्त्र में छानने पर (बहुत महीन वस्त्र नहीं लेना चाहिए न बहुत मोटा) जो रस निकले उसे स्वरस रूप में ग्रहण करना चाहिए।

प्रक्षेप—स्वरस में घी (या तैल) मिश्री, गुड़ अथवा शहद डालना हो तो दो तोले स्वरस में आधा तोला मिलाये। लवण, क्षार और पीपल आदि का चूर्ण रोग एवं रोगी का बल देखकर मिलाये।

वक्तव्य—जो औषधियाँ सदा ताजी और हरी रहती हैं (जैसे लताएँ या क्षुप्प श्रेणी की वनस्पतियाँ), उनमें सार भार उनकी आर्द्रावस्था में ही रहता है। सूखने पर वह नष्ट हो जाता है। जिन औषधियों का सार भाग उनके द्रवांश में अधिक पाया जाता है, उनका उपयोग स्वरस कल्पना में होता है। औषधि के गुणवृद्धि के लिए उसके स्वरस की भावना ही देते हैं[1] (जैसे आमलकी चूर्ण को हरे आँवलों के रस से ईक्कीस बार भावना देने पर उत्तम रसायन बनाती है)। रसोषधियों में गुणवृद्धि के लिए (यथा वसन्त कुसुमाकर में) अथवा दोषपरिहार के लिए (यथा अश्वकञ्चुकी रस को जमाल गोटे के दोष को निकालने के लिए भाँगरे के रस की ईक्कीस भावनाएँ दी जाती हैं) वनस्पतियों के स्वरसों की भावनाएँ दी जाती हैं। रसौषधियों में मुख्यतः स्वरस का उपयोग होता है। इसमें स्वरस की मात्रा भी एक तोले के लगभग ही रहती है। धातुओं की भस्म बनाते समय,वनस्पतियों के स्वरसों की भावनाएँ उनको दी जाती हैं।

पुट पाक

पुट पाक का अर्थ बन्द करके अग्नि में पकाना है। इस विधि में यदि द्रव गीला हो तो (जैसे—आम, जामुन, बेल आदि के पत्ते या इनकी छाल) इसको शिला पर पीस-कर कल्क बना लें। शुष्क हो तो उसका कपड़छान चूर्ण करके थोड़ा सा जल मिलाकर (जिससे कि पिण्डाकार बन सके) कल्क बनाय। अब इस कल्क का गोला बनायें। गोले के ऊपर आम, जामुन, कमल आदि मृदु वीर्य वनस्पति के पत्ते लपेट कर ऊपर से धागे से लपेट दें। इसके ऊपर गूँधे (साने) आटे अथवा तालाब के अन्दर की चिकनी मिट्टी का (जो मिट्टी खूब सनी हो, अग्नि से फटे नहीं) दो अँगुल मोटा लेप कर दें। इस गोले को अब निर्धूम कण्डों की अग्नि में रख दें। जब गोले के ऊपर की मिट्टी लाल हो जाये, तब उसे निकाल कर ठण्डा होने दें। बाद में मिट्टी, आटा, धागा, पत्ती उतार कर कपड़े में कल्क को रखकर निचोड़ लें। निचोड़े हुए स्वरस का व्यवहार करें।

यह स्वरस विना अग्नि के बनाये स्वरस की अपेक्षा हल्का तथा सुपच होता है।

---

१. भूयश्चैषां बलाधानं कार्यं स्वरस भावनैः (सुभावितं अल्पमपि द्रव्यं स्याद् बहु-कर्मकृत् ।।—चरक क० अ० १२।

इसी लिए बच्चों को एवं निर्बल अग्निवाले व्यक्तियों के लिए, विशेष कर उदर या आमाशय सम्बन्धी विकारों में, यथा, अतिसार, प्रवाहिका में लाभदायक है।

वक्तव्य—सामान्यतया बेल, अडूसा, कुड़ा, बरगद, आम, जामुन आदि वृक्षों के कोमल पत्ते (पल्लव–लाल या बहुत हरे कोमल पत्ते नहीं, न बहुत पके लेने चाहिए) लेने चाहिए। इन पत्तों से बिना गरम किये स्वरस पूरी मात्रा में एवं ठीक प्रकार से नहीं निकलता। इस लिए पुट पाक विधि से सुगमतापूर्वक निकल जाता है।

श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य ने एक और भी विधि दी है। इसमें–बेल, नीम आदि की जिन पत्तियों से स्वरस निकालना हो, उनको धोकर एक चौड़े बर्तन में पानी भर कर और उस पर ढीला कपड़ा बाँधकर; रख दें। पत्तियों को एक थाली से ढांप दें। पानी को १५–२० मिनिट गरम होने दें। बाद में पत्तियों को पीसकर-निचोड़कर स्वरस काम में लायें।

परन्तु प्रथम विधि से निकाला स्वरस अधिक गुणकारी है (आलू को पानी में उबाल कर खाने में एवं आलू को आग में भून कर खाने में मिठास का अन्तर है। साथ ही पानी में उबला आलू दुर्जर है, अग्नि में भूना सुपच है। इसीलिये कन्द-मूल अग्नि में भून कर ही खाये जाते हैं)। पान के पत्तों का रस या आर्द्रक का रस निकालकर उसको थोड़ा सा गरम करके भी पुट पाक स्वरस के रूप में आत्यन्तिक अवस्था में काम में ले सकते हैं। इनको उबालना नहीं चाहिए, केवल गुनगुना गरम करना चाहिए।

पान या बिल्व आदि के पत्तों का रस निकालने के लिए इन पत्तों को रात्रि में धोकर, गीला ही एक गीले वस्त्र में (बोरी या टाट उत्तम है), लपेट कर, इसके ऊपर भारी पत्थर या बोझ रख देना चाहिए। फिर प्रातःकाल इनको कूट कर निचोड़ने से रस सुगमता से निकल आता है।

स्वरस का गुण इसके ताजेपन में ही है। अग्नि पर उबालने या देर तक रखने पर इसका वैसा गुण नहीं रहता। परन्तु आजकल कुछ व्यापारिक संस्थाएँ अलकोहल के द्वारा इसको सुरक्षित करती हैं। इसके लिये वे तीन भाग स्वरस में एक भाग ९० प्रतिशत तक अलकोहल का मिलाते हैं। इसको सात दिन रख कर बाद में कपड़े से छान कर काम में लाते हैं।

इस विधि से बनाया स्वरस तुरन्त निचोड़े हुए रस की भाँति गुणकारी तो नहीं होता, परन्तु संतोष के रूप में काम में लिया जा सकता है। अनुपान के रूप में स्वरस सदा ताजा ही काम में लाना चाहिए। अतिसार-प्रवाहिका आदि में स्वरस को थोड़ा गरम करने से वायु नहीं बढ़ती। इस अवस्था में पुट पाक विधि से निकाला स्वरस उत्तम है।

पुट पाक में आटा और तालाब की गीली मिट्टी का लेप करने से पत्तों का कल्क जल्दी नीरस नहीं होता। तालाब की गीली मिट्टी पानी में भीगी रहने से जल्दी फटती नहीं। अग्नि सह्य होती है। पुट पाक विधि एक प्रकार से पिष्ट स्वेद विधि है, जिसमें वस्तु भाप से सीझती है।

कल्क कल्पना

"उपलदशनादि पिष्टस्तु कल्कः"—अ० सं० क० अ० ८

द्रव आर्द्र लेकर—उसे जल से धोकर पत्थर या दाँतों से पीस कर, चबाकर, लुगदी या चटनी बनाना कल्क है। शुष्क हो तो उसमें पानी मिला कर पीसना कल्क है। सामान्य भाषा में इसका अर्थ चटनी बनाना है। इसी को **प्रक्षेप, कल्क, आवाप** कहते हैं। सामान्यतः खाने के अर्थ में कल्क और तैल, घृत आदि में जो कल्क दिया जाता है, उसको आवाप या प्रक्षेप कहते हैं।[१]

कल्क की खाने की मात्रा एक तोला है। यह मात्रा मृदु वीर्य औषध के लिए है। मध्यम वीर्य औषध के लिए आधा तोला और तीक्ष्ण वीर्य औषध के लिये ३ मासा मात्रा देनी चाहिए।

कल्क में मधु, घृत या तैल मिलाकर देना लिखा हो तो कल्क से द्विगुण मात्रा में मिला कर दें। मिश्री और गुड़ मिलाना हो तो कल्क के बराबर मिलायें। कल्क को जल, दूध, आदि द्रव पदार्थ में घोल कर पीने को लिखा हो तो कल्क से चारगुणे द्रव में मिलाकर बरतें।

वेशवार—यह भी कल्क का ही भेद है। इसमें परिभाषा के अनुसार अस्थि रहित मांस को स्विन्न कर पानी में उबाल कर नरम करके, गुड़, घी, पिप्पली, मरिच के साथ शिला पर पीस लेना वेशवार कहा जाता है।

वक्तव्य—स्वरस में द्रव भाग ही दिया जाता है। काष्ठ भाग फेंक दिया जाता है। परन्तु कल्क में सार भाग और काष्ठ भाग दोनों ही लिये जाते हैं। अतः स्वरस की अपेक्षा कल्क लघु (अल्प वीर्य) होता है। जिन द्रव्यों का सार भाग द्रवांश और काष्ठ भाग दोनों में रहता है, उन द्रव्यों का कल्क बनाया जाता है, यथा—पोदीना, लहसुन आदि। चन्दन, अगरु आदि कठिन द्रव्यों को पत्थर पर घिस कर कल्क बनाया जाता है। दाँतों से चबाकर सम्पूर्ण द्रव्य को जब निगला जाता है (यथा—सेव के खाने

---

१. यूनानी वैद्यक में कल्क को नुगदा कहते हैं: इसी से लुगदी या लुबदी ये हिन्दी शब्द बने हैं।

में) तो यह भी कल्क ही है, परन्तु ऊख को चूसकर, चबा कर जब केवल इसका रस ही निगला जाता है, और छूंछा (फोक) फेंक दिया जाता है, तो यह स्वरस कक्षा में आता है। नारंगी-संतरा के चूसने में भी स्वरस और कल्क का यही विचार है।

चूर्ण कल्पना

शुष्कपिष्टः सूक्ष्मतान्तव पटश्च्युतश्चूर्णः। तस्य समस्त द्रव्य परित्यागात् आप्लुतोष योगाच्च कल्काद भेदः। —अ० सं० क० अ० ८

अतिशय सूखे द्रव्य को शिला पर अच्छी प्रकार पीसकर अथवा इमामदस्ते में अच्छी प्रकार कूट कर महीन वस्त्र में छान लें। इसको **चूर्ण** कहते हैं। **रज** और **क्षोद** चूर्ण के पर्याय हैं। इस कल्पना में भी द्रव्य का अंश छोड़ा नहीं जाता। चूर्ण को द्रव पदार्थ के साथ मिला कर खाया जाता है। इसलिये चूर्ण और कल्क में भेद नहीं है। चूर्ण का बहुत ही कठिन भाग या जो बहुत मोटा भाग होता है उसको भले ही छोड़ दें—(छानने से बचा भाग रह जाये), परन्तु यथासम्भव उसका सम्पूर्ण भाग ही लिया जाता है।

अत्यन्त बारीक-सूक्ष्म करने के लिए (यथा अंजन आदि में) चूर्णों को रेशम में से छानना चाहिए। खाने के चूर्ण खद्दर के वस्त्र में से छाने जा सकते हैं। अवलेह आदि में मिलाने के लिए चूर्णों को मारकीन या पतला मलमल से छानना चाहिए। चूर्ण छानने के लिए जाली की छलनियाँ भी आती हैं। चूर्णों के लिये सामान्यतः अस्सी नम्बर की मैस-जाली उत्तम है।[1] अतिशय सूक्ष्म करने के लिए अधिक मैस की जाली लेनी चाहिए। यह जाली ताँबा, पीतल, लोहे की होती है। सामान्यतः पीतल की जाली उत्तम है। परन्तु यह टूटती जल्दी है। लोहे की जाली को जंग से बचाना चाहिए। जाली का काम होने पर उसे धोकर, धूप में सुखाकर और तेल लगाकर रखना चाहिए।

मात्रा—चूर्ण की सामान्य मात्रा आधा तोला है। यह मात्रा मृदुवीर्य औषधियों के चूर्ण के लिए है। द्रव्य मध्यवीर्य हो तो मात्रा ३ मासा और तीक्ष्णवीर्य द्रव्यों के चूर्ण की मात्रा १½ मासा है।

प्रक्षेप—चूर्ण में गुड़ या मिश्री मिलाना लिखा हो तो गुड़ चूर्ण के बराबर और मिश्री चूर्ण से दुगनी लेनी चाहिए। यह वहीं के लिये नियम है, जहाँ परिमाण न लिखा

---

१. मैस से अभिप्राय छेदों से है। एक वर्ग इंच में जितने छेद होते हैं, उतने मैस या छेदों की जाली कही जाती है। यदि एक वर्ग इंच में एक सौ छेद हों तो जाली १०० नम्बर की कही जायेगी।

हो। परिमाण दिया हो तो उसी के अनुसार डालें। घी, शहद या तैल चूर्ण से दुगनी मात्रा में मिला कर चटायें। चूर्ण को खिलाकर ऊपर से द्रव पदार्थ पिलाकर निगलवा देते हैं। कोई-कोई वैद्य चूर्ण को द्रव पदार्थ में घोल कर भी देते हैं। चूर्णों में यदि हींग मिलानी हो तो इसको घी में भून कर (कच्ची न रहे) इतनी मात्रा में मिलानी चाहिए कि ग्लानि या उत्क्लेश-जी मचलाना न करे। यदि द्रव में घोलकर चूर्ण देना हो तो इसको चार गुणे जल में घोलना चाहिए।

भावना विधि—चूर्ण को स्वरस की भावना देनी हो तो इसमें द्रव पदार्थ इतना डालना चाहिए कि सारा चूर्ण द्रव से भीग जाये। फिर इसका मर्दन करके धूप में सुखाना चाहिए। सूखने पर फिर पूर्वोक्त विधि से भावना देकर मर्दन करें।[1]

शृत कषाय

"क्वाथो निर्यूहः। तत्र भेद्यान्यणुशो भेदयित्वा, छेद्यानिछेदयित्वा, प्रक्षाल्योदकेन, अधःप्रलिप्तायां ताम्रायोमृन्मयान्यतमायां स्थाल्यां समावाप्य, वह्वल्प पानीय ग्राहितानाभौषधानामकलय्य यावता मुक्त रसता स्यात्तावदुदक मासेचयेच्छोषयेच्च। अथाग्नावधिश्रित्य महत्यासने सुखोपविष्टः सर्वतः सततमवलोकयन् दर्व्याऽवघटयन् मृदुना परितः समुपगच्छाऽनलेन साधयेत्। अवतार्य च परिशृतं यथार्हं स्पर्शं प्रयुञ्जीत।

——अ० सं० क० अ० ८

उद्भिज्ज वनस्पति द्रव्यों को गीले रूप में लाकर उनको जल से धोकर, सुखे द्रव्यों को वैसा ही लेकर; उनके छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर, ऊखल या इमामदस्ते में कूट कर, नीचे तले पर मिट्टी का लेप किये हुए, कलईदार ताम्र के; भीतर से चिकने

---

१. आयुर्वेद में 'चूर्ण' शब्द के अन्दर सब प्रकार के उपयोग में आने वाले, मोटे, सूक्ष्म सब प्रकार के चूर्णों का समावेश हो जाता है। यहाँ तक दरकच (यवकूट) चूर्ण से लेकर अंजन तक के सूक्ष्म चूर्ण सब चूर्ण शब्द से कहे जाते हैं। परन्तु यूनानी में इनके कार्य भेद से नामों में भी भेद है। चूर्ण को सामान्य रूप में सफूफ कहते हैं। मंजन को सनून, व्रण आदि पर छिड़कने के अवचूर्ण को जरूर; नाक में वायु से प्रधमन करने वाले चूर्ण को नफूख, नासा में छींक लाने के लिए सुँघाये जाने वाले चूर्ण को अतूस; आँख में लगाने के लिए बनाये सूक्ष्म चूर्ण को कुहल; सुरमह, वरूद; जलाकर प्राप्त किया धुआँ जो आँख में लगता है, वह काजल; मुखमण्डल चेहरे का रंग निखारने के लिए लगाया जाने वाला चूर्ण; क्रण प्रसाधन को गाजा कहते हैं। अंग्रेजी में चूर्ण को पाऊडर और लैटिन में पल्विस् कहते हैं।

लोहे के या मिट्टी के पात्र में डालकर इसमें पानी इतना मिलायें, जिसमें इनका सारभाग आ जाये अथवा जितना पानी ये अपने में ले सकें, उसके अनुसार पाँच या आठ अथवा सोलह गुणा जल मिला कर मृदु अग्नि पर पकायें। पकाते समय बड़े आसन पर (ऊँचे आसन पर) सुखपूर्वक बैठकर; बड़े कौंचे से इसको निरन्तर चलाते रहें। अग्नि चारों ओर एक जैसी लगे, इसका ध्यान रखें। जब देखें कि औषधियों का रस (सार भाग) जल में आ गया है और औषध नीरस हो गये हैं, तब पात्र को नीचे उतार लें। जल-गुनगुना हो, हाथ से छुआ जा सके तो इसका मजबूत कपड़े से, हाथ से दबाकर सम्पूर्ण रस छान लें। इसको **क्वाथ, शृत,** या **निर्यूह,** कहते हैं।

सामान्यतः मृदु द्रव्य में चार गुना, मध्यम द्रव्य में आठगुना, और कठिन द्रव्य में सोलह गुना द्रव-जल मिला होना चाहिए। चारगुना और आठगुना जल मिलाकर चौथाई और सोलहगुना मिला कर आठवाँ हिस्सा जल शेष रखते हैं। यदि मृदु, मध्य और खर तीनों प्रकार के द्रव्य मिले हों तो आठगुना जल देकर चौथाई बचाते हैं। द्रव्य के परिमाण से चार तोले तक द्रव्य होने पर सोलहगुना, पाँच से सोलह तोला तक द्रव्य हो तो आठगुना और सोलह तोले के ऊपर द्रव्य हो तो चार गुना जल मिलाना चाहिए।[1]

मात्रा—क्वाथ पीने की मध्यम मात्रा चार तोले की है।

प्रक्षेप—क्वाथ में मिश्री या चीनी मिलानी हो तो, वात रोग में क्वाथ की अपेक्षा चौथाई, पित्त रोग में अष्टमांश और कफ रोग में षोडशांश देना चाहिए। क्वाथ में शहद देना हो तो वात विकार में सोलहवाँ, पित्त विकार में आठवाँ और कफ विकार में चौथाई भाग मिलाना चाहिए। जीरा, गुग्गुलु, क्षार, नमक, शिलाजीत, हींग, सोंठ, मरिच, पिप्पली तथा अन्य द्रव्यों का चूर्ण क्वाथ में दो माशे (१२ रत्ती) की मात्रा में मिलायें। कल्क, गुड़, घृत, तैल, और गोमूत्र क्वाथ में एक तोले की मात्रा में मिलाना चाहिए। शुद्ध हींग का चूर्ण दो से पाँच रत्ती मिलायें (हींग को घृत में भून कर मिलायें)। एरण्ड तेल, गोमूत्र, नारायण तेल आदि रोग के अनुसार मिलायें।

क्वाथ का उपयोग अन्तः पिलाने के अतिरिक्त परिषेचन, व्रण प्रक्षालन, वस्ति आश्च्योतन, आदि कार्यों में भी होता है। घृत-तैल, आसव आदि कल्प भी क्वाथ से तैयार

---

१. यूनानी चिकित्सा में क्वाथ बनाने में कई बार पानी के स्थान पर अर्क का उपयोग होता है। परन्तु सामान्यतः अर्क उन्हीं पदार्थों का बनता है, जिनमें तेलीय पदार्थ या उड़नशील वस्तु होती है। इसलिए यदि क्वाथ में चन्दन, लौंग आदि हों तो इनको रात में जल में भिगो कर बाद में उनका पृथक् क्वाथ कर लें अथवा थोड़े पानी में भिगोकर बन्द बर्तन में उबाल कर काम लें।

होते हैं। यूनानी हकीम। की यह विधि उत्तम है कि क्लाथ को प्रातः रोगी को देकर उसकी फोक को भिगो कर रखवा देते हैं। सायंकाल चार बजे उसे फिर पकवा कर देते हैं। इस विधि का लाभ यह है कि औषध का तेज-अधिक बल प्रातःकाल की मात्रा में आ जाता है। उसका शेष क्रियात्मक अंश-थोड़ी मात्रा में सायंकाल रोगी को मिल जाता है। रात्रि में अधिक वीर्यशाली औषध देना भी रोगी को प्रायः ठीक नहीं। साथ ही एक बार के क्वाथ में प्रायः सब रस औषधियों का नहीं आता। मृदुवीर्य औषधियों को (सनाय, गुलाब के फूल, अमलतास का गूदा) इनको अर्क में भिगो कर या उबाल कर देते हैं।

सात प्रकार के कषाय--[1]

१. **पाचन कषाय**—इसमें क्वाथ करते समय द्रव की आधी मात्रा पकाते समय शेष रखी जाती है—अर्थात् चार तोले का दो तोला शेष रखा जाता है। इसका उपयोग आम दोष के पाचन के लिए होता है।

२. **दीपन कषाय**—इसमें क्वाथ करते समय द्रव की मात्रा का दसवाँ भाग शेष रखा जाता है। इस कषाय का उपयोग अग्नि बढ़ाने के लिए पाचक रस पैदा करने बढ़ाने के लिए होता है। यह कषाय स्रावों को शरीर के उपयोग के लिए अधिक उत्पन्न करता है।

३. **शोधन कषाय**—इसमें क्वाथ करते समय बारहवाँ भाग शेष रखा जाता है। इसका उपयोग मल या दोषों के शोधन में होता है। स्रावों को शरीर से बाहर करता है।

४. **शमन कषाय**—इसमें क्वाथ करते समय आठवाँ भाग शेष रखा जाता है। इस कषाय का उपयोग दोषों का शमन (शरीर के अन्दर ही शमन) करने में होता है दोषों को शरीर से बाहर नहीं करता।

५. **तर्पण कषाय**—इसमें क्वाथ करते समय जल क्वाथ्य द्रव्य के बराबर ही शेष रखा जाता है। यह कषाय रसरक्तादि धातुओं का संतर्पण करता है। कोई विद्वान् इस क्वाथ में उबाल आने तक ही क्वाथ करते हैं।

६. **क्लेदन कषाय**—इसमें क्वाथ करते समय चौथाई जल शेष रखा जाता है। यह कषाय धातुओं को क्लिन्न करता है (कुछ गीला-आर्द्र करता है; वायु से शुष्क हुए स्रोतों को क्लिन्न करने में बरता जाता है, यथा वातव्याधि में–माष बलादि पाचन कषाय)।

---

१. **हारीत संहिता—स्थान ३, अ० १**

७. **विशोषी कषाय**—इसमें क्वाथ करते समय सोलहवाँ भाग शेष रखा जाता है। यह कषाय धातुओं का शोषण करता है। उनको सुखाता है, (यथा प्रमेह में–असनादि गण का कषाय—यह मेद-वसा को सुखाता है)।

कषाय बनाने के सम्बन्ध में कुछ निर्देश—

१. कषाय करते समय जब यह अन्तिम सीमा तक पक जाये, तो इसको और अधिक नहीं पकाना चाहिए।

२. एक बार कषाय करके, इसको अग्नि पर से उतार कर ठण्डा हो जाने पर, पुनः इसको फिर से क्वाथ नहीं करना चाहिए (इसीलिए यूनानी हकीम फोक को छानकर बचे शेष भाग को—सायंकाल में पुनः क्वाथ करके-नये पानी में पकवा कर देते हैं)।

३. जिस कषाय में काली, नीली, झाँई-रेखाएँ या चमक दिखायी दे। जो कषाय घट्ट (गाढ़ा) लाल, पिच्छिल (चिकासयुक्त) या ढीला-पतला हो जाये (जिसमें ऊपर द्रवांश निखर आये) जो जल जाये, जिसमें दुर्गन्ध आने लगे या जिसमें सड़ने की गन्ध आती हो, उस कषाय को काम में नहीं लाना चाहिए।

४. कषाय की गन्ध उसके घटक-द्रव्यों की गन्ध के अनुसार होनी चाहिए। इस कषाय का दिखाव निर्मल-स्वच्छ-पारदर्शक होना चाहिए। ऐसा कषाय अमृत के समान होता है।

क्वाथ करने में यह आवश्यक है कि यह ताजा ही बनाया जाये। और इसको तुरन्त उपयोग में लेना चाहिए। इसमें जो उड़नशील द्रव्य होते हैं, उनको सुरक्षित रखना आवश्यक है। क्वाथ करने के लिए पात्र ढक्कनदार मिट्टी, स्टेनलैस स्टील या कलई किया पीतल का लेना चाहिए। क्वाथ करते समय पात्र का मुख आधा खुला रहना चाहिए। परन्तु अग्नि पर से उतार कर नीचे रख कर ढांप देना चाहिए।

शीतकल्पना

शीत सलिलाप्लुतस्तु निशा पर्युषितः शीतः"—अ० सं० क० अ० ८

दो तोला औषध के चूर्ण को मिट्टी या काँचके पात्र में बारह तोले गरम या ठण्डे जल में भिगोकर, ढांप कर, रात भर रहने दें; प्रातःकाल हाथ से मसल, कपड़े से छान कर, उसकी ४-४ तोला मात्रा आवश्यकतानुसार (दिन में तीन बार या दो बार) दें। इसको शीत या हिम कषाय कहते हैं।

शीतकषाय में मिश्री, गुड़, शहद आदि प्रक्षेप द्रव्य मिलाने हों तो क्वाथ के अनुसार मिलायें।

शीत कषाय प्राय: शीतवीर्य और सुगन्धित द्रव्यों से (धनिया, सौंफ आदि) बनाया जाता है। इनका उपयोग पित्त की शान्ति के लिए होता है। यह कल्पना पीने के लिए या शर्बत आदि बनाने के लिए भी (यथा चन्दन का शर्बत बनाने में) बरती जाती है।

फाण्ट कल्पना

क्षिप्त्वोष्ण तोये मृदितं तत् फाण्टमित्यभिधीयते--च० सू० अ० ४

मिट्टी के पात्र में चार तोला औषध का चूर्ण और सोलह तोला उबलता हुआ जल मिलाकर, ढाँप कर थोड़ी देर रहने दें। जब जल ठण्डा हो जाये, तो हाथ से मसल कर कपड़े से छान लें। इसको फाण्ट कहते हैं। इसकी मात्रा ४ से ८ तोला पीने को दें। फाण्ट में मिश्री, गुड़, चीनी, शहद आदि मिलाने को लिखा हो तो क्वाथ के अनुसार मिलायें। चार तोला परिमाण मृदु द्रव्यों का है। मध्यम वीर्य का दो तोला है। तीक्ष्ण वीर्य औषधियों का एक तोला चूर्ण लेना उचित है।

यूनानी वैद्यक में प्राय: अर्क के अन्दर अमलतास का गूदा, गुलकन्द आदि इसी विधि से रोगी को दिये जाते हैं। अर्क को गरम करके उसमें ये वस्तुएँ घोल कर देने में रोगी को ग्लानि जी मचलाना नहीं होता।

अवान्तर कल्प

अत्रिपुत्र ने पाँच ही कषाय कल्पना कही हैं। परन्तु इनके सिवाय अन्न-आहार सम्बन्धी, औषध सम्बन्धी अन्य बहुत सी कल्पनाएँ हैं, जिनका आयुर्वेद चिकित्सा में व्यवहार होता है। ये सब कल्पनाएँ इन्हीं पाँच कल्पनाओं का आश्रयभूत हैं। परन्तु क्रिया एवं उपकरण की भिन्नता से पृथक् हैं। इसलिये उनको अवान्तर नाम दिया गया है। इनमें मुख्य कल्पनाएँ निम्न हैं—

मन्थ

कूटे हुए चार तोले द्रव्य को मिट्टी के बर्त्तन में डाल, उसमें सोलह तोले ठण्डा जल मिला, मथानी से खूब मथकरकपड़े में से छानलें। इसकी आठतोला मात्रा दिन में दो बार करके दें (शा० म० ख० अ० ३)। शार्ङ्गधर ने मन्थ को फाण्ट भेद कहा है। परन्तु फाण्ट में गरम जल बरता जाता है। सुश्रुत (सू० अ० ४६) में मन्थका लक्षण दूसरा

दिया है। सुश्रुत का लक्षण आहार विधान की दृष्टि से है। जब कि शार्ङ्गधर का लक्षण औषध विचार से है। सुश्रुत के अनुसार सत्तू को थोड़े घी में मसल; ठण्डे जल में मिला, मथानी से खूब मथ कर पीने को दें इसको **मन्थ** कहते हैं। मन्थ में जल का परिमाण इतना लेना चाहिए कि मन्थन बहुत पतला और न बहुत गाढ़ा बने। मन्थ में चीनी, शहद या गुड़ मिलाना हो तो पीने वाले की रुचि के अनुसार मिलाना चाहिए। चूँकि मन्थ सद्यः तर्पण करने वाला है, पीने के साथ ही थकान, प्यास, उष्मा को शान्ति करता है, इसलिये इसको **तर्पण** या **संतर्पण** भी कहते हैं। सब प्रकार के मन्थों में सत्तू प्रधान अंग है। यह सत्तू मुख्यतः जौ या लाजा का बनता है। गेहूँ और चने का सत्तू भी बना कर जौ के सत्तू से मिला देते हैं।

सत्तू—सत्तू बनाने के लिए जौ ऐसे लेने चाहिए, जिनके पकने में केवल एक या दो दिन की देरी हो, अर्थात् जिनका दूधियापन जरा सा शेष रहा हो। पीले अभी पूर्ण रूप से न हुए हों। इन जौ को काट कर घर के आँगन में सुखा लें। बाद में इनको भाड़ में भुनाकर, चक्की में पीसकर, छानकर सत्तू बनालें। सत्तू न बहुत महीन और न बहुत मोटा होना चाहिए। इस प्रकार का बना सत्तू सूखे जौ से बने सत्तू की अपेक्षा उत्तम, सुपच और मधुर होता है।

तण्डुल जल

चार तोला चावल लेकर उसे पानी से धो लें। चावल व्रीही श्रेणी के लेने चाहिए, शाली नहीं। अर्थात् जो चावल जड़ाये गये हों, पौद उखाड़ कर न लगाये गये हों, उनको लेना चाहिए। सामान्य भाषा में इनको मोटा चावल कहते हैं। ये बरसात के पानी से ही पुष्ट होते हैं। जल्दी पक जाते हैं। इन चावलों को आठ गुणे जल में तीन से छः घण्टे तक भिगो कर कपड़े से छान लें। इसको **तण्डुलोदक** कहते हैं। तण्डुलोदक प्रायः संग्राही औषधियों के अनुपान में (यथा अतिसार या रक्तस्राव आदि में) दिया जाता है।

पानीय कल्पना

रोगों में पानी को उबाल कर अथवा औषध सिद्ध पानी (षड़ंग पानी कल्पना) दिया जाता है। इसके लिये आयुर्वेद में सामान्य विधान इस प्रकार है :—

उष्णोदक कल्पना—जल को औटाकर अष्टमांश, चतुर्थांश या आधा शेष रहने अथवा भली प्रकार उबलने तक पका कर कपड़े से छान लें। इसे उष्णोदक कहते हैं।

भेषज सिद्ध पानीय कल्पना—औषधि सिद्ध जल बनाना हो तो एक तोला औषध

के चूर्ण में ६४ तोला जल मिलाकर, क्वाथ विधि से क्वाथ करें। जब जल आधा शेष रह जाये, तो इसको उतार कर और छान कर रोगी को दें।

पानी की मात्रा का निश्चय करने के लिए देहाती उपाय यह है कि पानी को पात्र में डालकर ; इस जल की ऊँचाई एक तिनके या लकड़ी से माप लेते हैं। फिर पात्र को अग्नि पर रख कर गरम करते हैं; और जल की मात्रा तिनके के या लकड़ी से मापते रहते हैं। जब आधा या इच्छित परिमाण की आ जाये तब इसको छान लेते हैं।

आजकल अर्क से बहुत कुछ काम इस प्रकार के औषध सिद्ध जलों का लिया जाता है। लंवग का पानी टाईफाईड के लिये उत्तम है। यह आध्मान को रोकता है। इसके स्थान पर लौंग का अर्क भी बरतते हैं। अर्क की अपेक्षा औषध सिद्ध पानीय अधिक शीघ्र गुणकारी है। परन्तु जहाँ हर समय इनके बनाने का सुभीता न हो वहाँ अर्क का उपयोग करना चाहिए।

प्रमथ्या

चार तोला औषध के चूर्ण को जल में पीसकर कल्क बनायें। इस कल्क को ३२ तोला जल में पकायें। जब जल आठ तोला शेष रह जाये, तब छान लें। इस कल्प को **प्रमथ्या** कहते हैं (शा० म० ख० अ० २)।

प्रमथ्या के विषय में ग्रन्थकार एकमत नहीं हैं। अष्टांग संग्रह में प्रमथ्या के लिए लिखा है —मध्य दोष वाले अतिसार रोगी को लंघन करा के पीपल, सोंठ, वच, अजवाइन, धनिया और हरड़ इनका क्वाथ बनाकर, पिलायें, अथवा नागरमोथा, बेलगिरी, खस, सोंठ, और धनिये का क्वाथ बना कर दें। इन दोनों को **प्रमथ्या** कहते हैं। चक्रपाणि दत्त के अनुसार पाचन और दीपन गुण वाले कषाय को **प्रमथ्या** कहते हैं, (अष्टांग संग्रहकार के उपर्युक्त कषाय भी पाचन-दीपन गुण वाले हैं)। अष्टांग हृदय की व्याख्या में अरुणदत्त ने लिखा है कि द्रव्य का कल्क बनाकर क्वाथ करने से **प्रमथ्या** बनती है। इसी के आधार पर शार्ङ्गधर ने प्रमथ्या की परिभाषा बनायी है।

यहाँ पर द्रव्य की मात्रा चार तोला लिखी है। इस मात्रा को रोगी और रोग की दृष्टि से विचार करके एक से दो तोला लेना उचित है।

लाक्षारस कल्पना

लाख को छः गुना जल के अन्दर दोला यंत्र में पकायें। चौथाई जल शेष रहने पर, ठण्डा करके ईक्कीस बार कपड़े में से छान ले (जब तक लाक्षा घुलती रहे, मिट्टी न आये, तब तक छानें)।

मांस रस कल्पना

मांस रस बनाना हो तो जितने जल में मांस अच्छी प्रकार से पक कर उसका सार भाग जल में आ जाय, उतना जल लेना चाहिए। कोई आचार्य कहते हैं कि यदि मांस रस गाढ़ा बनाना हो तो ६४ तोले जल में ३२ तोला; मध्यम बनाना हो तो २४ तोला और पतला बनाना हो तो १६ तोला मांस देकर क्वाथ विधि से पकायें। मांस पक जाने पर कपड़े से छान लें। इसको मांस रस कहते हैं।

अमृतप्राश घृत, छागलाद्य घृत में इसका उपयोग होने से लिखा है।

क्षीरपाक विधि

क्षीरादि सहितं द्रव्यं न सम्यक् मुक्तरसं भवतीति; वारि क्वाथ पूर्वकं क्षीराद्यैस्तदुपदेशोऽनुपदग्धं क्वाथयेत्—अ० सं० क० अ० ८

औषध को दरदरा कर के उसमें १५ गुना दूध और दूध के बराबर जल मिलाकर उबालें। जब केवल दूध शेष रह जाये, तब उतार कर कपड़े से छान लें। इस कल्पना को **क्षीर पाक** कहते हैं। वृद्ध वाग्भट्ट ने लिखा है कि क्षीरादि के साथ औषध को पकाने से औषध अपना सम्पूर्ण रस-सारभाग क्षीरादि में नहीं छोड़ती,। इसलिए प्रथम औषध को जल में पका कर, उसके क्वाथ के साथ क्षीरादि को इस प्रकार से पकाया जाये, जिससे कि वे जले नहीं।

शार्ङ्गधर में द्रव्य से आठ गुणा दूध और दूध के बराबर जल लेने को लिखा है। यह मृदु द्रव्य—मुनक्का, अंजीर आदि के लिए है। अर्जुन की छाल आदि कठिन द्रव्यों के लिए तो क्वाथ करके फिर क्षीर पाक करना ही उत्तम है।

क्षीर पाक का लाभ यह है कि कुछ द्रव्यों का तीक्ष्ण वीर्य या कषायांश अधिक मात्रा में न आ जाये। इसलिए क्षीर पाक करना होता है। दश मूल आदि का वृद्ध वाग्भट्टोक्त विधि से कषाय करने में हानि नहीं। परन्तु लहसुन, भिलावा आदि तीक्ष्ण द्रव्यों को एवं अर्जुन, अशोक की छाल आदि कषाय द्रव्यों को प्रारम्भ से ही दूध के साथ पकाना अच्छा है। क्षीरपाक में लहसुन, भिलावें जैसे द्रव्य एक तोले से कम हों तो भी दूध १५ तोला लेना उचित है। क्षीरपाक विधि से दूध सुपच हो जाता है। पेट में आध्मान नहीं करता। साथ ही आहार और औषध दोनों का काम देता है।

मण्ड-पेया-विलेपी-यवागू

सिक्थके रहितो मण्डः पेयासिक्थ समन्विता
(यवागूर्बहु सिक्थास्यात् विलेपी विरलद्रवा)
विलेपी बहु सिक्थास्यात् यवागूर्विरवलद्रवा॥—सु० सू० अ० ४६.

सिक्थ–सिट्टी–चिकना भाग से रहित को भाण्ड या माण्ड कहते हैं। चावलों को पानी में पकाने पर जो ऊपर लिसलिसा द्रव भाग आता है, वह सिक्थ है। जिस यवागू में सिक्थ का भाग छोड़ कर केवल ऊपर का द्रव भाग लिया जाये, उसे **मण्ड** कहते हैं। जिस यवागू में द्रव भाग अधिक हो और सिक्थ कम हो उसको **पेया** कहते हैं। जिस यवागू में सिक्थ भाग अधिक हो उसको विलेपी कहते हैं। दूसरे आचार्यों का कहना है कि बहुत सिक्थ वाली वस्तु यवागू है। जिसमें द्रव भाग अलग रहे–वह विलेपी है। कोई आचार्य मण्ड-पेया-विलेपी इनको यवागू का भेद मानते हैं। परन्तु ग्रन्थकार की दृष्टि से, मण्ड, पेया, विलेपी और यवागू-ये चार कल्पनाएँ हैं। सामान्य भाषा में मण्ड से मांड (चावल आदि के पकाने पर ऊपर तैरता हुआ नितरा द्रवांश। इसी भाँति घृत मण्ड भी बनता है।) पेया-से रावड़ी-बाजरे आदि की घी में बनाई जो पी जाती है; विलेपी–अँगुली से चाटी जाये–हलुवा-पतला; यवागू–खीर या खिचड़ी में चावल और दूध, या दाल और चावल अलग दिखायी दें।

अवलेह-रसक्रिया

यदि क्वाथ, स्वरस आदि को मन्द अग्नि पर पका कर गाढ़ा कर लिया जाये, तो उसको **रसक्रिया, अवलेह,** या **लेह** कहते हैं। अवलेह एक प्रकार की चाटने योग्य वस्तु है। ठीक प्रकार तैयार हो जाने पर यह कड़छी या कौंचे से ऊपर उठाने पर एक लम्बी तार सा बनकर उठता है। थोड़ा ठण्डा कर जल में डालने से डूब कर एक स्थान पर बैठ जाता है। बिखरता नहीं। फूलता नहीं। ठण्डा होने पर अँगुली से दबाने पर अँगुली की छाप इस पर पड़ जाती है। जिस द्रव्य की रसक्रिया बनायी गयी हो, उसका गन्ध, वर्ण, और रस इसमें आ जाता है।

रसक्रिया को डल्हण में फाणित (राब) जैसा होना लिखा है। अवलेह फाणित से गाढ़ा होता है। फाणित, अवलेह और घन ये तीनों नाम पाक क्रिया भेद से हैं। फाणित-राब जैसी वस्तु ढीली रहती है : अवलेह जैसी वस्तु चाटने जैसी होती है। अंगुली से उतर जाती है। घन वस्तु कड़ी होती है। गोली बनाने के काम आती है।[1] अग्नि पर बहुत देर पकाने से, विशेष कर, जब इसमें द्रवांश कम हो जाये तो इसमें औषधि के गुण कम होने का भय रहता है। ऐसी अवस्था में (विशेष कर मृदु एवं सुगन्धित द्रव्य होने पर)

१. इस क्रिया को समझने के लिए ईख के रस का पाक देखना चाहिए। ईख का रस ही अग्नि पर पाक क्रिया भेद से राब, मिज्जा, गुड़, शक्कर, डली-कई रूप में बनता है। यह सब इसके पकाने की विशेषता से होते हैं।

जब रसक्रिया गाढ़ी हो जाये, और यह अनुमान हो जाये कि ठण्डी होने पर यह जम सकेगी, इससे गोली बन सकेगी, हाथ को नहीं चिपटेगी, तब इसको अग्नि पर से उतार कर चौड़े बर्तन में फैलाकर ठण्डा कर लें। फिर इसकी गोली बना लें।

वैद्यों में अवलेह बनाने की दो प्रथाएँ प्रचलित हैं। पहले में स्वरस या क्वाथ को अग्नि में पका कर गाढ़ा कर लिया जाता है और बाद में इसमें चर्ण का प्रक्षेप मिला दिया जाता है। दूसरे प्रकार में गुड़ या चीनी को पानी में घोल कर अवलेह जैसी चासनी बना कर औषध द्रव्यों का चूर्ण मिलाया जाता है। इसमें चीनी की मात्रा चूर्ण से चारगुणी और गुड़ की मात्रा चूर्ण से दुगनी होनी चाहिए। कलईदार बरतन में गुड़ या चीनी डाल कर इसमें पानी इतना डालें (गुड़ या चीनी से आधा पानी प्रायः उपयुक्त रहता है) कि गुड़ या चीनी इसमें सम्पूर्ण घुल जाये तब इसको अग्नि पर चढ़ा कर गरम करें। जब इसमें गाढ़ापन आ जाये तथा जल में डालने से नीचे बैठ जाये, तब इसको नीचे उतार कर इसमें चूर्ण मिला दें।

चीनी और गुड़ के मैल को हलवाइयों की भाँति दूध में बहुत सा पानी मिलाकर ऊपर से धार बाँध कर उबलते हुए शर्बत में गेरें। इस प्रकार गेरने से मैल ऊपर आ जायेगा। उसको करनी से अलग कर लें। दो तीन बार करने से सब मैल निकल जायेगा।

चूर्ण को आग पर नहीं रखना चाहिए, क्योंकि इनका वीर्य, इनकी गन्ध, उष्णिमा से नष्ट होने का भय रहता है। इसलिए चासनी जब तैयार होने को आ जाये तो इसे अग्नि से नीचे उतार कर, थोड़ा-थोड़ा चूर्ण डालते हुए कौंचे से चलाते जायें। थोड़ा चूर्ण मिलाना हो तो पाक हो जाने पर चाशनी को नीचे उतार कर, थोड़ी ठण्डी होने पर चूर्ण मिला दें। अवलेह में शहद मिलाना हो तो ठण्डा होने पर मिलायें।[1] केवल शहद में अवलेह बनाना हो तो शहद को मिट्टी, कलईदार बर्तन या स्टेनलैस स्टील के पात्र में डालकर इतना गरम करें कि शहद पतला हो जाये। फिर नीचे उतार कर ठण्डा होने पर ऊपर की झाग चम्मच से उतार कर, कपड़े में छान कर इसमें चूर्ण मिला दें। इस प्रकार बनाने से चूर्ण खराब नहीं होते; क्योंकि शहद का कच्चा पानी समाप्त हो चुका होता है।

---

१. आयुर्वेद में शहद को अग्नि पर गरम करना मना किया गया है। मधु और उष्णिमा का विरोध कहा है। परन्तु यूनानी हकीम मधु को अग्नि पर गरम करते हैं। उसकी झाग-द्रवांश समाप्त कर देते हैं। उनके बहुत से योग मधु वाले अग्नि पर ही पकते हैं।

मात्रा—अवलेह की मात्रा सामान्यतः एक तोला है। **अनुपान**—रोग के अनुसार दूध, यूष, क्वाथ, अर्क, जल आदि हैं।

बटक, बटिका, गुटिका

अवलेह को जब और अधिक घट्ट बनाया जाता है, तब यह पिण्डाकार या गोली के रूप में आने लगता है, और हाथों में नहीं चिपकता। जीभ को या दाँतों को नहीं पकड़ता। अंगुली से गोली बनाने पर गोली बनती है।

इन गोलियों को ही आकार भेद से भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं। यथा, गुटिका, बटी, मोदक, बटिका, पिण्डी, गुड़ और वर्त्ति। बटी के कई आकार बताये गये हैं—रत्ती प्रमाण, मुद्ग (मूँग) प्रमाण, चणक (चना) प्रमाण आदि। आकार से ही इनकी मात्रा एवं भार का उल्लेख किया है।

गुड़, शक्कर या गूगल जिसमें गोली बनानी हो, उसको अग्नि पर लेह की भाँति बनाकर चूर्ण मिलाकर गोली बनायें। गोली बनाने के लिए वही द्रव्यपाक उत्तम है, जिस पर हाथ या अँगुली के निशान ठीक तरह आ जाते हैं। गोली बनाते समय घी का व्यवहार अवश्य करना चाहिए। घी के लगने से गोली सूखती नहीं। मुख नहीं खुलता, फटती नहीं, और चमक बनी रहती है। कई लोग तेल का व्यवहार करते हैं, परन्तु तैल में स्थिरता नहीं होती, जल्दी शुष्क हो जाता है। गोली का खुरदरापन बना रहता है। मुख नहीं जुड़ता। विशेष करके गुग्गुलु जैसी रूक्ष गोलियों में घी अवश्य बरतना चाहिए। कुछ लोग गूगुल को अग्नि पर पकाये बिना ही उसमें चूर्ण मिलाकर गोलियाँ बनाते हैं। इस प्रकार से यदि गोली बनानी हो तो गूगुल को शुद्ध करके अथवा गूगुल के बड़े-स्वच्छ टुकड़ों को लेकर, इमामदस्ते में घी लगा कर गूगुल को खूब कूटें। कूटते-कूटते जब गूगुल नर्म हो जाये, तब इसमें चूर्ण थोड़ा-थोड़ा करके मिलायें।[1] जब चूर्ण मिल जाये (इसमें चूर्ण और गूगुल अलग न रहे) तब गोली बनायें।

गोली बनाने के निम्न लाभ हैं—

१. जो वस्तु अप्रिय गन्ध या स्वाद की होती है, वह इस रूप में सुगमता से गले से निगली जा सकती है। इसमें जिह्वा या दाँतों का संयोग नहीं होता।

---

१. जिस प्रकार कि देवमन्दिर में जलाने की धूप (सर्ज वृक्ष की लकड़ी) घी मिलाने से मुलायम हो जाती है, उसी प्रकार गूगुल भी घी मिलाने से मुलायम बनता है। गूगुल भी धूप के काम आता है।

२. कस्तूरी, केशर, अम्बर, कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्य उड़ते नहीं। वे देर तक सुरक्षित रहते हैं।
३. औषधि की शक्ति चूर्ण अवलेह की उपेक्षा इस कल्पना में अधिक समय तक सुरक्षित रहती है।
४. गोली इतनी बड़ी होनी चाहिए कि सुगमता से निगली जा सके।
५. गोली नर्म रहनी चाहिए। पत्थर जैसी कठिन गोली कई बार मल के साथ (बीजों की भाँति) बाहर आ जाती है। गोली कठिन हो गई हो तो उसे पत्थर से बारीक बना कर खरल में घोट कर शहद या जल के अनुपान से लेना चाहिए।
६. गोली पर पाचन रसों की क्रिया अवलेह या चूर्णों की अपेक्षा देर में होती है, और देर तक चलती है।
७. गोली बनाते समय औषधियों का चूर्ण बहुत ही सूक्ष्म चिक्कण होना चाहिए। मोटा चूर्ण गोली में काम नहीं देता।
८. मोदक, पिण्डी आदि बड़ी मात्रा में दिये जाने वाले योग मधुर और स्वादयुक्त होने चाहिए, क्योंकि ये दाँतों से खाये जाते हैं।

गुटिकाओं में—शर्करादि का परिमाण—गोली बनाने में चूर्ण से शक्कर चार गुणी लेनी चाहिए। गुड़ चूर्ण से दूना लेना चाहिए। गूगुल और शहद चूर्ण के बराबर लेना चाहिए। जल, स्वरस आदि द्रव, जितने में चूर्ण अच्छी तरह से मर्दन किया जा सके, इतने देने चाहिए। शरीर-रोग आदि के बल का विचार करके एक दिन में अधिक से अधिक एक तोले भर की गोली की मात्रा देनी चाहिए।[1]

वर्त्ति कल्पना

जो बटी लम्बी बनाई जाये, उसे वर्त्ति (बत्ती-दीपक में जलायी जाने वाली बत्ती जैसी) कहते हैं। जो वर्त्तियाँ गुदा, योनि या शिश्न में चढ़ायी जाती हैं, आयुर्वेद में इनको फलवर्त्ति कहते हैं।[2] फलवर्त्ति का उपयोग उदावर्त्त में मल और वायु के अनु-

---

१. निघन्ट रत्नाकर—पं० क० प्रकरण—
२. (क) अरबी और अंग्रेजी में इनके नाम भिन्न-भिन्न हैं, यथा-गुदा में रखने वाली फलवर्त्ति को अरबी में—हमूलः अंग्रेजी में रैक्टल सपोजेटरी, योनि में रखने वाली वर्त्ति को अरबी में फिर्जजह; अंग्रेजी में वैजाइनल सपोजेटरी; शिश्न में रखने वाली वर्त्ति को अंग्रेजी में—्यूरिथुल बूजी; नाक, कान या व्रण में रखने वाली वर्त्ति को अरबी में फ़तीला कहते हैं।

लोमनार्थ गुदा में रखने के लिए होता है, अथवा स्नेह वापिस न आने पर गुदा, योनि, शिश्न में रखने के लिये होता है। प्रायः देहातों में साबुन को पतले वस्त्र पर लगाकर या थोड़े से ही साबुन को लम्बा करके गुदा में रखते हैं, विशेष करके बच्चों के लिए, इससे वायु का अनुलोमन हो जाता है।

सामान्यतः फलवर्त्ति की मोटाई—अंगूठे जितनी होती है। इसको घी से चिकना करना चाहिए। इसे फलवर्त्ति कहते हैं। योनि और शिश्न में रखने में रखनेवाली उत्तरवस्ति की नली जितनी मोटी और लम्बी बत्ती हो बनानी चाहिए। योनि में रखी जाने वाली बत्ती गर्भस्राव या गर्भपात अथवा मासिक धर्म के विकार में उपयोगी है।[२] शिश्न में रखी जाने वाली फलवर्त्ति मूत्र लाने के लिये है।[१]

फलवर्त्ती गुड़ की चाशनी बना; उसमें औषध द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर बनानी चाहिए। इसमें गुड़ इतना डालना चाहिए कि वर्त्ति ठीक बन सके। नेत्र में अंजन करने के वर्त्ती को **नेत्रवर्त्ति** कहते हैं। व्रणों में रखी जाने वाली वर्त्ति को **विकेशिका** कहते हैं। विकेशिका को बनाने के लिए सूत या वस्त्र की बत्ती पर घी तैल, तिलकल्क, शहद आदि औषध लगाते हैं। इसका उपयोग गले हुए मांस वाले, कोटरवाले और अन्दर पूय वाले व्रणों में होता है।

(ख) आयुर्वेद प्रकाश में योनि में रखने के लिये पारद से बनाई जाने वाली 'जलौका' का उल्लेख किया है—

"जलौका जायते दिव्या रामाजन मनोहरा"—आ० प० १।४१७

वाल्ये चाष्टांगुलायोनौ यौवने च दशाङ्गुला। द्वादशैव प्रगल्भानां जलौका त्रिविधामता ॥

१. (क) गुदा में रक्खी जाने वाली वर्त्ति के लिये देखिये—चरक० चि० अ० २६।१२-—१५ योनि में रक्खी जाने वाली वर्त्ति के लिये देखिये—चरक० चि० अ० ५।१७५, १७६—

(ख) मूलं गवाक्ष्यः स्मर मन्दिरस्थं पुष्पावरोधस्य वधं करोति।
अभर्तृकाणां व्यभिचारिणीनां योगोऽयमेव द्रुत गर्भपाते ॥

(ख) मूत्राम्लपिष्टैः सगुड़ैर्वर्त्तिः कृत्वा प्रवेशयेत्।
अग्रे तु सर्षपाकारां पश्चाद् वै माष सेमिताम् ॥
नेत्र दीर्घां घृताम्यक्तां सुकुमारमभंगुराम्।
नेत्रवन्मूत्र नाडचां तु पायौवाऽङ्गुष्ठ सेमिताम् ॥

—चरक० उ० अ० ९।६३–६४.

धूमवर्त्ति कल्पना

आयुर्वेद में प्रायोगिक, स्नेहिक और वैरेचनिकी तीन प्रकार की धूमवर्त्ति का उल्लेख है। धूमवर्ति के द्रव्यों का उल्लेख आयुर्वेद ग्रन्थों में है।[१] इन द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण करके; इसको जल में महीन पीस, कल्क बनाकर, उसको जल में भिगोई हुई एक सरकण्डे की मजबूत सलाई पर लेप करे (जल में भिगोने से यह फूल जायेगी)। लेप अँगूठे जितना मोटा, जौ के समान मध्य में मोटा और दोनों सिरों पर पतला, आठ अंगुल लम्बा करें। लेप सूखने पर सरकण्डे के बीच से निकाल लें। इससे यह वर्त्ती सलाई के समान नली जैसी हो जायेगी। पीछे इस वर्त्ती पर घी लगा कर, धूमनेत्र में रख कर दियासलाई से जलाकर धूमपान करें।

यवागू कल्पना

औषध सिद्ध जल से यवागू बनायी जाती है। यवागू तीन प्रकार की है—मण्ड, पेया और विलेपी।[२] जिस यवागू में सिक्थ (सिट्ठी) का भाग छोड़ कर केवल ऊपर का

---

१. (क) आयुर्वेद में स्वास्थ्य की दृष्टि से धूमपान (चरक० सूत्र० अ० ५ में) विस्तार से दिया है; इसके सिवाय हिक्का-श्वास रोग में (चरक० चि० अ० १७।७८) भी रोगदृष्टि से धूमपान का विधान मिलता है; सामान्यतः वर्ति बनाकर ही धूमपान का विधान है। धूमपान में एक मुख्य बात दोनों में है—

धूम के द्रव्यों को घी से स्निग्ध करके पीना; घी से बिना स्निग्ध किये द्रव्य रूक्ष रहने से विशेष लाभ नहीं करते (तां घृताक्तां पिवेद् धूमं यवैर्वा घृत संयुतैः)। धूम का दूसरा उपयोग इस लिये भी है कि यह सूक्ष्म छिद्रों में जहाँ दूसरी औषध जल्दी नहीं पहुँचती—यह पहुँच जाता है; इसी से कहा है—

(लीनश्चेद् दोष शेषः स्याद् धूमैस्तं निर्हरेद बुधः—चरक० चि० १७।७७)

(ख) धूमवर्त्ति का उल्लेख कादम्बरी एवं नागर सर्वस्व में भी है—देखिये लेखक की 'प्राचीन भारत के प्रसाधन' नामक पुस्तक।

२. श्री शिवदास सेन जी ने यवागू को पेया और विलेपी भेद से दो प्रकार का माना है। दोनों प्रकार की यवागू के ऊपर के भाग को वे मण्ड कहते हैं। मण्ड का अर्थ स्वच्छ नितरा भाग है। इसी से घृत मण्ड भी कहा जाता है। घृत को गरम करने पर ऊपर जो नितरा-स्वच्छ चिकना भाग आता है, वह घृत मण्ड है, इसी प्रकार सुरामण्ड शब्द का व्यवहार मिलता है।

द्रव भाग लिया जाता है, उसे **मण्ड** कहते हैं। जिस यवागू में द्रव भाग अधिक हो और सिक्थ कम हो, उसे **पेया** कहते हैं। जिस यवागू में सिक्थ भाग अधिक और द्रव भाग कम हो, उसे **विलेपी** कहते हैं। जिसको यवागू देनी हो, वह एक समय में जितना भाग खाता हो, उसका चौथाई चावल लेकर उससे उसके लिए यवागू बनानी चाहिए। मण्ड बनाना हो तो मोटे चावलों में १४ गुना औषध सिद्ध जल देकर बनायें (इसमें मोटे चावल-ब्रीही उत्तम हैं; बारीक चावल-शालि अच्छे नहीं)। जब चावल अच्छी प्रकार से गल जाये, तब द्रव भाग नितार कर मण्ड भाग ले लें। पेया बनाते समय मोटे चावल पीस कर या बिना पिसे ही छः गुणा जल में पकाये। जब चावल सिज जाये, द्रव भाग अधिक हो, सिक्थ कम हो, तब उतार कर रोगी को दें। विलेपी बनानी हो तो मोटे पीसे चावल चार गुणा औषध सिद्ध जल में पकायें। जब द्रवांश कम हो जाये और सिक्थ अधिक रहे तब उतार कर रोगी को दें। चावल को थोड़ा भूँज कर यवागू बनाने से अच्छी बनती है।

भात के ऊपर से उतारे-नितरे मण्ड को भाषा में **माण्ड** कहते हैं। चावल के अतिरिक्त जौ, साँवाँ, गवेधुक (तिनी) आदि से यवागू बनायी जाती है। चावलों की भाँति जौ से मण्ड बनाया जाता है। उसे **यव मण्ड** कहते हैं। जौ को भाड़ में भून कर मण्ड बनाया जाये तो उसे **वाष्प मण्ड** कहते हैं। जौ को पहली रात पानी में भिगो कर प्रातः धूप में थोड़ा सुखा कर ऊखल में कूट कर छिलका उतार लेते हैं। फिर इनको भाड़ में मिट्टी के बर्तन में भून लेते हैं। इन भूने जौ के १४ गुणा जल में पकाना चाहिए।

जौ की भाँति ही धान्य से **लाजमण्ड** भी बनाया जाता है। इसमें धान्य (छिलके युक्त चावल) को रात में पानी में भिगो देते हैं। प्रातः जरा धूप देकर-ऊखल में कूटने से छिलका उतार लेते हैं। फिर भाड़ में भून कर खीला-लावा-लाजा बनाते हैं। इस लाजा को १४ गुणे जल में पकाने से **लाजमण्ड** बनता है। यह सब से हल्का सुपच आहार है। जब आमाशय में कोई वस्तु नहीं ठहरती हो और तुरन्त वमन होती हो तो शर्करा से मीठा करके या अनारदाने से खट्टा करके देना चाहिए।

कल्क साध्य यवागू कल्पना—इसके लिए तीक्ष्ण वीर्य औषध एक तोला, मध्यम वीर्य औषध दो तोला और मृदुवीर्य औषध चार तोला एक में पीसकर कल्क बना लेना चाहिए। रोगी एक समय में जितना भात खाता हो, उसका चतुर्थांश चावल लेकर, इस कल्क के साथ ६४ तोला जल देकर मण्ड, पेया, विलेपी रूप में यवागू बनायें।

यूषकल्पना

जल, क्वाथ, तक्र आदि द्रव पदार्थ के साथ मूँग, मसूर, मोठ, चना आदि शिम्बी

धान्य पका कर जो कल्प बनाया जाता है, उसे **यूष** कहते हैं। चावल जौ, साँवा आदि शूक धान्यों से जो कल्प तैयार किया जाता है, उसे **यवागू** कहते हैं। यूष पकाते समय मूँग मसूर का छिलका अलग होने लग जाये, मूँग मसूर आदि गल जाये, तब इसे सिद्ध समझें। अच्छा हो कि इनको रात में भिगो दें और प्रातः बनायें। अंकुरित धान्यों से मूँग-चना-मसूर-लोभिया आदि) से भी यूष बनता है।[1]

कृताकृत यूष--जिस यूष में नमक, सोंठ, दालचीनी, कालाजीरा,अनारदाना आदि मसाला न डाला जाये और स्नेह घृत-तैल का बघार (छोंक) न दिया जाये उसे अकृत यूष कहते हैं। जिसमें मसाला डाला जाये, तथा घी या तेल का छोंक लगाया जाये उसे कृत यूष कहते हैं।

उपयोगी यवागू

अत्रिपुत्र ने चरक में अट्ठाईस उपयोगी यवागू दी हैं। उनमें से थोड़ी सी यहाँ पर उदाहरण के रूप में दी जाती हैं—[2]

१. पिप्पली, पिप्पली मूल, चविका, चित्रक और सोंठ के साथ बनायी यवागू दीपनीय एवं शूल (उदर शूल) को नष्ट रकने वाली है।
२. कैथ, विल्वगिरी, चौपतिया, तक्र और अनारदाना से बनायी पेया पाचनी और संग्रहीक है; वायु दोष होने पर इसमें बृहद् पंचमूल भी मिला देना चाहिए।
३. शालिपर्णी, बला, बिल्वगिरी, पृश्नपर्णी, से बनायी एवं अनारदाने से खट्टी की पेया पित्त श्लेष्मा गले अतिसार रोगियों के लिए उत्तम है।
४. बकरी के दूध में आधा पानी मिला कर; हडवेर, कमल, सोंठ और पृश्नपर्णी से बनायी पेया रक्तातिसार नाशक है। यदि साम हो तो अतिविषा और सोंठ से बनायी पेया को अनारदाना से खट्टा करके दे देना चाहिए।
५. गोखरू; कटेरी से बनायी पेया में राब डाल कर मूत्र कृच्छ्र में देना चाहिए।
६. घृत और तैल-यमक में सिद्ध की हुई मदिरा पक्वाशय की दर्द को कम करती है।
७. पत्र शाक (पालक बथुवा आदि), मांस, तिल और उड़दों में सिद्ध यवागू, सूखे मल को (जब मल में गाँठें पड़ जायें, वह कड़ा हो जायेगा या, जिनको मलबन्ध रहता हो, उनके लिए उपयोगी है) बाहर करती हैं।

---

१. द्रवैर्बहुविधैः द्रव्यैस्तथा चान्नैरतण्डुलैः। यूष इत्युच्यते सिद्धो यवागूस्तण्डुलैः सह।
—काश्यप खि० अ० ७

२. चरक० सू० अ० २

८. जामुन, आम, की गुठली, कैथ, बेलगिरी इनसे सिद्ध यवागू संग्रही है।
९. तक्र में सिद्ध यवागू घी के अधिक खाने से उत्पन्न शिकायतों को दूर करती है।
१०. तक्र और खली में बनायी यवागू तैल के खाने से उत्पन्न शिकायतों को दूर करती है।
११. मुर्गे के मांस रस में सिद्ध यवागू वीर्य के मार्ग में होने वाली पीड़ा को दूर करती है।
१२. उड़द की दाल को घी में भून कर दूध में सिद्ध करके बनायी यवागू अति वृष्य है।

उपयोगी यूष

काश्यप संहिता में कुछ उपयोगी यूष दिये हैं। उनमें से यहाँ कुछ उदाहरण के लिए दिये जाते हैं।[1]

पाँच यूष—साफ-छिलके रहित पुराने मूँगों का दीपन द्रव्यों (पंच कोल आदि) से बना पतला **यूष(मण्ड)** है। इसी को थोड़ा घट्ट कर दें तो यह **यूष** होता है। इसी में थोड़ी छाछ (तक्र) मिला कर बनाया यूष-**विरसिका** कहाती है। इसी में अनारदाना और खट्टी छाछ मिलाये तो **रोचन** यूष कहलाता है। मूँग और अनारदाने से पकाया यूष **दाड़िम यूष** और आँवले और मकाया यूष धात्रीयूष कहाता है।

उड़द तिल, शिम्बी धान्य (सेम, राज माष आदि) और सरसों को छोड़कर चना, मूँग, मसूर, आदि सम्पूर्ण (बिना दले) धान्य लेकर उनका चित्रक, अनारदाना, सोंठ, पिप्पलीमूल आदि के साथ बना यूष धान्य यूष है।

लाल कचनार, श्वेत कचनार, सिम्बल के फूल, धातकी के फूल, सन या झिनझिनीया के फूलों से यूष बनायें। यह यूष-रक्त प्रदर, रक्तपित्त, दाह में उपयोगी है। इसमें तैल और खटाई न मिलायें। अनार दाना डाल कर बनायें तो आखों के लिये उत्तम है। विल्व, सहजन, एरण्ड, वला, आम के पत्तों से बना यूष पत्रयूष है। यह वायुनाशक है।

सन्धान कल्पना

गन्ने का रस, क्वाथ, आदि द्रव, सांवक आदि अन्न उबाल कर अकेला या औषध द्रव्य, अन्न, गुड़, किण्व, आदि के साथ मिला कर कुछ समय रख दिया जाये, तो इसको सन्धान कहते हैं। मद्य और शुक्त के भेद से सन्धान दो प्रकार का है। मद्य में मधुरता रहती है, परन्तु शुक्त में तिलकाई-खट्टापन रहता है। मद्य वर्ग में शीधु, वारुणी, अरिष्ट-आसव आदि आते हैं। शुक्त वर्ग में—तुषोदक, सौवीर, कांजीक, आदि आते हैं। सब

---

१. **यूष का लाभ—यूषादि व्यंजनोपेतं भोज्यं पथ्यतरं भवेत्।
स्वस्थानामातुराणं च विशेषारोग्यकारकम्॥ काश्यप ४।२**

अम्लों में मद्य की अम्लता सब से अधिक है। यह इसके गुणों के कारण है, न कि रस की दृष्टि से।[1]

सन्धान विधि से जो पेय तैयार किये जाते हैं, वे मद्य वर्ग में आते हैं। आयुर्वेद के आसव और अरिष्ट भी इसी वर्ग में हैं। आसव, अरिष्ट ये नाम आयुर्वेद के अपने हैं। इन नामों का सम्भवत: यही होगा कि धर्मशास्त्र में सुरा-मद्य नाम प्रसिद्ध थे। सुरा और मद्य का पीना बुरा माना जाता था। परन्तु शारीरिक लाभ के लिए इनका उपयोग आयुर्वेद में आवश्यक था। इसलिये लोगों से बचाने के लिये आसव और अरिष्ट नाम दिये गये हैं। ये दोनों नाम ऐसे थे कि जितना सामान्य व्यक्ति नहीं समझ सकता था। इनका अर्थ भी इन नामों में आ जाता है—अरिष्ट जो कभी नष्ट नहीं होता। बिगड़ता नहीं। इसी से वह कहा गया है कि अरिष्ट और आसव जितने पुराने होते हैं, वे उतने ही अधिक गुणकारी होते हैं। पुरानी शराब अधिक गुणकारी होती है। वैसे बाद में अरिष्ट और आसव के लिए जो लक्षण बताये गये (क्वाथ करके जो बनाया जाये वह अरिष्ट और जो औषधियों के बिना क्वाथ किया जाय और केवल पानी में जो डाल दिया जाये, वह आसव है। वे पूर्ण नहीं हैं, क्योंकि चरक संहिता में कल्पों का नाम देते समय इसमें अपवाद मिलता है, यथा, दुरालभासव। इसलिये आसव-अरिष्ट का किया लक्षण बहुत पूर्ण नहीं है। इनका अर्थ यही है कि अरिष्टं-न रिष्यते नष्ट नहीं होता, बिगड़ता नहीं,। आसवा-आसूयन्ते—इनमें औषधियों के गुण चुआ लिये जाते हैं। मद्य के अपने व्यवायी आशु, विकाशी, सूक्ष्म ये गुण ऐसे हैं, जिससे यह औषधियों के गुण जल्दी ही अपने में ले लेता है। इसी से आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में (एलोपैथी) में टिंचरस् का उपयोग है। आयुर्वेद की प्रक्रिया में सुरा पहले तैयार की जाती है। बाद में सुरा औषधियों का गुण अपने में लेती है। दूसरा भेद यह है कि सुरा एक ही प्रकार की नहीं बनती। प्रत्येक द्रव्य या औषधि समूहों से अलग-अलग बनती है। इस प्रकार

---

१. मद्य में सब से अधिक अम्लता है। इसका अभिप्राय मेरी दृष्टि में यही है कि इसकी अम्लता स्थायी एवं तीव्र होती है। देखने में जम्बीरी निम्बु (मातुलुंग) की अम्लता बहुत अधिक है। इतनी अम्लता शायद ही किसी मद्य में हो। अत्रिपुत्र ने जो यह कहा है कि "श्रेष्ठमम्लेषु मद्य"—वह इसके चौदह गुणों के कारण है, यथा

"मद्य स्याम्लस्वभावस्य चत्वारोऽनुरसाः स्मृताः ।
मधुरश्च, कषायश्च, तिक्तः कटुक एव च ॥
गुणश्चै दश पूर्वोक्ता स्तैश्चतुर्दशभिर्गुणैः ।
सर्वेषां मद्यमम्लानामुपर्युपरितिष्ठति ।" चरक०चि०अ०११५–११६

की बनी सुरा में इसको निर्माण करने वाले घटकों के गुण-दोष भी आते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में सुरा एक ही तरह की सब में बरती जाती है। यह सुरा (रैक्टीफाई स्प्रिट) ९० या ९९ प्रतिशत अलकोहल वाली होती है। इसमें औषधियों को कुछ समय तक भिगो कर रखते हैं। जब देखते हैं कि सुरा में इच्छित अंश, अमुक मात्रा तक आ गया है, तब सुरा को चुआ लेते हैं। इसमें अलकोहल की प्रतिशतक मात्रा ऊँची रहती है। आयुर्वेद विधि से बनाये आसव-अरिष्ट में अलकोहल की मात्रा सामान्यतः दो प्रतिशत तक से १० प्रतिशत ही पायी जाती है। ताड़ के गुड़ से और कापिशायनी या हारहूरा द्राक्षा से यह मात्रा तेरह प्रतिशतक भी की जा सकती है। कापिशायिनी द्राक्षा को सामान्य भाषा में मवेज कहते हैं। यह रंग में काली बहुत ही मधुर होती है। सामान्यतः लोहासव, कुटजारिष्ट, अरविन्दासव आदि में अलकोहल की मात्रा १॥ या दो प्रतिशत होती है। प्रायः ये खट्टे बनते हैं जब तक कि मधुर द्रव्य का परिमाण न बढ़ाया जाये।

मधुर द्रव्य—कितना आसव-अरिष्ट में डाला जाये। इसका स्थूल रूप से यही सूत्र है कि क्वाथ या द्रव का ५२ प्रतिशत होना ही चाहिए। एक द्रोण (१०२४ तोला) जल में गुड़ एक तुला (४०० तोला) और गुड़ आधा (२३० तोला) डालें, प्रक्षेप द्रव्य दसवाँ अंश डालना चाहिए। (अर्थात् ४० तोला डालना चाहिए)। मधुर द्रव्य जल का आधा या इससे कुछ अधिक होना चाहिए। अधिक मीठा होने पर भी सन्धान क्रिया ठीक नहीं होती। यही कारण है कि प्राचीन समय में फलों का संरक्षण शहद के भरे मटकों में होता था, और आज खाण्ड की बनी घट्ट चासनी में मुरब्बे या फल सुरक्षित रहते हैं। मधुर द्रव्य का प्रमाण कम रहने से भी सन्धान ठीक नहीं होता।

सन्धान क्रिया—आसवों की सन्धान क्रिया बहुत सरल है। इसमें दो प्रक्रियाएँ होती हैं :—

१—मद्य या अलकोहल बनना

२—औषध द्रव्यों का गुण मद्य में आना

इनमें—मद्य बनते समय मधुर द्रव्य को मद्य (अलकोहल) एवं शुद्ध सिरका (विंगर) में बदलने वाले दोनों प्रकार के कीटाणु अपना-अपना प्रभाव करते हैं। ये कीटाणु कुछ तो वायुमण्डल से इनमें आते हैं और कुछ यह यदृच्छा से इन्हीं में उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें जो बलवान होता है, वह दूसरे को दबा लेता है, खा लेता है।

यह क्रिया जल्दी हो इसके लिये किण्व (सुराबीज) का उपयोग होता है। जिस प्रकार दूध से दही बनाने में दही का जामन (या झाग) बरता जाता है। यह झाग जितना अच्छा क्रियाशील होगा—उतना अच्छा दही बनेगा। आयुर्वेद पद्धति

से आसव अरिष्ट बनाने में इस सिद्धान्त का उपयोग करना चाहिए। इसकी निम्नांकित दो विधियाँ हैं :—

१. पुरातन आसव का किण्व नये आसव में मिला दिया जाये। किण्व अच्छा क्रियाशील होना चाहिए। अच्छा यही है कि जो आसव बनाना हो, उसी आसव के किण्व का उपयोग इस कार्य मे हो। परन्तु यदि ऐसा सम्भव न हो तो जो भी आसव अच्छा बना हो, (शुक्त न बना हो) उसके किण्व का उपयोग कर लिया जाये। यों आयुर्वेद में पुराने आसव के पात्र बरतने का जो विधान है, वह इसी किण्व के गुण के लिए है। परन्तु इनमें भय इतना रहता है कि या तो ये बहुत पुराने हो जाते हैं, जिससे किण्व का प्रभाव समाप्त हो चुका होता है, अथवा इनमें खटाश-शुक्तता आ जाती है। इसलिए पात्र की गन्ध से परीक्षा कर लें। तीव्र शुक्त गन्ध होने पर नया पात्र लें।

२—दूसरी विधि आधुनिक है। इसमें क्रियाशील किण्व (एक्टिव ईस्ट) मिला देना चाहिए। यह ईस्ट शराब बनाने वाली राजकीय शालाओं में या खेती कॉलेज में मिल जाता है। इसको घर पर बनाना हो तो गुड़ का सान्द्र घोल तैयार करके उसमें शुष्क ईस्ट डाल कर रख दें। सामान्यत: ३० से ३५° शतांश ताप परिमाण पर्याप्त होता है। कुछ दिनों में इसमें विदाह प्रारम्भ हो जायेगा। इसमें जब उबाल सा आने लगे और कार्बन डाइ ऑक्साईड बनने लगे, तब इसका कार्क थोड़ा सा ढीला कर दें, जिससे वह निकल जाये, या फिर प्रारम्भ से ही बोतल के मुख पर पतला कपड़ा बाँध दें अथवा रूई का कार्क लगा दें। जब कार्बन डाइ ऑक्साईड बन चुकी हो तब इसको हिलाते रहें। इसके क्रिया शीघ्र होगी। यह इसका पूर्ण यौवन होता है। अब इसमें इतनी शक्ति होती है कि कार्क को गले से बाहर कर देगी। यही इसकी क्रियाशीलता है। इस अवस्था में इसको आसव के अन्दर प्रयोग करना चाहिए। सामान्यत: जिन आसवों में मधुर द्रव्य का परिमाण ६५ से ७० या ७५ रहता है, उनमें इसका दो औंस, पर्याप्त रहता है। कम मधुर परिमाण वाले द्रव्यों में तीन से चार औंस डाल सकते हैं। शुष्क ईस्ट बरतने से इच्छित लाभ नहीं होता। विशेषकर, जहाँ पर प्रक्षेप या धातकी पुष्प पहले से डाल कर यह डाला जाता है। इसलिए क्रियाशील किण्व (एक्टिव ईस्ट) को अकेला ही मधुर घोल में डालें। जब इसमें मद्यांश बन जाये, तब प्रक्षेप द्रव्य मिलाएँ। अब मद्य प्रक्षेप द्रव्यों का गुण ले लेगा।

आयुर्वेद में आसव-अरिष्ट बनाने में तीन तत्व होते हैं। इनका अपना-अपना कार्य है—यह कार्य सब एक साथ प्रारम्भ करें। यह कठिन है। एक के बाद दूसरे को कार्य करने का अवसर मिलना चाहिए। इस प्रकार करने से सब घटक अपना कार्य भली प्रकार कर सकते हैं। ये तीन तत्त्व इस प्रकार हैं :—

१. क्वाथ या जल और मधुर द्रव्य (खांड, गुड़, शहद)
२. प्रक्षेप द्रव्य
३. धातकी पुष्प

क्वाथ—क्वाथ या जल में गुड़, खाण्ड या शहद घोल कर पहले डाल देना चाहिए। आसव-अरिष्ट के लिए मैं गुड़ को अधिक पसन्द करता हूँ, विशेषकर जिसमें सीरा की मात्रा अधिक हो, और रंग कालापन लिये हो। अधिक साफ़ गुड़ अच्छा नहीं। चूंकि इसमें गरमी कम होती है अतएव बरसात में ऐसा साफ़ गुड़ कम क्लिन्न होता है। आसव अरिष्ट के विचार से मशीन की चीनी (विशेषकर साफ़ क्रिस्टल वाली) निकम्मी वस्तु है। यह विदग्धता क्रिया को एक प्रकार से रोकती है। इसके स्थान में सब से अच्छा इस समय में राब या मिञ्जे का उपयोग है। खांड इन्हीं से बनती है। ये उसकी प्रथम अवस्थाएं हैं। यदि खाण्ड ही डालना अभीष्ट हो तो खांची की खाण्ड बरतनी चाहिए। मशीन की साफ़ खाण्ड आसव-अरिष्ट के लिए उत्तम नहीं होती, क्योंकि, इसमें उष्णिमा कम रहने से विदाह कम होती है, या देर में होती है।

शहद भी विदाह क्रिया को कम करती है, इसलिये इसको बाद में मिलाना उत्तम है। परन्तु जहाँ बड़ी मात्रा में इसका उपयोग आसव-अरिष्ट में हो, वहाँ पहले गुड़ से विदाह हो जाने पर बाद में इसको डाल कर रख दें। जब इसकी क्रिया समाप्त हो जाये, तब इसमें प्रक्षेप मिलायें। शहद में विदाह क्रिया दो से चार दिन में ही समाप्त हो जाती है। यदि शहद शुद्ध होगी तो विदाह क्रिया होगी ही नहीं या बहुत कम होगी। पानी जैसे पतले शहद में या बरसात के शहद में विदाह किया होती है। ऐसी शहद स्वयं अम्लता लिये होती है। इनसे प्रायः आसव शुक्त में अम्ल में बदलते हैं।[1] बरसात के लिए अत्रिपुत्र ने कहा है कि इसमें अम्लपाक जल का होता है (**पाक दालाञ्जलस्यच—चरक० सू० अ० ६। ३४**) इसलिए इस समय की शहद वैसे ही उपयोगी नहीं। दूसरी ऋतु की शहद शर्करा का सान्ध्र योग रहने से विदाह क्रिया को रोकती है। इससे शहद का न डालना उत्तम है। शास्त्रीय प्रथा में डालना हो तो मद्यांश बन जाने पर डालना चाहिए। यही बात चीनी के सम्बन्ध में है। सब से मधुर द्रव्य गुड़ में भी ताड़ का गुड़ उत्तम है। खाण्ड के लिए राब, मिञ्जा का उपयोग करना चाहिए। अन्यथा

---

१. **मद्य के दस गुण—लघूष्ण तीक्ष्ण सूक्ष्माम्ल व्यवाय्याशुग मेव च।**
रूक्षं विकाशी विशदं मद्यं दशगुणं स्मृतम्॥
—चरक० चि० अ० २४।३०

खांची की खांड डालनी चाहिए। ताड़ का गुड़ अधिक मात्रा में वैद्यों को बरतना चाहिए अथवा आधा-आधा दोनों बरतें।

प्रक्षेप द्रव्य—इसमें वस्तुओं को दरकच कर लेना आवश्यक है। मोटा कुटवा लेना चाहिए जिससे कि वस्तु पूर्ण रूप से मद्य के सम्पर्क में आ जाये। मद्य के अपने कुछ गुण हैं, जिनमें सूक्ष्म विकासी, आशुकारी-मुख्य हैं। इन गुणों के कारण मद्य वस्तु के गुणों पर क्रिया करके उसके गुणों को ले लेता है। उसका स्थूल-मोटा भाग वहीं रह जाता है। मद्य बनने पर इन प्रक्षेप द्रव्यों को आसव में डालना उत्तम है। इससे पहले डालने में ये एक प्रकार से व्यर्थ ही पड़े रहते हैं। साथ ही कई बार मद्य बनने की प्रक्रिया में रुकावट उत्पन्न करते हैं। इनका उपयोग तभी है, जब मद्यांश बन जाये। जिससे इनका क्रियाशील ताव मद्य में घुल जाये। इसलिए जब कार्बन डाइ ऑक्साइड बनने की प्रक्रिया समाप्त हो जाये—जो कि जलती दियासलाई के न बुझने से एवं सां सां शब्द के बन्द होने से ज्ञात हो जाती है। तब प्रक्षेप द्रव्य डालना चाहिए। इसकी मात्रा १०२४ तोले में ४० तोले से अधिक नहीं होनी चाहिए।

धातकी पुष्प—प्राचीन आयुर्वेद ग्रन्थों में धातकी पुष्प का उपयोग सब आसवों में है। धातकी पुष्प में मधुरता है। परन्तु वह इसके गीले-हरे फूल में है—जिसकी गन्ध और रस से खींच कर भ्रमर इसके ऊपर मँडराता है—सूखे फूल में यह नहीं। आयुर्वेद में आसव-अरिष्ट निर्माण में सूखे धातकी पुष्प प्रयोग में लाये जाते हैं। बहुत से स्थानों पर ये बिना कूटे डाले जाते हैं। कई स्थानों पर कूट कर दरकच करके डाले जाते हैं। बिना कूटे हुए फूल प्राय: ऊपर तैरते हैं। धातकी पुष्प की मात्रा भार की दृष्टि से इतनी हो जाती है कि कई बार विदाह क्रिया पूरी नहीं होती, जिसके कारण बोतलों में भरे आसवों के डाट उडने लगते हैं। बोतलें टूटती हैं। धातकी पुष्प सूखे होने पर भी विदाह क्रिया में कोई विशेष सहायक होते हैं। यह समझना बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। धातकी पुष्प मद्योत्पादक कृमियों के लिए उत्तम भोजन है। इन कृमियों के पोषण के लिए नत्रजनीय भोजन की जरूरत होती है। इसलिए यदि एक लीटर के पीछे अमोनिया हाइड्रोजनस् फॉस्फेट २० ग्राम मिला दें तो अच्छा और जल्दी आसव बनता है। जो ये न डालना चाहें, वे महुए के फूल प्रयोग में लायें।

मेरी दृष्टि में वैद्यों को धातकी पुष्प के स्थान पर महुए के फूल सूखे या गीले बरतने चाहिए। महुए के फूल में मिठास अधिक होती है। इन फूलों की थोड़ी मात्रा से ही इच्छित लाभ की प्राप्ति हो जाती है। ये फूल सूखे और ताजे दोनों रूपों में कार्य करते हैं। सूखे फूल बहुत थोड़ी मात्रा में (धातकी की अपेक्षा) डालने से काम निकल आता है। सामान्यत: एक द्रोण (१०२४ तोला) जल में एक पाव (बीस तोला) फूल

ग्रीष्म ऋतु में और तीस तोला शीत ऋतु में पर्याप्त होते हैं। देश और अवस्था के अनुसार इस मात्रा को थोड़ा बहुत घटाया जा सकता है।

ये फूल विदाह जल्दी पैदा करते हैं। किण्व की भी बहुत कुछ समस्या सरल बना देते हैं। इनकी उपस्थिति में प्रायः मद्य ही बनता है। शुक्त बनने का अवसर बहुत कम होता है। इसलिए धातकी के पुष्प का प्रश्न जहाँ तक विदाह उत्पन्न करने का है, वहाँ तक महुए के फूलों का उपयोग आसव-अरिष्ट में करना मैं उत्तम मानता हूँ। इससे परिणाम भी अच्छा ही निकलता है।

आसव बनाने के लिये पात्र—सामान्यतः मिट्टी के पात्र पसन्द किये जाते रहे हैं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि प्राचीन से प्राचीन पात्र खुदाई में बहुत बड़े आकार का मिट्टी का ही मिला है। लकड़ी के बड़े पात्र नहीं मिले। साथ ही आसव-अरिष्ट घर में ही अपनी आवश्यकतानुसार बनाये जाते थे। वह जरूरत इन पात्रों से पूरी हो जाती थी। अब जरूरत के अनुसार लकड़ी के बड़े-बड़े पीपे-ढोल बनने लगे हैं। लकड़ी पानी में न फूलने वाली होनी चाहिए। इसके लिए वर्मा का सागौन (टीक) या विल्लीमोरा बम्बई का सागौन उत्तम है। इसके पीछे उत्तर भारत में असन वृक्ष या देवदारु उत्तम है। देवदारु के तेल की गन्ध थोड़ी सी कई बार अनुभव होती है, परन्तु इससे कोई हानि नहीं होती।

पात्र का मुख बहुत चौड़ा या सँकरा नहीं होना चाहिए। इतना मुख रखना चाहिए कि ठीक से बन्द और साफ किया जा सके। पात्र में गूगुल-वच, सरसो, घी, नमक, रूमी-मस्तक, राल (सर्जरस) का धूपन पहले करना चाहिए, पत्रशुष्क, स्वच्छ लेना चाहिए। मिट्टी का बर्त्तन यदि बहुत पानी पी चुका हो या नर्म हो गया तो उसे काम में नहीं लाना चाहिए।

पात्र में क्वाथ या द्रव इतना भरना चाहिए कि वह ¾ भर जाये। पात्र अधिक खाली रहने से भी आसव नितरना नहीं है। पात्र अधिक भरा होने से विदाह ठीक नहीं होता। वायु का आना-जाना कम होता है। अतएव पात्र में द्रव ¾ भरा होना चाहिए। पानी का दबाव पड़ने से आसव के नितरने में सरलता रहती है।

पात्र का मुख बन्द करना—प्राचीन पद्धति के अनुसार पात्र में द्रव या क्वाथ, प्रक्षेप, गुड़, आदि सब वस्तुएँ एक साथ डालकर उसका मुख बन्द कर देते हैं जिससे वायु का प्रवेश न हो। फिर उसे गरम स्थान या भूमि के अन्दर या भूसा आदि में रख देते हैं जिससे गरमी पर्याप्त मिले। परन्तु अनुभव तथा परीक्षणों से पता चलता है कि जब तक असव में सुरा-मद्य बनने का प्रश्न है, तब तक मुख इस प्रकार बन्द करना चाहिए कि वायु का आना-जाना बना रहे। यह आना जाना अव्याहत न होकर

सीमित होना चाहिए । इसके लिए मलमलका पतला कपड़ा ऊपर रख देना चाहिए अथवा ढक्कन को थोड़े समय बाद हटा देना चाहिए जिससे बनी हुई कार्बन डाइ ऑक्साइड गैस निकल जाय । जब यह गैस पूर्ण रूप से बननी बन्द हो जाये, तब मद्य बन गया समझना चाहिए और तभी प्रक्षेप डालना चाहिए । पात्र का मुख बन्द कर सकते हैं या पक्का डाट लगा सकते है । गैस बनना समाप्त हो गया यह बात पात्र में से सां-सां आवाज के न आने से जलती हुई दियासलाई की तिली या मोमबत्ती के जलती रहने से हो जाती है । अनुभव से इस बात का स्पष्टीकरण हो गया कि पात्र का मुख बन्द करने से सन्धान प्रक्रिया में कोई अन्तर नहीं आता, अपितु बन्द करने से प्रक्रिया में विलम्ब होता है और प्राय: शुक्त बनते है । वायु का सामान्य आना-जाना बना रहना चाहिए । कार्बन डाइ ऑक्साइड तो पात्र में बनेगी, इसको निकलते जाना चाहिए । साथ ही पात्र की गरमी बाहर से बनाये रखना चाहिए । गरमी ही विदाह उत्पन्न करती है । खाण्ड बनाने में राब में से सीरा निकालने के लिए इस पर सैवाल, कम्बल डालते हैं । मकान को बन्द करते हैं । ऐसा गरमी बढ़ने के लिए किया जाता है । इसलिए जिस मकान में आसव-अरिष्ट रखे हों, वह मकान तथा वह पात्र गरम रहना चाहिए । (शीत ऋतु में दही जमाते समय पात्र को गरम वस्त्र में लपेट देते हैं ।) मुख को तो केवल इसलिए ढाँकना चाहिए कि कोई वस्तु इसमें न गिर जाये । मुख ढाँकने से गरमी बढ़ती है । गरमी अन्दर से पैदा न करके बाहर से देनी चाहिए ।

निक्षेप बिठाना—आसव तैयार हो जाने पर इसमें **रस-गन्ध-वर्ण** आ जाने के फलस्वरूप इसको छानना होता है। छानने के लिए रूई का उपयोग होता, जिससे नितरा-निर्मल पदार्थ ही मिले। रूई की भाँति **नमदा** भी उपयोगी है। यह भिन्न-भिन्न मोटाई का मिलता है। इसमें ऊन कूट कर बिठाई होती है। प्राय: घोड़ों की काठी के नीचे रखा जाता है। जिससे काठी की रगड़ घोड़े की त्वचा पर व्रण न कर दे।

आसव छानने के लिये १/४" से १/२" मोटाई का नमदा लेकर इसे सूती कपड़े की थैली में डाल कर इसमें से आसव छान लेना चाहिए। इसमें कुछ देरी तो लगती है, परन्तु आसव पूर्णत: साफ़ आता है। इस प्रकार छना आसव आप लम्बे समय तक रख सकते हैं। इसमें नीचे गाद नहीं बैठेगी। रंग भी नहीं बदलेगा। थैली को गरम पानी में उबालकर फिर दबाकर उसका पानी निकाल कर उसे धूप में सुखा कर काम में ला सकते हैं। यह विधि सरल और उपयोगी है। यदि किण्व अच्छा हो तो इसको सुखाकर अगले आसव के लिए काम में ला सकते हैं या बिना सुखाये भी तुरन्त बरत सकते हैं। इसके लिए इसको एक पात्र में डालकर थोड़े से आसव में भिगोये रख सकते हैं। वह एक्टिव ईस्ट का काम देगा। परन्तु यह किण्व अच्छा होना चाहिए।

खट्टा जामन दही को भी खट्टा कर देता है। इसलिये आसव की श्रेष्ठता बहुत कुछ किण्व के ऊपर निर्भर करती हैं। एक प्रकार से खमीर के रूप में इसका उपयोग हो सकता है।

मद्य के भेद—मद्य का अर्थ सामान्य रूप में मद उत्पन्न करना है। सन्धान प्रक्रिया से मद्य और शुक्त दो वस्तुएँ बनती हैं। मद्य वर्ग में सुरा-वारुणी आदि आते हैं। शुक्त वर्ग में काँजी, तुषोदक, धान्याम्ल आदि आते हैं। मद्य वर्ग में प्रायः मधुर द्रव्यों का उपयोग होता है। शुक्त वर्ग में तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल, नमक द्रव्यों का उपयोग होता है।[1] मद्य वर्ग और शुक्त वर्ग दोनों सन्धान क्रिया से बनते हैं। इसलिए इनमें थोड़ा बहुत मद रहता है।[2]

सीधु कल्पना

सीधु कल्पना—दो प्रकार का होता है; एक शीतरस से बना होता है और दूसरा पकाये हुए रस से बना होता है। पहले को **शीतरस साधु** और दूसरे को **पक्वरस सीधु** कहते हैं। सामान्यतः गन्ने के रस से सीधु तैयार होता है। कच्चे बिना पकाये रस से प्रायः सिरका बनाते हैं (शुक्त बनाते हैं)। यह अपक्व रस प्रायः खटाश में बदल जाता है। पक्वरस मीठा रहता है। इसमें फल आदि डालते हैं। इस रस को देहात में निर्धन व्यक्ति पकाकर गाढ़ा करके (चासनी की भाँति बनाकर) मिट्टी की मटकियों में रख लेते हैं। धीरे-धीरे गाढ़ा होकर यह राब का काम देता है। इसको

---

१. पश्चिम उत्तर प्रदेश में (सहारनपुर, मुजफ्फरनगर जिलों में) वर्षा ऋतु में बैलों को जब हरी घास ही विशेष रूप से देते हैं तब साथ में साड़ा भी पिलाते हैं। साड़ा बनाने के लिए वर्षा की छाछ को एक मिट्टी के बड़े पात्र में भरते जाते हैं। उसमें नमक, राई, हल्दी, अजवायन, हींग, मेंथी पीसकर डाल रखते हैं। कुछ लोग प्याज भी कूटकर डालते हैं। थोड़े दिनों में इसमें तीव्र खटाश आ जाती है। तब बैलों को थोड़ा-थोड़ा देते हैं। जितना निकालते हैं, उतनी ही छाछ फिर मिला देते हैं। वर्षा ऋतु में अग्नि मन्द होती है, परन्तु इससे बढ़ती है। पशु को भूख भी लगती है।

२. मदकारी का लक्षण—बुद्धि लिम्पति यद् द्रव्यं मद्रकारी तद् उच्यते; जिस द्रव्य के खाने से मन-बुद्धि में तामसिक वृत्ति जन्मती हो, उसे मदकारी कहते हैं। जो वस्तु मादक होती है उसे मद्य कहते हैं। यन्मादकं लोकैस्तन्मद्यमभिधीयते)—योग महोदधि।

घोलकर शर्बत के रूप में उपयोग करते हैं। ग्रीष्म ऋतु में इसका शर्बत ठण्डा और थकान दूर करने वाला होता है।

वारुणी कल्पना

ताल, खजूर, या नारियल के वृक्षों से रस चुआ कर सन्धान करने पर वारुणी बनती है। इसके लिए वृक्ष की चोटी पर प्रातःकाल में छुरी आदि से छेदकर, उसमें ताड़ आदि की पत्ती देकर नीचे मिट्टी का घड़ा बाँध देते हैं। इस घड़े में वृक्ष का रस एकत्र होता रहता है। इस रस को ताड़ी या नीरा कहते हैं। इस रस का सन्धान करने से जो मद्य बनता है, उसे **वारुणी** कहते हैं (**या ताल खर्जूर रसैरसूता साहि वारुणी**)।

सुरा कल्पना

चावल, यव; मंडवा, साँवक आदि अन्न को पकाकर; जल और किण्व मिलाकर सन्धान करने पर जो मद्य तैयार होता है, उसको सुरा कहते हैं। टिहरी गढ़वाल-ऋषिकेश में प्रायः इसको बनाते हैं। देहातों में जो देशी मद्य बनता है, उसमें यही विधि बरती जाती है। सुरा के ऊपर के स्वच्छ द्रव भाग को **प्रसन्ना** कहते हैं। उससे कुछ गाढ़े भाग को **कादम्बरी** कहते हैं। कादम्बरी के निचले गाढ़े भाग को **जगल** कहते हैं। जगल से भी नीचे के गाढ़े भाग को **मेदक** कहते हैं। सुरा को कपड़ में से छान लेने पर जो सारहीन भाग बचता है; उसको **बक्कस** कहते हैं। मद्य में खमीर उठाने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इसको किण्व, सुरा बीज भी कहते हैं। यह ठोस भाग है। इसमें द्रवांश नहीं रहता।[1]

वक्तव्य—वारुणी, सीधु और सुरा—ये मद्य के भेद हैं। मद्य उड़नशील वस्तु है। इसलिए इनमें खमीर उठते ही एक-दो दिन में छान लें। जब इनका खमीर बनना बन्द हो जाये या कम तब उतार लें; तब इनको दूसरे पात्र में छान कर डाट लगा कर रख दें। वारुणी को देर तक रखना हो तो इसमें चतुर्थांश मिलाकर खमीर उठाना चाहिए। बाद में छानकर चतुर्थांश और मीठा मिलाकर रखना चाहिए।

---

१. **शार्ङ्गधर संहिता के टीकाकार आढमल्ल ने चावलों को पीसकर किण्व बनाने को कहा है (टिहरी, ऋषिकेश आदि पर्वतीय स्थानों में ऐसे ही बनाते हैं—"शालि पिष्ट प्रभवं किण्वकमिति कथितम्"—किण्व का उपयोग खमीर उठाने में होता है।**

अन्यथा यह खट्टा हो जायेगी। इन तीनों को भपके में खींच कर जो मद्य तैयार किया जाता है, वह स्थायी होता है।[1]

आयुर्वेद में मृतसंजीवनी सुरा आदि योग पीछे के हैं। इनके लिए राजाज्ञा लेना आवश्यक है। सामान्यतः आसवों में अलकोहल की मात्रा अधिक-से-अधिक बारह प्रतिशत होती है। प्रायः द्राक्षासव में अलकोहल ६ से ८ प्रतिशतक मिलता है। इससे अधिक प्रतिशत वाला आसव आयुर्वेद ग्रन्थों में (कम से कम व्यवहार में) नहीं आता। कुछ लोग द्राक्षासव को भी भपके में खींच लेते हैं। भपके में खींचने से मद्य, पानी, गन्ध ही प्रायः आता है। आयुर्वेद-दृष्टि से भपके में खिंचे द्राक्षासव और मद्य में विशेष कोई अन्तर नहीं। द्राक्षा के कितने गुण इस मद्य में आते हैं। यह अभी अनुभव एवं परीक्षण का विषय है।

प्रक्षेप बिठाना—आसव अरिष्टों को जल्दी निर्मल बनाने के लिए इनमें न घुले प्रक्षेप को नीचे बैठने देना चाहिए। इसमें प्रायः बहुत समय लग जाता है। इसके लिए यदि इसमें थोड़ी सी मात्रा चाईना क्ले (के ओ लीन—पाश्चात्य चिकित्सा में गोलियों पर कोटिंग की जाती है। अन्तः प्रयोग भी होता है।) डाल दी जाये तो यह नीचे बैठते समय अपने साथ आसव-अरिष्ट में तैरते हुए प्रक्षेप को भी नीचे ले जाती है। इससे प्रक्षेप जल्दी बैठ जाता है। यह पानी में अघुलनशील है।

सावधानी—आसव-अरिष्ट के पात्रों के विषय में पूरी सफाई का ध्यान रखना चाहिए। इसी लिए इनको धूप देने का विधान है—(**नित्य पुष्पोहार वलिक-कर्मवत्सु...शिक्येषु (पात्रेषु) स्थापयेत्**)। इनके साथ हाथ का वायु का स्पर्श कम से कम होना चाहिए। मद्य बनने के पीछे तो रबड़ का वाशर लगाकर डाट बन्द करना चाहिए, जिससे वायु न जा सके। पात्र में से आसव निकालने के लिए पेंदी से लगभग ३ या ३½" ऊपर टोंटी लगा देनी चाहिए अथवा आसव में नली

---

१. मद्य को खींचने का उल्लेख आयुर्वेद ग्रन्थों में नहीं मिलता, परन्तु महाभारत या अन्य संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में मिलता है। भपके के लिए शुण्डा शब्द आता है। शराब बेचने वाले को शौण्डिक कहते हैं। महाभारत में—सुरामाहारयामास राजार्हां सुपरिस्रुताम्"—विराट् पर्व अ० १४।७ । आयुर्वेद में भपके से चुवाने का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः सुरा इस शब्द से भिन्न रखने के लिए उन्होंने इस प्रक्रिया को आसव-अरिष्ट नाम देकर वहीं तक समाप्त कर दिया हो। आयुर्वेद के आसव, अरिष्ट १६ औंस तक (लगभग आधा सेर) एक बार पी जाने पर भी मादक प्रभाव नहीं करते। यह देखी हुई बात है।

रबड़ की डाल कर उसका दूसरा मुख दूसरे पात्र में रखकर पम्प से वायु खींचकर आसव को स्वयं बहने दें। या फिर ड्रम की ऊँचाई पर रख कर आसव नीचे निकालें। सभी अवस्था में यह ध्यान रखें कि यथासम्भव निर्मल आसव आये। पात्र कम से कम खुला रहे और हाथों का स्पर्श कम हो।

पात्र में आसव निकालकर बोतलों में भरकर इन पर लैबल लगाकर सुरक्षित स्थान पर रख देना चाहिए। आसव के पास सिरके की चटनी, सिरका, काँजी, शुक्त आदि नहीं रखना चाहिए। आसव और शुक्त यद्यपि एक ही प्रक्रिया से बनने वाली वस्तुएँ हैं, परन्तु इनको बनाने वाले फंगाई पृथक्-पृथक् हैं। ये फंगाई-वायु-मण्डल से, मच्छर, मक्खी आदि से हाथों से या पात्रों से पहुँचते हैं। इनमें जो बलवान होता है, वह दूसरे को पराजित कर अपना कार्य उत्पन्न करने लगता हैं; जिसका हो परिणाम शुक्त या आसव कल्पना (मद्य) होती है। मद्य का निर्माण ईस्ट से होता है। इसमें अलकोहल और कार्बन डाइ ऑक्साइड दो वस्तुएँ बनती हैं। यह क्रिया अवायवीय अवस्था में ३०° शतांश पर अच्छी होती है। इसमें शर्करा का घनत्व २५ प्रतिशतक से अधिक नहीं होना चाहिए। जब मद्य १३% तक बन जाता है, तब मद्य बनने की प्रक्रिया बन्द हो जाती है।

शुक्त कल्पना

अरिष्ट आदि मद्य बिगड़ कर खट्टे पड़ कर शुक्त बन जाते हैं। इसी प्रकार गन्ने का रस भी सन्धान करके कुछ समय रखने पर यदि बिगड़ जाये और खट्टा पड़ जाये, तो शुक्त हो जाता है। इसमें सिरके का काला रंग होता है। तीक्ष्णता और खट्टा स्वाद ही होता है। शुक्त को ही चुक्र या सिरका कहते हैं।

जल में राई, नमक, मिर्च, हल्दी घोलकर इसमें मूँग आदि पीस कर बनायी मुँगोड़ी, भल्ले आदि अथवा लसूड़ा, गाजर आदि फल, मूली आदि कन्द डालकर चार-पाँच दिन (कुछ समय) रख देने से वह खट्टा हो जाता है। इसको भी शुक्त (या सामान्य भाषा में काँजी) कहते हैं।

सिरका—गन्ना, अंगूर, जामुन आदि के रस को मिट्टी के घड़े में डालकर उसके मुख पर कपड़ा बाँधकर, धूप में रख दें। जब रस अच्छी तरह खट्टा हो जाये, कपड़े से छानकर पात्र में रख दें। इसको सिरका कहते हैं।[1] सिरका तैयार होने पर सामान्यतः दो-तीन मास लग जाते हैं।

---

१. सिरका अच्छा बने इसके लिए गन्ने के रस को थोड़ा गरम कर लेना चाहिए।

सामान्यतः—जो मीठा पदार्थ सन्धान करके रख छोड़ने पर खट्टा हो जाता है, उसको शुक्त कहते हैं। इस परिभाषा से दूध भी कुछ दिन रखने पर खटाश ले लेता है। इस खट्टे हुए दूध को ही हम सामान्य बोल-चाल में दही कहते हैं। इसीलिए मनु ने दही को भी शुक्त कहा है। ब्रह्मचारी के लिए शुक्त खाना मना है। परन्तु दही खाने का विधान किया गया है।[1] दही ठीक स्वाभाविक मीठा रहे इसलिए इसे जामुन या झाग लगाते हैं। केवल ख़मीर उठने मात्र से कोई वस्तु धर्म दृष्टि से अभक्ष्य नहीं हो जाती।

तुषाम्बु और सौवीर कल्पना—तुष (छिलके सहित) रहित जौ को कूट कर उसे चार गुणे पानी में डालें। बिना पकाये ही किसी मिट्टी के पात्र में डालें और मुख वन्द करके रख दें। जब द्रव में अम्लता आ जाये, तब इसको वस्त्र में छान लें। इसको **तुषोदक** (तुष का पानी) कहते हैं।

छिलके उतरे जौ को कूटकर आठ गुणे जल में पकाये। जब जल आधा रह जाये—तब इसको जौ सहित मिट्टी के बर्त्तन में डालकर घड़े का मुँह बन्द करके रख दें। जब द्रव खट्टा हो जाये, तब इसको छान कर पात्र में रखें। इसको **सौवीर** कहते हैं। सामान्यतः ग्रीष्म ऋतु में पाँच-छः दिनों में; सर्दियों में आठ-दस दिन में ये खट्टे हो जाते हैं। कुछ आचार्यों ने निष्तुष जौ या गेहूँ का पकाये बिना सन्धान कर, सौवीर बनाने को लिखा है।[2]

फिर इसमें अच्छे सिरके का झाग-जामुन लगाना चाहिए। और थोड़ा-सा एक्टिव ईस्ट डाल दें। इस प्रकार बनाने पर सिरका कभी खराब नहीं होता। आप चाहें तो जौ को अंकुरित या इनको पानी में उबालकर कूट कर सिरके के पात्र में डाल सकते हैं। इससे बढ़िया पौष्टिक सिरका बन जाता है।

१. **"दधि भक्ष्यं तु शुक्तेषु सर्वंच दधि संभवम्। यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्प मूल फलैः शुभैः॥—मनुस्मृति अ० ५–९**

सब प्रकार के शुक्त अभक्ष्य हैं; परन्तु शुक्तों में दही और दही से बनने वाले छाछ, रायता आदि पदार्थ भक्ष्य हैं; इसी प्रकार खाने योग्य फलों का खट्टा अचार भी भक्ष्य है।

२. **चरक-सुश्रुत में तुषोदक और सौवीर का उपयोग चिकित्सा में दिया है—**

(क) यवैः श्यामा त्रिवृत्क्वाथ स्विन्नैः कल्माषाम्भसा। आसुतंषड्हे पल्ले जातं सौवीरकं पिबेत्॥

काँजी कल्पना—चावलों को जल में पकाकर फिर मिट्टी के घड़े में डालकर तिगुना पानी डालें। घड़े के मुख को कपड़े से बन्द कर सात दिन या जब तक इसमें खटाई अच्छी तरह न आ जाये, रख छोड़ें। पीछे कपड़े से छान कर काम में लायें। इसको **धान्याम्ल, आरनाल** और **काञ्जिक** कहते हैं। आचार्यों ने चावल या कोदो के मण्ड को सन्धान करके काञ्जी बनाना लिखा है। भंडवा से अच्छी काँजी बनती है।

काँजी अग्निदीपक है। इसीलिये ग्रहणी चिकित्सा में **आयामकाञ्जिक** का उपयोग होता है।

जहाँ पर काँजी का विधान हो (पारद आदि के शोधन में) वहाँ पर ऐसी बनी काँजी लेनी चाहिए।

सुरासव कल्पना—औषध द्रव्यों के चूर्ण को स्वच्छ मद्य में सात दिन बन्द पात्र में भिगोकर हाथ से मसलकर वस्त्र में से छान कर शीशी में भर लें। इसको सुरासव कहते हैं। (**आसुत्य च सूरामण्डे मृदित्वा प्रस्रुतं पिबेत्—चरक क० अ० २**)। पाश्चात्य चिकित्सा में उपयोग आने वाले टिंचर इसी विधि से बनते हैं।[1]

वेशवार

वेशवार एक प्रकार का पिसा हुआ मसाला है। निघन्ट रत्नाकर के अनुसार 'सोंठ, मरिच, पिप्पली; जीरा, काला जीरा; सौंफ, धनिया, दालचीनी, इलायची;

(ख) भृष्टान् वा सतुषान् क्षुण्णान्यवांस्तच्चूर्णसंयुतान्। आसुतानम्भसा तद्वत्पिबेज्जातोदकं तुषोदकम्॥ —वरण क अ० ७।

(ग) ज्ञात्वा जातरसं चापि बन्तुषोदक माप्नुयात्।
तुषाम्बु सौवीरकयोर्विधिरेष प्रकीर्त्तितः॥—सु० सू० अ० ४४।४४.

१. चुक्र—विनष्ट मम्लतां यातं मधु वा मधुरं द्रवः।
विनष्टः सन्धितोयस्तु तच्चुक्रमभिधीयते॥—नि० र०

कांजीजक—संधितं धान्य मण्डादि काञ्जिकं कथ्यते जनैः।
कांजिकं भेदि तीक्ष्णोष्ठीं रोचनं पाचनं लघु॥—भा० प्र

आरनाल—आरनालं तु गोधूमैरामैस्यान्निष्लुषीकृतैः॥—भा० प्र०

धान्याम्ल—धान्याम्लं शालि चूर्णं च कोद्रवादि कृतें भवेत्।
धान्याम्लं धान्य योनित्वात् प्रीणनं लघु दीपनम्॥—भा० प्र०

सण्डाकी—संडाकी सन्धिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः॥—शा० स०

तेजपात नागकेशर, तिल; अनारदाना या (कोकम या अमचूर); हल्दी; कसौंदी के पत्ते, हींग; सूखाआर्द्रक (सोंठ अभाव में); नारियल, सरसों (राई) लाल मिर्च; वाफली का फल, इन सब को घी में भूनकर चूर्ण करके भोजन में यथारुचि मिलाना चाहिए। यह वेशवार वायुनाशक और अग्निवर्धक है, जिस वस्तु में मिलाया जाता है; उसे शीघ्र पचा देता है।[1]

वेशवार का दूसरा लक्षण—अस्थिरहित मांस को उबाल कर भाप कर नर्म बनाकर शिला पर पीस लेना चाहिए। इसमें गुड़, घी, पिप्पली, मरिच मिलानी चाहिए। इसको वेशवार कहते हैं।

स्नेहपाक

"स्नेहपाके त्वनिर्दिष्ट प्रमाणे समुदितस्य द्रवस्य पादेन स्नेहो भोज्यः, तत्पादेन कल्क"—अ० सं० क० अ० ८

घृत-तैल आदि स्नेह को क्वाथ-स्वरस, दूध-जल आदि द्रव पदार्थ एवं औषधियों के कल्क के साथ पकाकर जो घृत-तैल आदि सिद्ध होते हैं; उनको स्नेहपाक कहते हैं। इस स्नेहपाक में औषधियों का गुण आ जाता है। औषधियों का गुण स्नेहपाक में आ जाये, इसलिये इनका सम्पर्क औषधियों के साथ अधिक देर रखा जाता है। इसके लिए उसी दिन पाक न करके रात्रि में एक दिन रखकर अगले दिन पाक करते हैं। इसी प्रकार स्नेह को औषधियों के क्वाथ और कल्क के साथ एक सौ बार या हजार बार पकाते हैं (**क्षीरे साध्यं शतकृत्वस्तदेव मधुकाच्छतं—चरक चि० अ०** २९।१७७।

स्नेह पाक में कल्क, स्नेह और द्रव ये तीन पदार्थ मुख्य हैं। शास्त्र में जहाँ

---

१. (क) त्र्युषणं जीरकं द्वन्द्वं शतपुष्पा च धान्यकम् ।
त्वेला पत्रकं नागकेसरं च तिलांस्तथा ॥
दाड़िमत्वङ्‌ निशा कासमर्द पत्राणि हिंगुकम् ।
रूक्षं चार्द्रं नारिकेलं सिद्धार्थैरण्डमूलकम् ॥
बृहद रक्तं च मरिचं द्राविश वा फली फलम् ।
एते सर्वे यथायोग्यं घृते भर्ज्यं विचूर्ण्य च ।
यथायोग्यं मेलिताश्चेद्वेसवरः सवातहा ।—नि० र०

(ख) निरस्थि पिशितं पिष्टं स्विन्नं गुड घृतान्वितम् ।
कृष्णा मरिच संयुक्तं वेशवार इति स्मृतः ॥

इनका परिमाण दिया हो, वहाँ उसी विधि से पाक करना चाहिए। परन्तु जहाँ प्रमाण न लिखा हो, वहाँ कल्क से चार गुणा स्नेह; स्नेह से चार गुणा द्रव लेकर स्नेह करना चाहिए। यदि ग्रन्थ में द्रव न लिखा हो तो कल्क को द्रव से पीसकर या औषध द्रव्य के चूर्ण का जल में कल्क बनाकर, कल्क से चार गुणा जल देकर स्नेह पाक करना चाहिए ।

स्नेहपाक में द्रव पदार्थ यदि चार तक हों तो ये मिलकर स्नेह से चार गुणे लेने चाहिए। एक हो तो वह भी स्नेह से चार गुणा लेना चाहिए। जहाँ चार से अधिक (पाँच छह आदि) द्रव पदार्थ लिखे हों, वहाँ प्रत्येक पदार्थ स्नेह के समभाग लेकर पाँच छः आदि जितने द्रव लिखे हों—उतने गुने द्रव पदार्थ देकर स्नेहपाक करना चाहिए।

१ से ४ तोला क्वाथ द्रव्य होने पर		जल १६ गुना होना चाहिए
४ से १६ तोला	,,	जल ८ गुना ,,
१६ से १६३८४ तोला	,,	जल ४ गुना ,,

कल्क	स्नेह (तैल या घृत)	द्रव
१ भाग	४ गुना	१६ गुणा जल
१ ,,	६ ,,	२४ गुणा क्वाथ
१ ,,	८ ,,	३२ गुणा मांस रस
१ ,,	८ ,,	३२ गुणा दूध दही

मांसरस और दूध या दही के पाक में आवश्यकता हो तो जल स्नेह का चार गुणा मिला सकते हैं।

जिस स्नेह का निर्माण केवल जल के संयोग से करना हो, उसमें कल्क का परिमाण चतुर्थांश; क्वाथ से करना हो तो स्नेह का छठवाँ भाग तथा स्वरस से स्नेह पाक करना हो तो स्नेह का आठवाँ भाग होना चाहिए। दूध, दही, मांसरस, तक्र से स्नेहपाक हो तो स्नेह का आठवाँ भाग कल्क देना चाहिए। कल्क का पाक भली प्रकार हो जाये, इसलिये जहाँ पर जल का निर्देश न हो, वहाँ पर स्नेह का चार गुणा जल देना चाहिए। यदि स्नेह पाक में कल्क का निर्देश न हो तो स्नेह केवल द्रव में ही सिद्ध करना चाहिए। यदि पुष्पों का कल्क बना कर स्नेह सिद्ध करना हो तो स्नेह से चार गुणा जल लेना चाहिए और पुष्पों का कल्क स्नेह का अठवाँ भाग होना चाहिए।

स्नेह सिद्ध के लक्षण—जब अंगुलियों से मलने पर स्नेह का कल्क बत्ती रूप में बनने लगे–(अंगुली को न चिपटे या बत्ती बने और बिखरे नहीं) तब समझना चाहिये कि स्नेह पाक सिद्ध हो गया है। अथवा तैल में झाग आने लगे और घी में झाक आना बन्द हो जाये, इनमें औषधियों की गन्ध, उनका वर्ण, और उनका रस आ जाये, तब स्नेह

सिद्ध समझना चाहिए। स्नेहपाक में पकने की अन्तिम अवस्था में उफान आना बन्द हो जाता है; बुलबुले बहुत छोटे छोटे बनते हैं, सारे स्नेह पर छा जाते हैं। कल्क नीचे बैठ जाता है, स्नेह से द्रव भाग अलग हो जाता है और स्नेह निर्मल स्वच्छ दीखता है।

स्नेह का पाक उपयोग की दृष्टि से तीन प्रकार का है—(१) नस्य कर्म के लिए मृदु पाक—इसमें कल्क स्नेह से सम्पूर्ण रूप में पृथक् नहीं होता। कुछ द्रवांश रहता है। इसका कल्क हाथ पर मसलने पर चिपटता है, तथा अग्नि में डालने से चटचटाता है। (२) अभ्यंग के लिये **खर पाक**—इसमें कल्क की बत्ती नहीं बनती। वह बिखरा रहता है (संहत नहीं होता) कल्क, बिलकुल स्नेह से अलग दीखता है, और अग्नि पर डालने से कल्क में कोई शब्द नहीं होता। इस स्नेह का उपयोग अभ्यंग में होता है। (३) सब कार्यों में **मध्यपाक** स्नेह बरता जाता है, इसमें कल्क की बत्ती बनती है। अंगुली को कल्क नहीं चिपटता और नहीं खरता है। इसके आगे जब कल्क जल जाये तब उसको दग्ध पाक कहते हैं। इसको किसी काम में नहीं लाना चाहिए। यदि मृदु पाक न होकर कल्क कच्चा रह जाये तो आम पाक होता है। यह चिकित्सा में अनुपयोगी, गुरु एवं प्रभावरहित है।

मूर्च्छना—मूर्च्छना का अर्थ सामान्य रूप में निश्चेष्ट करना है। घरों में कच्चे तेल का तुरन्त उपयोग करने के लिये इसे पका कर रख देते हैं। पकाते समय इसमें बेसन और नमक मिला कर कुछ बटक बना कर डाल देते हैं। इनसे तैल में झाग उठता है। झाग के स्वयं समाप्त हो जाने पर इसे उतार कर ठण्डा करके पात्र में रख लेते हैं। अब इसको कभी भी काम में तुरन्त व्यवहार कर सकते हैं। इससे इसकी आम कच्ची गन्ध-तीक्ष्णता कम हो जाती है। यह तेल की एक प्रकार की मूर्च्छना है।

इसी प्रकार से घृत को भी कढ़ाई में चढ़ा कर उसमें निम्बू या पान के पत्ते डाल कर गरम करते हैं। इससे इसमें भी झाग उठ कर शान्त हो जाता है। यह घी देर तक रखने पर भी जल्दी बिगड़ता नहीं। खट्टा नहीं होता। एक प्रकार से इसका जलीय अंश समाप्त कर लेते हैं।

परन्तु आयुर्वेद में मूर्च्छना इस लाभ के सिवाय तैल, घृत आदि में गन्ध या वर्ण उत्पन्न करने के लिए की जाती है। इसलिए इसमें मंजीठ, हल्दी, केतकी, कंकोल आदि द्रव बरते जाते हैं।

तैल मूर्च्छना—तैल को कड़ाही में चढ़ा दें। जब फेन उठ कर बैठ जाये, तब उतार कर ठण्डा कर लें। अब इसमें तेल से सोलहवाँ भाग मजीठ का कल्क और मजीठ

से चौथाई हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, हल्दी, खस, लोध, केवड़े के फूल; बरगद के प्ररोह (कोमल भाग), और नलिका (नालुका), इनका कल्क और तैल से चार गुणा जल मिला कर पाक करें।

घृत मूर्च्छना—चौंसठ तौला घी कड़ाही में चढ़ा कर पाक करें। जब घी फेन और शब्द रहित हो जाये, तब इसमें हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, और हल्दी के चूर्ण का, बिजौरे के रस में पिसा हुआ कल्क १६ तोला और जल २५६ तोला मिलाकर स्नेह विधि से पाक करें। इस प्रकार मूर्च्छित किया घृत आम दोष रहित और गुणकारक होता है।

वक्तव्य—स्नेह में कपूर मिलाना हो तो स्नेह को थोड़ा गरम करके उसमें कर्पूर का चूर्ण मिला कर हिलाने से सारा कपूर स्नेह में गल कर मिल जाता है। केशर, कस्तूरी, अंबर, जवाद (गन्ध मार्जार वीर्य) आदि सुगन्धित द्रव्य स्नेह छानने के बाद उसी स्नेह में बहुत सूक्ष्म पीस कर मिलाने चाहिए।

मूर्च्छना का विधान चरक, सुश्रुत, अष्टांग संग्रह, शार्ङ्गधर आदि संहिताओं में तथा डल्हण, चक्रपाणिदत्त, शिवदास आदि की व्याख्या में नहीं मिलता। पिछले ग्रन्थों में वृहद् योगतरंगिणी; योग रत्नाकर, शार्ङ्गधर की गूढ़ार्थ दीपिका व्याख्या, भैषज्य रत्नावली में है। तेल में गन्ध लाने के लिए **गन्धपाक** करते हैं। इसमें छोटी इलायची, दालचीनी, लौंग, तमालपत्र, घृत कुमारी, शठी-कंकोल, केशर, श्री गन्ध, जटामांसी, मुस्तक, गन्ध विरोजा, खस, कस्तूरी, कुष्ठ, पिप्पली मूल, नखी, कर्पूर वल्ली, शैलेय, लता कस्तूरी मिलाते हैं। इनका अनुपात एक सेर तेल के लिए प्रत्येक द्रव्य एक तोला लें। कर्पूर चार तोला लें। कर्पूर, कस्तूरी, नलिका ये वस्तुएँ गन्ध पाक पूर्ण होने पर पीछे से मिलानी चाहिए।

एरेण्ड तैल, सरसों तेल के पाक के लिए भी यही नियम है। सरसों के तेल की मूर्च्छना में—चार सेर तेल के लिये–मंजीठ १६ तोला; बहेड़ा, हल्दी, मुस्ता, बिल्वमूल, अनार छाल, नागकेसर, काला जीरा, हीवेर, आँवला प्रत्येक दो तोला मिलाए। इसमें १६ सेर पानी मिलाकर पकायें। जब पानी सब निःशेष हो जाये और केवल तेल रह जाये तब छान लें।

एरण्ड तैल की मूर्च्छना के लिये द्रव्य—मजीठ, धनिया, वैजयन्ती, खर्जूर, हल्दी, नलिका, केवड़े का फूल, मुस्तक, त्रिफला ह्रीवेर, वटशुंग, दारुहल्दी और सोंठ, चार सेर तेल के लिये प्रत्येक द्रव्य १/२ तोला। एरण्ड तैल में मस्तु और काँजी समान मात्रा में मिला कर उबालनी चाहिए।

क्षार निर्माण

क्षारो ह्यग्निः सर्मा

क्षार अग्नि के समान कार्य करता है। क्षार बनाने के लिए जिस वृक्ष से क्षार बनाना हो, उसका पंचाग ला, सुखाकर, भीतर से अच्छी प्रकार साफ़ की हुई लोहे की कड़ाही में जला कर भस्म कर ल। बाद में इस भस्म को मिट्टी के पात्र में डालें और इसमें छह गुणा जल मिला कर तथा हाथ से अच्छी प्रकार मसल कर पात्र को ढांक दें। रात भर स्थिर पड़ा रहने दें। दूसरे दिन स्वच्छ जल को दूसरे पात्र में निथार कर, ईक्कीस बार मजबूत वस्त्र से छान लें। प्रति बार छानते समय वस्त्र को जल से धो लें। बाद में इस जल को लोहे के पात्र में (अच्छा हो कि पात्र अन्दर से एनेमल हो) डालकर अग्नि पर पकाये। पकाते समय इस जल को बराबर चलाते जायें। सारा जल सूख जाने पर पात्र को नीचे उतार लें और ठण्डा होने दें। ठण्डा होने पर सारे क्षार को खुरच कर निकाल लें और तुरन्त काँच की शीशी में ढक्कन लगा कर रख दें।

लेप निर्माण

यदि शरीर पर लगाने के लिए औषध गीला-ताजा हो तो वैसा ही और यदि सूखा हो तो उसके चूर्ण में जल, गोमूत्र, काँजी आदि मिला कर तथा शिला पर खूब बारीक, पीसकर जो कल्क तैयार किया जाता है, वह लेप कहलाता है। लेप दो प्रकार का होता है—**प्रलेप** और **प्रदेह**। रक्त और पित्त विकारों के लिए शीतल औषध का जो पतला और ठण्डा लेप किया जाता है, उसे प्रलेप कहते हैं। कफ और वात के रोगों में उष्ण वीर्य औषधियों के कल्क को गरम करके जो गाढ़ा-मोटा लेप किया जाता है, उसे प्रदेह कहते हैं। लेप में यदि स्नेह मिलाने को लिखा होतो पित्त के रोगों में छठाँ भाग, वातहर रोगोंमें चौथा भाग और कफ के रोगों में आठवाँ भाग मिलाना चाहिए।

लगाने के नियम—पहले दिन बनाये कल्क से दूसरे दिन लेप नहीं करना चाहिए। एक बार लगा कर उतारे लेप को फिर दुबारा काम में नहीं लाना चाहिए। प्रयोजन के अनुसार लेप की गीली अवस्था में ही या सूख जाने पर उतारना चाहिए। रक्त और पित्त के विकारों में और व्रण शोथ में सूखने से पहले ही लगाये हुए लेप को उतार कर दूसरा लेप लगायें। चोट लगने पर या वायु के दर्द पर जो लेप लगाया जाता है, उसे सूखने पर ही उतारना चाहिए।

उपनाह (पुलटिस)

अल्सी (तिसी) जौ, गेहूँ, आदि के चूर्ण में जल, तक्र, कांजी, सिरका, गोमूत्र

आदि द्रव पदार्थ; हल्दी, नमक, सुहागा, आदि औषध द्रव्य और थोड़ा सा घी या तेल स्नेह मिला कर तथा अग्नि पर पकाकर ऊपर-नीचे कपड़ लगा कर व्रण शोथ आदि पर बाँधा जाता है। उसे उपनाह कहते हैं।

मरहम (मलहम)

घी, मोम, तेल, गन्धा बिरौजा, राल, पेराफीन, चरबी ये मरहम के उपादान हैं। इनमें पारा, गन्धक, सिन्दूर, मुर्दाशंख, कपूर, मैन्थोल, अजवायन के फूल आदि औषध द्रव्य मिलाकर अनेक प्रकार के मरहम तैयार करते हैं। मरहमों का उपयोग व्रण शोधन, रोपण, दारण आदि कार्यों में, खाज, फोड़े, फुन्सी-अर्श-नासूर आदि पर लगाने के लिये होता है। इनको चीनी मिट्टी या एनामल के ढक्कनदार पात्रों में रखना चाहिए।

गुडूची साव कल्पना

अँगुली जितनी मोटी ताजी-हरी गिलोय लाकर इसको पानी से धो लें। फिर इसके छोटे-छोटे टुकड़े करके ऊखल में डाल कर लकड़ी के मूसल से अच्छी प्रकार कुचल लें। इसको निकाल कर कलई-दार पात्र में डाल कर चार गुना जल मिलाकर अच्छी प्रकार मसलें। फिर इस पानी को दूसरे पात्र में तीन-चार बार छान लें। इस छने हुए पानी के ऊपर थाली या कपड़ा रख दें और रात भर स्थिर पड़ा रहने दें। दूसरे दिन धीरे से ऊपर का जल अलग से निथार लें। पात्र के नीचे श्वेत रंग की वस्तु बैठी होगी। यही गिलोय का सत्त्व है। निथरे हुए पानी को पका कर घन रस क्रिया बना लें। इसी को संशमनी कहते हैं।

वक्तव्य—आयुर्वेद के आगमों में न तो गिलोय सत्त्व या किसी सत्त्व का उल्लेख है और न पुराने वैद्यों में इसका व्यवहार ही है। गिलोय सत्त्व स्वाद में फीका होता है, कटुरस निकल चुकता है। इसका उपयोग चिकित्सा में कितना है यह भी स्पष्ट नहीं है। रसायनिक दृष्टि से यह निशास्ता की भाँति है, परन्तु वाह्य रूप में इससे निशास्ता का कार्य भी पूरा नहीं होता (कपड़ों पर निशास्ता से एक घट्टपन आ जाता है, इससे यह नहीं आता।) कुछ वैद्य संखिया आदि की मात्रा बनाने में इसका उपयोग करते हैं। इसके मिलाने से इन औषधियों की सूक्ष्म मात्रा बनायी जा सकती है।

गिलोय सत्त्व की भाँति अदरख, कचूर, अरारोट के कन्द आदि से श्वेतसार (निशास्ता) जाति का सत्त्व निकाला जाता है।

सत्त्व बनाने के लिये गिलोय के ऊपर का भूरा छिलका उतार देना चाहिए इससे सफेद सत्त्व मिलता है। छिलका रहने पर मटमैला सत्त्व मिलता है।

बिरोजे का सत्त्व

कलईदार पीतल के चौड़े मुखवाले तबेले या टोप में आधा दूध और आधा पानी-आधे पात्र तक भरकर, पात्र के मुख पर ढीला कपड़ा बाँध कर उस पर गंधा बिरौजा डालकर पात्र को अंगीठी पर चढ़ावें। नीचे अग्नि जलायें। जब सारा बिरौजा चूकर नीचे बैठ जाये, तब पात्र को नीचे उतार लें। ठण्डा होने पर नीचे बैठे हुए सत्त्व को निकाल लें और जल से धोकर छाया में सुखा लें। सत्त्व ठीक बना होगा तो खरल में डालकर चूर्ण करने से पिस जायेगा। यदि सत्त्व नर्म होगा तो चूर्ण नहीं होगा—इसको फिर बनायें।

शतधौत या सहस्रधौत घृत

शुद्ध घी को लेकर एक चौड़े पात्र में डाल लें। इस पर ठण्डा जल डालकर हाथ से अच्छी प्रकार मसलें। फिर इस पानी को निकाल दें और नया पानी डालें। इस प्रकार एक सौ बार या हज़ार बार करने से शत धौत एवं सहस्र धौत घृत बनता है। शत और सहस्र शब्द उपलक्षण रूप में है, पानी से बहुत बार धोया घी। यदि पानी के स्थान पर नारियल का जल बरता जाये तो यह अधिक ठण्डा और शीघ्र गुणकारी होता है। इसका उपयोग बाह्य उपचार में—जलने में या मरहम के रूप में होता है। यह खाने के अनुपयुक्त है। इसको देहात में विष मानते हैं।

चूने का पानी

बुझा हुआ चूना या पान खाने का चूना लेकर (लगभग एक छटाँक) इसको ५ सेर के लगभग पानी में मिट्टी के पात्र या काँच की बरनी में अच्छी प्रकार घोल कर स्थिर रख दें। रात भर इसे स्थिर रहने दें। प्रातःकाल इसका पानी दूसरे पात्र में ऊपर से निथार लें। इस पानी में जरा भी सफेदी नहीं होनी चाहिए। इसका रंग पानी के समान निर्मल रहता है। यही चूने का पानी है।

गुलकन्द बनाने की विधि

अच्छे कलईदार पीतल, एनामल या चीनी के बरतन में गुलाब, सेवती गुलाब, अमलतास आदि के ताज़े फूलों को बराबर वजन की शक्कर के साथ मिलावें। बरतन के ऊपर दुहरा मज़बूत कपड़ा बाँध कर २०–४० दिन तक धूप में रखें। इसको (गुल-पुष्प, कन्द-चीनी) गुलकन्द कहते हैं)।

मसी और काजल कल्पना

औषध द्रव्य इस प्रकार जलाये जाते हैं कि ये कोयला ही बनें, राख नहीं। कोयला बनाने की विधि यह है—जिस औषध का कोयला बनाना हो, उसको सँकरे तंग मुख वाले मिट्टी के घड़े में डालें, फिर उस पर उतना ही चौड़ा मिट्टी का सकोरा रखें। सन्धिस्थान पर कपड़मिट्टी करके आग पर चढ़ावें। जब सन्धिस्थल से धुआँ निकलना बन्द हो जाये, तब नीचे उतारें। फिर पीसकर कपड़छान करके रख लें। इसको मसी कहते हैं। यदि खुले स्थान में जलाया जाये और सफेद राख बने तो इसको क्षार कहते हैं।[1]

काजल—एक मिट्टी के सकोरे में घी या तेल में रूई की बत्ती रखें। फिर इसे जला कर तीन चार अंगुल ऊपर दो ईंटों पर मिट्टी या लोहे का तवा रख कर उस पर धुआँ इकट्ठा कर लें। इसको कज्जल या काजल कहते हैं। इसमें घी, कपूर आदि मिलाकर आँख में लगाते हैं।

शंखद्राव कल्पना

लवण, फिटकरी, सोरा, नौसादर, कसीस, सुहागा, जौखार, सज्जीखार आदि लवण और क्षार द्रव्यों को काँच के नलिकायंत्र में (काँच निर्मित-तिर्यक् पातन-ग्लास रिटार्ट) में रखें। यंत्र की सन्धि को कपड़मिट्टी से बन्द करके आग पर चढ़ायें। नलिका यंत्र की तिरछी नली का मुख, दूसरे जल भरे पात्र में रखी हुई काँच की शीशे के मुख पर लगाकर यंत्र के नीचे मंदी आँच दें। तिरछी नली से टपककर द्राव शीशी में इकट्ठा हो जायेगा। इसे शंख द्राव कहते हैं। इसमें छोटे-छोटे शंख घुल जाते हैं।

अर्क कल्पना

अर्क कल्पना का आधार क्वाथ कल्पना ही है। अन्तर इतना है कि अर्क कल्पना में उड़नशील अंश-तैल को पृथक् कर लिया जाता है। क्वाथ में पार्थिव अंश को मुख्य रूप में लेते हैं। दोनों का माध्यम जल ही है। अर्क में वस्तु को लेकर साफ़ करके चतुर्गुण या छः गुणे–आठ गुणे पानी में भिगो देते हैं। प्रायः अजवायन, लौंग, गाजवाँ, मकोय, आदि मृदु द्रव्य चार गुणे पानी में रात में भिगो देते हैं। प्रातःकाल भपके के द्वारा इनका अर्क खींचते हैं। अर्क में पहले पानी आता है फिर वस्तु का क्रियाशील अंश आने

---

१. 'कृष्णस्य सर्पस्य मसी"—(सु० चि० अ० ९) की व्याख्या में डल्हण ने लिखा है कि—'कृष्णसर्पो दह्यमानो यदाऽति कृष्णत्वं गच्छति तदा तच्चूर्णं मसी इत्युच्यते, स एव यदाऽतिदह्यमानो शुक्लत्वं याति तदा क्षार इत्युच्यते।

लगता है। यह अंश धीरे-धीरे कम होने लगता है। इस लिए अर्क में पहली और पिछली मात्रा जिनमें अर्क की गन्ध, रस न हो, उसे छोड़ देना चाहिए। शेष सब को मिला देना चाहिए। कोई-कोई वैद्य पहले-अन्तिम अर्क को भी सारे में मिला देते हैं। यह अनुपयोगी या कम गुणकारी होता है।

परिभाषा प्रकरण

आयुर्वेद शास्त्र की अपनी परिभाषाएँ हैं। उनका ज्ञान आवश्यक है। शास्त्र में विस्तार के भय से परिभाषा से काम चलाया जाता है। उदाहरण के लिए—

यदि औषध भक्षण आदि के समय का उल्लेख न हो तो इसे प्रातःकाल समझना चाहिए। जहाँ औषधि के किसी विशेष अंग का—मूल-पत्र-फल शाखा आदि उल्लेख न हो, वहाँ मूल लेना चाहिए। जड़ें बहुत मोटी हों तो उनकी छाल लेनी चाहिए। जड़ें बारीक हों, तो वे सम्पूर्ण लेनी चाहिए। शास्त्रों में जिस योग में औषधि का खास अंग लिखा हो, वहाँ पर वही अंग लेना चाहिए। जहाँ पर इसका उल्लेख न हो वहाँ वैद्य परम्परा के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। उदाहरण के लिए नीम का उल्लेख होने पर नीम की छाल लेनी चाहिए। विजयसार, चन्दन आदि वृक्षों का सार-हीर (मध्य भाग) लेना चाहिए। तालीस आदि के पत्ते, त्रिफला आदि के फल, धाय-गुलाब आदि के फूल, थूहर आदि का दूध, गिलोय आदि की शाखा लेनी चाहिए। हींग, गूगुल आदि का निर्यास लेना चाहिए। द्रव्य के मूल-पत्र-पुष्प-फल आदि जिस अंग में वीर्य (कार्य करने की शक्ति) सबसे अधिक हो, उसका वही अंग लेना चाहिए। जहाँ का द्रव्यों का भाग-परिमाण न लिखा हो वहाँ पर सब द्रव्य बराबर लेने चाहिए। जहाँ पात्र का उल्लेख न हो, वहाँ पर मिट्टी का पात्र लेना चाहिए। जहाँ गोली-अवलेह आदि बनाने में द्रव पदार्थ का उल्लेख न हो वहाँ पर जल लेना चाहिए। जहाँ तैल का विशेष उल्लेख न हो वहाँ तिल का तेल लेना चाहिए।[1] जहाँ लवण विशेष का उल्लेख न हो, वहाँ सैन्धव लवण लेना चाहिए। सर्षप शब्द से श्वेत सरसों लेनी चाहिए। जहाँ दूध, दही, घृत, मूत्र और पुरीष के लिए किसी प्राणी का नाम निर्देश न हो, वहाँ गौ के लेने चाहिए। जहाँ चन्दन का विशेष उल्लेख न हो, वहाँ अन्तः उपयोग-अवलेह; आसव, स्नेह बनाने में श्वेत चन्दन और बाह्य उपयोग-लेप और क्वाथ में लाल चन्दन लेना चाहिए। नीम के पत्र बरतने चाहिए, परन्तु पत्तों के अभाव में अन्दर की गीली त्वचा काम में लानी चाहिए। बिल्व का कच्चा

---

१. कुष्ठ चिकित्सा में इसका अपवाद है। वहाँ पर सरसों का तेल प्रयोग में लाना चाहिए; यथा-मनःशिलाले मरिचानि तैलमार्कपयः कुष्ठहरः प्रदेहः। चरक० सू० अ० ३।१२

फल सदा बरतना चाहिए। अमलतास का पका फल काम में लाना चाहिए। औषध कार्य में सब औषधियाँ ताजी काम में लानी चाहिए। परन्तु विडंग, पिप्पली, गुड़, धनिया, मधु आदि पुराने ही उत्तम होते हैं। इसी प्रकार पुराना पान और पुरानी काँजी उत्तम है।

दुगना मान—जिस योग में एक ही औषध का नाम दो बार लिखा हो, वहाँ उसको दूने परिमाण में लेना चाहिए।

योगों का नामकरण—जिस योग के प्रारम्भ में जो औषध निर्दिष्ट हो, उसी के नाम को आदि में लगाकर, उस योग का नाम रखा जाता है। उस योग के प्रथम निर्माता के नाम से भी उसका नाम रखा जाता है। सादृश्य से भी योग का नाम रखा जाता है। जैसे, रस कर्पूर में (कर्पूर के समान रस), रस पर्पटी (पर्पटी के समान रस), अथवा उसके कल्प से उस योग का नाम रखा जाता है, यथा ब्राह्मी स्वरस, वचा चूर्ण आदि। अथवा उस योग में जो द्रव्य प्रधान हो, उसके नाम से योग का नाम रखा जाता है; जैसे द्राक्षारिष्ट, कुटजारिष्ट। अथवा योगों के कर्मों के अनुसार नाम रखा जाता है; जैसे रोपण वर्त्ति, लेखन वर्त्ति; चातुर्थिकारि रस। इसके सिवाय ग्रन्थों में स्वच्छन्दतापूर्वक योगों के नाम भी मिलते हैं, यथा वसन्त मालती, वसन्त कुसुमाकर, शृंगाराभ्र आदि।

औषध का कार्यकाल—वनस्पति-आदि ठीक प्रकार से सुरक्षित न रखे जाने से उनकी कार्य करने की शक्ति एक वर्ष के बाद समाप्त हो जाती है। चूर्णों की शक्ति दो मास उपरान्त नष्ट हो जाती है। गुटिका और अवलेह एक वर्ष के बाद हीनवीर्य बन जाते हैं। घृत-तैल आदि चार मास के पीछे हीन वीर्य हो जाते हैं। औषधियाँ जिनका पकने का समय बहुत छोटा है (वनस्पति-वीरुध आदि) एक वर्ष के बाद वीर्य रहित बन जाते हैं। आसव एवं धातु घटित योग कई वर्ष पुराने होने पर भी अपना गुण बनाये रखते हैं।

पारिभाषिक संज्ञायें

चार स्नेह—घृत, तैल, वसा और मज्जा। ये चार स्नेह स्निग्ध द्रव्यों में प्रधान हैं।

यमक स्नेह—इनमें कोई दो स्नेह मिले हों तो उसे यमक कहते हैं। प्रायः घृत और तैल का ही यमक शब्द से उपयोग होता है।

त्रिवृत्त स्नेह—कोई तीन स्नेह मिले हों तो उसे त्रिवृत्त कहते हैं।

महास्नेह—चारों स्नेह मिले हों तो यमक कहलाते हैं।

क्षीराष्टक—गाय, भैंस, बकरी, भेड़, ऊँटनी, स्त्री, हथनी, एक खुरवाली मादा (घोड़ी या गधी), इनके दूध को क्षीराष्टक कहते हैं।

मूत्राष्टक—गाय, बकरी, भेड़, भैंस, हाथी, घोड़ा, ऊंट, और गधा इन आठ

प्राणियों के मूत्र को मूत्राष्टक या मूत्रवर्ग कहते हैं। गाय, बकरी, भेड़ और भैंस इन चार मादा का और हाथी घोड़ा ऊँट और गधा इन चार के नर का मूत्र चिकित्सा में लिया जाता है।

दूध-मूत्र आदि लेने में नियम—रोगरहित, युवावस्था के प्राणियों का ही चमड़ा, रोम, नख, सींग, आदि लेने चाहिए। ऐसे प्राणियों के ही दूध, मूत्र और मल (गोबर लीद) उनका खाया हुआ आहार जीर्ण होने पर लेना चाहिए।

पंचगव्य, पञ्चाङ्ग और पञ्ज महिषाणि—गाय के मिले हुए दूध, दही, घृत, मूत्र और गोबर को पञ्चगव्य, बकरी के मिले हुए दही, दूध, घी मूत्र और मींगनी को पञ्चाङ्ग और भैंस के मिले दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर को पञ्च माहिष कहते हैं।

मधुरत्रय—खाण्ड, गुड़ और मधु को मधुरत्रय कहते हैं।

त्रिफला—मिले हुए हरड़, बहेड़ा और आँवला तीनों को त्रिफला या वरा कहते हैं।

त्रिकटे-त्र्यूषण—मिले हुए सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली को त्रिकटु या त्र्युषण कहते हैं। इनमें यदि पिप्पलीमूल मिला दें तो चारों को **चतुरूषण** कहते हैं।

पंचकोल—मिले हुए पिप्पली, पिप्पलीमूल, चविका, चित्रक और सोंठ को पंचकोल कहते हैं। पंचकोल में यदि काली मिर्च मिली हो तो इसको **षडूषण** कहते हैं।

त्रिमद—मिले हुए वायविडंग, नागरमोथा और चित्रक को **त्रिमद** कहते हैं।

चातुर्जात—मिले हुए दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर को **चातुर्जात** कहते हैं। इसमें यदि नागकेसर नहीं मिला हो तो तीनों को **त्रिजात** या **त्रिसुगन्धि** कहते हैं।

चतुर्बीज—मिले हुए मेथी, चन्द्रशूर (हालिम-चंसूर), कलौंजी (मंगरैला) और अजवाइन इनको चतुर्बीज कहते हैं।

दशमूल—मिले हुए बेल, सोनापाठा, पाढ़ल, गम्भारी और अरनी इन पाँचों को **वृहत्पंचमूल** कहते हैं। मिले हुए सरिवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरू इन पाँचों को **लघुपंचमूल** कहते हैं। वृहत्पंचमूल और लघु पंचमूल मिलकर **दशमूल** कहलाता है।

तृणपंचमूल—मिले हुए कुश, काँस, दाभ, सरकण्डा और गन्ने के मूल को **तृण पंचमूल** कहते हैं।

वल्ली पंचमूल—विदारीकन्द, अनन्त मूल, हल्दी, गिलोय और अजशृंगी (उतरण) मिल कर वल्ली पंचमूल कहलाता है।

कण्टक पञ्चमूल—करौंदी, गोखरू, कटसरैया (पिया बाँसा), शतावर और गृध्रनखी मिलकर कण्टक पञ्चमूल कहलाता है।

त्रिगन्ध—मिले हुए गन्धक, हरिताल और मनःशिला को त्रिगन्धक कहते हैं।

क्षारत्रय—मिले हुए जौखार, सज्जीखार और सुहागे को क्षारत्रय कहते हैं।

क्षारद्वय—मिले हुए सज्जीखार और जौखार को क्षारद्वय कहते हैं।

पंचलवण—केवल लवण कहने से सैन्धव लवण, द्विलवण से सैन्धा नमक और सोंचर (काला नमक) त्रिलवण से सैन्धा नमक, सोंचर और विड् नमक (नौसादर) चतुर्लवण से सैंधा नमक, सोंचर, नौसादर और सामुद्र लवण, और यदि इन चारों में साम्भर भी मिला हो तो पञ्चलवण कहते हैं।

क्षीरवृक्ष और पंचवल्कल—बरगद, गूलर, पीपल, पिलखन और पारिस पीपल इन पाँच वृक्षों को क्षीरी वृक्ष और इनकी छाल को पञ्चवल्कल कहते हैं।

पंचपल्लव—आम, जामुन, कैथ, बिजौरा और बिल्व इनके पत्तों को पञ्चपल्लव कहते हैं।

उपविष—थूहर, आक, मदार, धतूरा, कलिहारी, कनेर, कुचला घुँघची और अफीम इनको उपविष कहते हैं।

अष्ट वर्ग—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि ये आठ द्रव्य मिलकर अष्टवर्ग कहे जाते हैं।

जीवनीयगण—अष्टवर्ग और मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती और मुलैहठी मिल कर जीवनीयगण कहा जाता है।

गण में कहे हुए द्रव्यों के विषय में सूचना—शास्त्र में जो गण बताये गये हैं, उनके उपयोग के लिये, दो, तीन, चार, जितने द्रव्य मिलें; उनसे काम करना चाहिए। गण का कोई द्रव्य जिस रोगी के लिये उपयोगी न दीखे, वह द्रव्य उस रोगी के लिए छोड़-दें निकाल देना चाहिए। यदि कोई द्रव्य रोगी के लिये उपयोगी हो-परन्तु गण में न पढ़ा हो, तो उसे मिला लेना चाहिए।[1] यदि गण में का कोई द्रव्य न मिले, तो उस द्रव्य के अभाव में उसके समान रस-वीर्य-विपाक और कर्म वाला दूसरा द्रव्य मिला लेना चाहिए।

---

१. इस विषय में अत्रिपुत्र ने स्पष्ट किया है —

"तेभ्यो भिषग् बुद्धिमान्परिसंख्यातमपि यद्
द्रव्यमयौगिकं मन्येत तत्तदपकर्षयेत्;
यद्यच्चानुक्तमपि यौगिकं वा मन्येत तत्तद्दद्यात् ।
वर्गमपि वर्गेणोपसंसृजेदेकमेकेनानेकेन वा युक्तिं प्रमाणीकृत्यः ।

चरक० वि० अ० ८।१४५.

वर्ग या गण शब्द से अभिप्राय समान कार्य करने वाले द्रव्यों के समूह से है। इसलिए जिस वर्ग या गण के सब द्रव्य न मिल सकें, वहाँ जितने प्राप्त हों उनसे ही काम लेना चाहिए। जहाँ भिन्न भिन्न कार्य करने वाले द्रव्यों का समूह अपेक्षित हो, वहाँ सम्पूर्ण वर्ग या समूह लेना चाहिए।

यूनानी मत से भेषज कल्पना विचार

यूनानी वैद्यक का भेषज शास्त्र आयुर्वेद की अपेक्षा अधिक उन्नत है। आयुर्वेद में केवल सौंफ के फल का ही उपयोग मिलता है; परन्तु इसकी जड़ का उपयोग नहीं मिलता। सामान्यत: चरक संहिता में पाँच सौ औषधियों का उल्लेख मिलता है। सुश्रुत में सम्भवत: पच्चीस-तीस अधिक होंगी। अष्टांग संग्रह में इससे अधिक हैं। उसमें कुक्कटी, कञ्चुकी आदि कुछ नई औषधियाँ भी हैं। अष्टांग संग्रह का समय पाँचवीं या छठीं शती ईसा के पश्चात का है। इसके चार सौ वर्ष बाद मुसलमानों का आक्रमण और उनका शासन प्रारम्भ हो जाता है। वे अपने साथ अपनी चिकित्सा के लिए हकीम लाये। ये हकीम अपनी औषधियाँ ही बरतते थे। वैद्यों ने इनसे सहयोग नहीं किया। इसका मुख्य कारण सम्भवत: यही था कि विद्या पर ब्राह्मण वर्ग का अधिकार था। वैद्यक, ज्योतिष, कर्मकाण्ड ये ब्राह्मणों के ही पास थे और आज भी देहातों में उन्हीं के पास हैं। ब्राह्मण वर्ग इन हकीमों को यवन-म्लेच्छ मानता था। इनसे सम्पर्क स्थापित करना उचित नहीं मानता था। इसीलिये ज्योतिष शास्त्र के सम्बन्ध में वराह मिहिर को कहना पड़ा कि म्लेच्छ और यवन भी ज्योतिष शास्त्र को अच्छी प्रकार से जानते हैं। उनकी भी पूजा ऋषियों की भाँति होती है।

"म्लेच्छा हि यवनास्तेषु शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेपि पूज्यन्ते किं पुनः ब्राह्मणो द्विजः॥—वृ० सं०

परन्तु आयुर्वेद में ऐसा एक भी वचन नहीं मिलता। उनकी प्रसिद्ध औषध वनफ़सा भी आयुर्वेद में नहीं आयी। साथ ही चरक में लिखित पाँच सौ औषधियों में से लगभग दो सौ पचास औषधियों का इस समय स्पष्टीकरण नहीं मिलता। लगभग एक सौ पचीस औषधियाँ सन्दिग्ध हैं। शेष बची औषधियों से चिकित्सा का काम किया जाता है। यह अवस्था लगभग आठवीं-नवीं ईसा के पश्चात् अनुभव होने लग गयी थी। इसी का एक परिणाम रसचिकित्सा का जन्म है। ग्यारहवीं से तेरहवीं शती तक (ईसा के पश्चात्) यह चिकित्सा पर्याप्त उन्नत अवस्था में थी। यूनानी चिकित्सा में रसचिकित्सा का स्थान नहीं के बराबर है। जो है भी वह बहुत सरल एवं सामान्य रूप में है। उनका भेषज-सम्बन्धी ज्ञान आयुर्वेद से अधिक विस्तृत है।

इसी से उनका भेषज कल्पना शास्त्र भी आयुर्वेद की अपेक्षा अधिक उन्नत एवं विकसित है। यह इसी विज्ञान की बारीकी निकाली हुई है कि यदि किसी वस्तु के स्वरस से किसी औषध को भावना देनी है तो उस समय स्वरस को रात भर स्थिर रख देना चाहिए। फिर प्रातः बिना हिलाये ऊपर का नितरा भाग अलग कर लें और तलछट में बैठा पदार्थ छोड़ दें। बहुत से वैद्य स्वर्णवसन्त मालती बनाते समय निम्बू के रस का इसी प्रकार उपयोग करते हैं। परन्तु वैद्यपरम्परा में यह विधान किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता। यही बात वसन्त कुसुमाकर बनाने में ईक्षुरस, मालती रस के साथ भी बरतते हैं। इनके यहाँ गोलियों के जितने आकार हैं, उनके नाम पृथक् पृथक् हैं। यद्यपि इनकी परिपाटी भी लगभग वही है, जो आयुर्वेद में मिलती है, अर्थात् मूँग के आकार की (मुद्ग प्रमाण) चने के आकार की (चणक प्रमाण) बेर की गुठली के आकार की (कोलास्थि प्रमाण) आदि।

इनमें भिन्नता भी है; यह भिन्नता प्रायः कष्टसाध्य योगों में मिलती है। उदाहरण के लिये स्नेहपाक (तैल या घृत पाक) का विधान इनकी कल्पना में कम है। जो है भी वह आयुर्वेद की प्रक्रिया से भिन्न होकर बहुत सरल है। स्वर्ण और चाँदी की भस्म न बरत कर वे इनके वर्क बरतते हैं।[1] वर्क का यदि कुछ अंश दवाई में दीखता भी रहे तो भी हानि नहीं क्योंकि वर्क को गोली पर लपेट कर या पान या मिठाई पर लगा कर उससे बड़ी मात्रा में खाया जाता है। वर्क पर हथौड़े की चोट इतनी पड़ती है कि यह निर्मल होने के साथ साथ पतला भी हो जाता है। इस प्रकार से हकीमों ने धातुओं के उपयोग का सरलीकरण कर लिया है। पुखराज आदि रत्नों को गुलाब जल या बेदमुश्क का अर्क के साथ खरल में बारीक पीस कर (अंजन की भाँति बारीक करके) काम में लाते हैं। उनका कहना है कि रत्न अग्नि में डालने से मिट्टी हो जाते हैं। सम्भवतः उनके वचन में कुछ वजन है भी। रत्नों की बनावट लगभग एक सी है, परन्तु इनमें कठोरता और रंग जिसके कारण है, वह वस्तु सम्भवतः अग्नि से नष्ट हो जाती है, या अन्य रूप में परिवर्त्तित हो जाती है, जिससे इनके गुणों में भी अन्तर होता होगा। इसी से या अन्य कारणों से रत्नों की भस्म न बना कर ये इसकी पिष्टी बना कर काम में लाते हैं।

तीन आधार—जिस प्रकार इनकी प्रक्रिया में भेद है, उसी प्रकार इसके आधार भूत सिद्धान्तों में भी अन्तर है। इन्होंने कल्पना का आधार ठोस, द्रव और वायवीय इन

---

१. आयुर्वेद में वर्क (तवक) का उल्लेख १८वीं शती का मिलता है—"यद्वाऽपि तवका (वरका) ख्यं तु स्वर्णपत्रं विचूर्णितम्।
मधुना संगृहीतं चेत्सद्यो हन्ति विषादिकम्॥—आ० प्र० ३।३३

तीन रूपों को माना है। प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ इन्हीं तीन रूपों में मिलता है। इस लिये सब कल्पनाएं भी इन्हीं तीन रूपों में बरती जाती हैं। उदाहरण के लिए —

ठोस कल्प के रूप में गोली, चूर्ण, वत्ति, चूर्ण, काजल, नस्य (प्रधमन) सुँघनी, आदि का उपयोग करते हैं। अर्ध सान्द्र कल्प (जिनमें द्रव और ठोस मिला रहता है)। अवलेह, खाण्डव, चाटन आदि हैं। द्रव कल्पना में—अरिष्ट, आसव, तेल, घी अर्क, सिरका, मस्तु आदि हैं। वायवीय कल्प में—धूम, स्वेद, आघ्राण आदि हैं।

गोलियाँ—यूनानी वैद्यक में आयतन और परिमाण के भेद से गोलियाँ अनेक प्रकार की हैं, उदाहरण के लिये, बाजरे, मूँग, चना, मटर, जंगली बेर के प्रमाण की। रीठे के बराबर की गोली को **बूँदका** कहते हैं। गोली को **हब्ब** कहते हैं। टिकिया या चक्रिका को **कुर्स** कहते हैं। इनको चूसने के काम में लाते हैं।

वत्ति—कुछ औषधियाँ कभी-कभी गोली के रूप के बजाय वर्त्ति के आकार की बनायी जाती हैं। उदाहरण के लिये आँख में लगाने के लिए वत्ति (चन्द्रप्रभा वत्ति आयुर्वेद में) बनती हैं। इन वत्तियों में कइयों का आकार दीपक की वत्ति के समान होता है। कइयों का शंकु के आकार का (खूँटे के समान एक तरफ से नोकीला और पीछे से मोटा) होता है। यह वत्तियाँ प्रायः बाहर के उपयोग में आती हैं। इनका यह आकार होने से जहाँ इनके उपयोग में सुगमता रहती है, वहाँ पर ये अन्य औषधियों से भिन्न भी रहती हैं, जिससे पता चल जाता है कि ये बाह्य उपयोग के लिए हैं। इनको **शियाफ़** कहते हैं। योनि में प्रयुक्त होने वाली वत्ति को **शाफ़ा** कहते हैं। जो वर्त्ति कपड़े आदि की बना कर औषध द्रव्य में भिगोकर योनि या गुदा में रखी जाये उसे **हमूल** कहते हैं।[1] जो वत्ति औषध द्रव्य से भिगोकर अथवा एक पतले महीन वस्त्र में औषध द्रव्य की पोटली छोटी से (उन्नाव के बराबर की) बनाकर स्त्री अपनी योनि में रखती हैं; उसको **फिर्जजा** कहते हैं। इसमें पोटली का कुछ कपड़ा योनि के बाहर रख कर उसमें धागा बाँध देते हैं, जिससे इसे बाहर निकाल सकें। वस्त्र या रूई के पिचुकी वत्ति बना कर किसी घट्ट या पतले द्रव में भिगोकर नासिका, कर्ण, योनि में या नाड़ी व्रण में रखी जाती है, उसे **फतीला** कहते हैं।

कबूस—आर्द्र या शुष्क औषध को पीसकर उसी की छोटी या बड़ी टिकिया

---

१. आयुर्वेद में नेत्र में लगाई जाने वाली वत्ति नेत्रवत्ति कहाती है। गुदा, शिश्न, शिश्न में चढ़ाने वाली वत्ति को फलवत्ति कहते हैं। व्रण में रखी जाने वाली वत्ति विकेशिका, रूई को या महीन वस्त्र को तैल में भिगोकर योनि में रखने को तैल-पिचु तथा नासा में रखी जाने वाली वत्ति को नासावत्ति कहते हैं।

बनाकर रोग के स्थान पर रखकर; ऊपर से पत्रदान—ताजा पत्ता रख कर (केले आदि का नर्म पत्ता) पट्टी बाँध देते हैं, इसको **कबूस** कहते हैं। इससे औषध को आर्द्रता देर तक बनी रहती है।

सफ़ूफ़—पिसी हुई औषध के चूर्ण को सफ़ूफ़ कहते हैं। प्रयोग भेद से इसके कई नाम हैं—जैसे **सनून** (मंजन), **जरूर** (अवचूर्णन की औषधि); **नफूख** (नासिका आदि में फूँकने की औषधि); **अतूस** (नसवार), गाज़ा, सुरमा आदि। जो औषधि दाँतों से चबाई जाये उसे **मजूरा** कहते हैं। सुरमें की तरह बारीक किये हुए चूर्ण को **बरूद** कहते हैं। जिस चूर्ण को सलाई से आँख में लगाते हैं, उसे **कुहूल** कहते हैं। आँख में लगाने की ठोस वस्तु को पानी या द्रव में घिसकर लगाने की औषध को '**घिर्रा** कहते हैं।[1]

काजल—किसी पदार्थ को जलाकर प्राप्त किया हुआ वह धुआँ जो आँख में लगाया जाता है, **काजल** कहलाता है।

जरूर—पिसी हुई औषध जो शरीर के किसी भाग पर छिड़की या बुरकी जाये, उसे **जरूर** कहते हैं। वह बारीक औषध फूत्कार से नाक में प्रधमितर्थ की जाये, या नाली की सहायता से गले, मुख आदि में फूँकी जाये, उसे **नफूख** कहते हैं। जिस औषधि के सूँघने से छींक आये, उसे **अतूस** कहते हैं। वह चूर्ण या अंगराग वर्ण प्रसाधन के लिए मुखमण्डल पर मला जाता है, उसे **गाज़ा** कहते हैं।[2] शरीर की मैल को दूर करने के लिए कतिपय औषधियों को मला जाता है, उन्हें **उबटना** कहते हैं।

अरगना—कस्तूरी, केसर, अम्बर, कपूर, इत्र आदि सुगन्धित औषधियों से बना योग। इसको सूँघा भी जाता है और शरीर पर तथा वस्त्रों पर लगाया भी जाता है।

नू (नौ) रा—जिसके लगाने से बाल गिर जाते हैं। लोमशातन; शंख की भस्म, केले की राख को बालों की जड़ में लगाने से बाल गिर जाते हैं।

मुरब्बा—सेव, बिही, गाजर, नासपाती, आँवला, हरड़ आदि जल्दी खराब होने वाले फलों को पका कर और नरम बनाकर चीनी या मधु की चासनी में रख देते हैं। जिससे लम्बे समय तक सुरक्षित रहें। शर्करा के कारण कई बार स्वाद भी ठीक हो जाता है। इसके अतिरिक्त मधुमेह में चीनी देना जहाँ वर्जित है, वहीं आँवले या सेव के मुरब्बे के रूप में चीनी दे सकते हैं। हरड़ का मुरब्बा उत्तम मृदु विरेचक है।

---

१. देहातों में इसे घरड़ा कहते हैं। इसे घिसकर लगाते हैं। प्रायः इसमें हरड़ छोटी फिटकरी, लोध, रसौत, अफीम होती है। इसको गुलाब जल में घिसकर लगाते हैं।

२. प्राचीन काल में इस काम के लिए लोध्र वृक्ष की छाल का सूक्ष्म चूर्ण व्यवहृत होता था। देखिये —लेखक की पुस्तक "प्राचीन भारत में प्रसाधन"।

गुलकन्द—गुल का अर्थ गुलाब और कन्द का अर्थ चीनी है। गुलाब के फूलों का इसमें प्रयोग होता है। यह भी एक प्रकार का मुरब्बा है। यह फलों का न होकर फूलों से बनता है। कई बार गुलकन्द में चीनी न बरत कर मधु बरतते हैं। तब इसका नाम जुल्ज्जीवन होता है।

रूब्ब—किसी वानस्पतिक द्रव्य (फल-मूल-फूल-पत्र आदि) का रस, क्वाथ, या शीतकषाय बनाकर, उसको फिर अग्नि पर पका कर घट्ट बना लेना रूब्ब है। (रसक्रिया) इससे द्रव्य का रस शुष्क हो जाता है। रसौंत एलुवा इसी प्रकार के सत हैं।

हलुआ—अरबी भाषा में हलवा मिठाई को कहते हैं। इसी से हलवाई बना है। शुष्क और आर्द्र भेद से यह दो प्रकार का है, कभी कभी इसको बरफी या कलाकन्द की भाँति चौकोर टुकड़ों में काट लेते हैं।

माजून—अरबी भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ गूँथान या खमीर उठाना है। इसमें भी चूर्ण किये द्रव्य किसी चासनी में गुँथे हुए मिलाये जाते हैं। इसलिये इसको माजून कहते हैं। यह अवलेह के रूप में होता है।

अतरीफल—हरड़, बहेड़ा-आँवला, (त्रिफला) जिसमें प्रधान हो, उसको अतरीफल कहते हैं।

अनोशदारू या नोशदारू—माजून की तरह का एक कल्प, जिसमें प्रधान आँवला होता है, अनोशदारू का फारसी अर्थ दवाहाजम (पाचनौषध) है।

जुवारिश—इसका फ़ारसी अर्थ पाचन करने वाली है। यह माजून का भेद है, जो सामान्यत: पाचन अवयवों को ठीक करने के लिये बरता जाता है।

दवाऊल् मिस्क—यह बहुमूल्य, स्वादिष्ट, सुगन्धित माजूनों का नाम है। इसके उत्पादक घटकों में रत्नों के साथ में कस्तूरी भी होती है।

मुफर्रेह—जो औषधियाँ मन:प्रसाद (सौमनस्यता) उत्पन्न करती हैं, ये दवाउल्-मिस्क की भाँति मूल्यवान चटनियाँ होती हैं।

लुबब्—शक्तिप्रद माजूनों को (वृष्य औषधियाँ) कहते हैं। इनमें बादाम, चिलगोजा, पिस्ता आदि की गिरियाँ प्राय: रहती हैं।

याकूती—जिन महँगे माजूनों में याकूत (माणिक्य) पड़ा होता है, उस कल्प को याकूती कहते हैं। यह रसायन और बाजीकरण होती है।

बरशाशा—मात्र अफीम से बना माजून है।

जरऊन्नी—विशेष प्रकार का एक माजून, जो वृक्क, कटि और बाजीकर शक्ति को बल देने के लिए बनाया जाता है।

खमीरा—इसमें औषध द्रव्यों का पहले क्वाथ किया जाता है। फिर इसको मसल कर, छानकर, शर्करा मिलाकर चासनी की भाँति गाढ़ा बना लेते हैं। इसके बाद प्रक्षेप द्रव्य, जो ऊपर से मिलाये जाने वाले होते हैं, मिला देते हैं। फिर नीचे उतार कर इसको चासनी के घोटने वाले घोटक से इतना घोटते हैं, कि चासनी की रंगत श्वेत आ जाये या श्वेताभ हो जाये।

लऊक—चटनी, माजून का एक भेद है। इसमें शर्बत की चासनी शर्बत से गाढ़ी और माजून से पतली रहती है। इसको चाटा जा सके। इसका मुख्य उपयोग छाती-फेफड़े और गले के रोगों में होता है।

उसारा—निचोड़कर जिसे प्राप्त करते हैं। वनस्पतियों, फलों या मेवों का रस जो निचोड़कर प्राप्त करते हैं। यह दो प्रकार का है—तर एवं प्रवाही, और शुष्क या सान्द्र।

हरीरा—गाढ़ा प्रवाही जो रोगी घूँट-घूँट कर पीता है। यह प्रायः सूजी या आटा से बनता है।

फालूदा—एक प्रकार का स्निग्ध आहार कल्प जो निशास्ता या चावल आदि स्टार्च वाले उपादानों को जल, दूध आदि में पकाकर बनाया जाता है। शीतल होने पर टुकड़ों के रूप में काट लिया जाता है।

मरहम—अनेक औषध द्रव्यों को मोम, चर्बी, तेल-घी आदि स्नेह में मिला कर बनाया अर्ध साद्र कल्प है। यह फोड़े-फुन्सियों पर लगाने के वाह्य उपयोग में आता है

कैरूली (मोम रोगन)—मरहम के समान होता है। इसमें मोम और रोगन (स्नेह) दोनों का मिश्रण रहता है। साथ में दूसरे औषध द्रव्य भी मिला दिये जाते हैं।

जिमाद-जमाद—शरीर के बाहर के भाग पर लगाया जाने वाला गाढ़ा लेप। यह दो प्रकार का है। एक पतला लेप—जो कि अँगुली से लगाया जा सके (थोड़ा बहता हो), जिसे स्नेह या तिला कहते हैं। दूसरा गाढ़ा लेप, जो चिपक जाये। जैसे गूगुल या अलसी या राई का लेप।

लजूक-लसूक—चिपकने वाली वस्तु, कागज, वस्त्र आदि पर लगाकर जो कल्प-त्वचा के ऊपर चिपका दिये जाते हैं। जैसे सरेस।

लतूख—औषध द्रव्य का कल्क या लुगदी। यह कल्प शरीर पर मला जाता है। यह जिमाद से गाढ़ा और तिला से गाढ़ा होता है।

माऊल जुब्न—मस्तु, दूध को फाड़ने से जो दूध का पानी मस्तु मिलता है।

माऊल अस्ल—शहद के साथ कोई अर्क या पानी मिलाया जाये। इसमें कभी-कभी ओषध भी मिला देते हैं।

जुलाब—(गुल-आब); शहद को गुलाब के फूलों के अर्क में पकाकर तैयार की हुई चासनी।[1] कभी-कभी शहद के स्थान पर शर्करा भी डाली जाती है। इस शर्बत को माउस्सुकर कहते हैं।

माऊल्लहम्—इसको मांसरस कहते हैं। (गोश्त का रस); पानी में मांस को गलाकर पानी को छानकर और निचोड़ कर पृथक् कर लिया जाता है।

माऊल बुकूल—शाकों या हरी बूटियों का पानी—स्वरस है।

माऊलफ़वाके—नासपाती-सेव आदि फलों का रस; जो इनको कूटकर निचोड़ने से मिलता है।

रूह—जिस अर्क में जल का अंश बिल्कुल न रहे या बहुत ही अल्प हो।

शराब—श्वेत सार, श्वेतसारीय पदार्थ, शर्करा और द्राक्षा के घटकों द्वारा सन्धान प्रक्रिया से बनाकर अभिषव-भपक में खींची जाये—उसे शराब कहते हैं।

नवीज या फुक्काऊ—अँगूरों से बनी मदिरा नवीज और जौ से बनी मदिरा फुक्काऊ है। कुछ लेखक नवीज को अपरिस्रुत मदिरा कहते हैं। इसमें आसव की भाँति ओषध पानी में भिगोकर छोड़ दिये जाते हैं। फुक्काऊ को आयुर्वेद दृष्टि से अरिष्ट कह सकते हैं। इसमें श्वेत सार वाले द्रव्य या तखमीर खमीर उत्पन्न होने के बाद जिनसे अभिषव किया जाये, ऐसे द्रव्य होते हैं। उनका क्वाथ करके बनाते हैं।

शर्बत—फलों के रस में चीनी या मिश्री मिलाकर तैयार किये प्रवाही कल्प, अथवा ओषध द्रव्यों को पानी में भिगोकर, छानकर, (हिम-फाण्ट या क्वाथ कल्पना से), चीनी, शर्करा, मधु मिलाकर चासनी बनाकर बनाये जाते हैं।

सिकञ्जबीन—सिरका और शहद से बना शर्बत है।

दियाकूजा—यह एक प्रकार का शर्बत है। इसका मुख्य घटक पोस्त की डोड़ी (पोस्त खशखाश) है। यह पोस्त की डोड़ी से बनाता है, न कि तुख्म खशखश से।

सिरका—जिस द्रव्य में शर्करा या श्वेत सार के उपादान हों, यदि उसके क्वाथ-फाण्ड अथवा रस या उसी द्रव्य को जल में भिगोकर कुछ दिनों तक रखने से उसमें अम्लता उत्पन्न हो जाये, तो इसको **सिरका** कहते हैं।

---

१. आयुर्वेद में मधु को अग्नि से गरम करना मना है। उष्णिमा और मधु दोनों का संयोग हानिकारक माना गया है। परन्तु यूनानी में यह बात नहीं। ये शहद को अग्नि पर गरम करते हैं।

मुरिय्य—(काँजी) यह भी सिरका का ही रूप है। इसके घटकों में राई, नमक, जीरा, अजवायन और जौ, गेहूँ, चावल अथवा गेहूँ की रोटी, सिरका, नमक, पुदीना, सोंठ, काली मिर्च इत्यादि से बनायी जाये—इन वस्तुओं को पानी में डालकर अम्ल बनने तक रख छोड़ते हैं।

जोशांदा—एक अथवा अनेक ओषध द्रव्यों को साधारणया ओषध वाले जल अथवा अर्क में थोड़ा-बहुत उबाल कर छान लेते हैं। (क्वाथ करके छान लेते हैं); छाने वाले इस द्रव को जोशांदा कहते हैं। यूनानी में क्वाथ को जोशांदा और फाण्ट को **खेशांदा** कहते हैं। क्वाथ या फाण्ट में ऊपर से पिसी या बिना पिसी जो ओषध प्रक्षेप रूप में मिलाई जाती है, उसे **सरदारु** कहते हैं।

माऊल उसूल—ओषधियों की मूलों का क्वाथ। जिस क्वाथ में ओषधियों की मूलों का क्वाथ होता है। जैसे चित्रक मूल का क्वाथ। यूनानियों का यह कल्प इस दृष्टि से नया है। इसी प्रकार—**माउल बुजरं**—का अर्थ है, बीजों का पानी। खरबूजा, ककड़ी, खीरा आदि के बीजों का क्वाथ करते हैं।

खेसाँदा—एक अनेक ओषधियों को कूटकर, अधकूटा करके या सम्पूर्ण ही रूप में साधारण या ओषधियों के क्वाथ अथवा अर्क में कुछ समय के लिए रख देते हैं। फिर ओषधियों को मलकर या बिना मले छान लेते हैं। इस छने हुए द्रव को खेसाँदा कहते हैं।

सबीग—यदि कोई औषधि पानी के स्थान पर मद्य में भिगोई जाये तो **सबीग** कहते हैं।

हलीब (शीरा)—कुछ ओषधियों को जल या अर्क में पीसकर उनको छान कर या बिना छाने ही पिला देते हैं। इसे ही शीरा या हलीब कहते हैं। इसमें प्रायः गिरियाँ और बीज बरते जाते हैं। इसका रूप-दिखाव दूध जैसा होता है। इसी से इसे शीरा, दूध और हलूब—सद्यःक्षीर कहते हैं। एरण्ड तैल के गोंद में बने एमलशन को भी शीरा कहते हैं।

लुआब—कुछ औषध द्रव्य-चिक्कण या पिच्छल होते हैं (जैसे सिम्बल का गोंद) इनका यह लुआब-चिकास अर्क या जल में भिगोकर प्राप्त करते हैं। इसे लुआब या पिच्छा कहते हैं। बिहीदाना, कतीरा, गोंद बबूल का लुआब बनता है।

मजीज—इसका अर्थ मिलित वस्तु है। इसमें ओषध द्रव्य विलयन के रूप में जल के अन्दर लुआब के रूप से पूर्ण रूप से घुला नहीं रहता। पारदर्शक नहीं बनता; और न नीचे बैठता है।

जुलाल—कुछ ओषध द्रव्य को जल या अर्क में भिगो दिया जाता है। फिर इसको बिना मले ही, ऊपर से द्रवांश निथार लिया जाता है निथरे हुए इस द्रव को जुलाल कहते हैं। उदाहरण के लिये आलु बुखारा, ईमली, बेल आदि का जुलाल बनता है।

महलूल—लवण, शर्करा आदि बहुत से खनिज, वानस्पतिक या प्राणिज द्रव्य जो किसी अर्क, जल आदि में घुल जाते हैं। उस घुले हुए पदार्थ को महलूल या सय्यल कहते हैं। उदाहरण के लिये मुक्ता को अर्क गुलाब में पीसकर सूक्ष्म चूर्ण बनाते हैं। इसे मरवारीद (मुक्ता) महलूल (पिष्टी) कह सकते हैं। बहुत सूक्ष्म चूर्ण को महलूल कहते हैं।

नतूल—क्वाथ, फाण्ट, मिश्रण आदि के रूप में कोई प्रवाही ओषध जो शरीर के किसी अंग-प्रत्यंग पर डाली जाये; चाहे वह शीतल या उष्ण हो नतूल (सेचन) कहलाती हैं। यह शीत और उष्ण भेद से दो प्रकार की है।

सकूब—शीतल या उष्ण क्वाथ, फाण्ट या कोई द्रव्य जो ऊँचाई से धार बाँधकर सारे शरीर पर-शरीर के किसी भाग पर गिराया जाये। इस क्रिया को सकूब (धारा स्नान) कहा जाता है। उदाहरण के लिये सन्निपात ज्वर में पेट पर रखे ताम्र या काँसे के पात्र में शीतल धारा गिराई जाती है।[1]

ग़सूल—प्रवाही ओषध चाहे वह विलयन रूप में हो या साधारण रूप में जिससे किसी अवयव को धोया जाय या भिगोया जाये।

आबजन—इसे टब बाथ, टब स्नान कहते हैं। एक पात्र में कवोष्ण क्वाथ या जल लेकर उसमें रोगी को पानी ठण्डा होने तक बिठाया जाये।

पाशौया—पैरों को धोना; दस्त शौ या–हाथों को धोना—गरम जल या कवोष्णी जल या क्वाथ में घुटनों तक पैरों को डालना, अथवा वस्त्र में पानी लेकर इनको घुटनों या कोहनी तक धोना।

नजूह—परिषेक या छिड़कने की औषध जैसे जुलाब का अर्क छिड़का जाता है। ऐसी ही किसी प्रवाही ओषध का शरीर पर छिड़कना।

वजूर और **वशूग**—जो ओषध गले के अन्दर टपकायी जाये उसे वजूर कहते हैं और जो ओषध बच्चे के गले में चम्मच से दी जाये (जब तक वह स्वयं नहीं खा सकता) उसे वशूग कहते हैं।

---

१. उत्तान सुप्तस्यगभीर ताम्रं कांस्यादि पात्रं प्रणिधाय नाभौ।
तत्राम्बुधारा बहुधा पतन्ति निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीतम् ॥––चक्रदत्त

जरूक—पिचकारी की ओषध। जो ओषध पिचकारी से मूत्र मार्ग, योनि, नासिका, कान आदि में दी जाती है । इसके कई भेद हैं—हुक़ना (जुरूक़ मिअ्वी)—गुदा मार्ग से दी जाने वाली औषध— वस्ति; जरूक इहलाली— उत्तरवस्ति आदि।

सऊत—नासा में टपकायी जाने वाली औषध। नावन या नस्य कर्म—यह द्रव होता है। जो वस्तु नासा से ऊपर खींची जाये उसे नशूक कहते हैं। नस्य के लिये पिसी हुई ओषध को अतूस कहते हैं।

तिला—लेप के लिये बनायी पतली और प्रवाही ओषध । इसमें स्नेह या रोगन हो या इसको जल में घोलकर बनाया गया हो।

मरूख—शरीर पर अभ्यंग किया जाने वाला स्नेह। जो औषध शरीर पर चुपड़ कर फिर मालिश या अभ्यंग न किया जाये, वैसे ही छोड़ दी जाये उसे **मसूह** कहते हैं । शुष्क औषध उबटना को **गाज़ा** कहते हैं । मालिश की दवा को **दलूक** कहते हैं। शरीर पर ओषध लगा कर अच्छी प्रकार मालिश की जाती है।

मज़मज़ा—गण्डूष या कुरला, करने की ओषध। क्वाथ, फाण्ट मिश्रण या कोई प्रवाही द्रव जिसे मुख में रखने के बाद अच्छी तरह फिरा कर बाहर कुरला कर दिया जाये। यह गले तक नहीं पहुँचता। जो प्रवाही गले तक तो पहुंचायी जाय किन्तु फेंक दिया जाय उसे गरगरा कहते हैं।

खिज़ाब—मेहँदी, नील के पुष्प या पत्ते (वस्मा) जिनके लगाने से श्वेत बाल अन्य किसी रंग काले या भूरे—के हो जायें ।

सब्ज—जिससे त्वचा का वर्ण बदल जाता है, चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी; जैसे श्वित्र रोग में त्वचा का रंग बदलने के लिये बरती जाने वाली ओषधियाँ ।

हुकूना—प्रवाही औषधि और आहार जो पिचकारी द्वारा वस्तियंत्र से गुदा मलद्वार मार्ग से शरीर में पहुँचाई जाती है ।

बखूर—सुगन्धित द्रव्य-अम्बर-कस्तूरी आदि को जलाकर; उनका धुआँ या वाष्प शरीर के किसी अंग तक पहुँचाया जाये। शुष्क ओषधियों को जलाकर धुआँ लेना बखूर और आर्द्र ओषधियों को भाप पहुँचाना बफ़ारा कहलाता है। बफ़ारा की दवा दवा को कबूब कहते हैं—जिससे वफ़ारा लेते हैं।

शमूम—सूंघने को शुष्क या आर्द्र वस्तु इसमें वस्तु से वाष्प उड़कर नासा के

द्वारा शरीर में पहुँचते हैं ; (औषध को नासा में नहीं पहुँचाते)—जैसे—इत्र, फूल आदि।

लखलखा—पतली ओषध जो किसी चौड़े मुख वाली शीशी में रखकर रोगी को सुँघाई जायें। लखलखे प्रायः प्रवाही होते हैं; इनमें सुगन्धित फूल भी मिले होते हैं। कभी कभी शुष्क औषध को कूट कर—पोटली बाँधकर किसी सुगन्धित प्रवाही में भिगोकर सुंघाया जाता है। प्रवाही द्रव्य जो नासिका से सुड़का जाये—खींचा जाये—उसे **नाशूक** कहते हैं।

क्मिाद—जिस वस्तु से किसी अंग पर सेंक करें या टकोर करें—उसे क्मिाद कहते हैं।

कलूर—प्रवाही ओषध जो शरीर के किसी छिद्र–जैसे– कान, नाक, नेत्र आदि में बूँद-बूँद टपकाई जाती है; या उसमें बत्ती तर करके रखी जाती है।[1]

तोल मान

भारतवर्ष बड़ा देश है। इसमें सदा एक तोल नहीं रहा। प्राचीन मौर्य काल में भारतवर्ष में दो राज्य बड़े थे——एक मगध का साम्राज्य और दूसरा कलिंग का। कलिंग के साम्राज्य को अशोक ने जीतकर अपने राज्य में मिलाकर एक राज्य बनाया। इन दोनों देशों में अपनी अपनी तोल प्रणाली थी। बाद में आयुर्वेद के विद्वानों ने मगध प्रणाली को चरक सम्पत्ति और कलिंग प्रणाली को सुश्रुत नाम दे दिया है। परन्तु इन बातों का कोई आधार नहीं। मान परिभाषा में बहुत से शब्द-लोक में प्रचलित शब्द हैं। उदाहरण के लिये—'भार' शब्द है। भार सामान्यतः पश्चिम उत्तर प्रदेश के सहारनपुर-मेरठ जिले में गेहूँ या जौ कटने पर मजदूर को जो मजदूरी दी जाती है, उसमें काटे हुए गेहूँ या जौ का वजन-भार होता है. जो कि लगभग आज के मान से २½ मन होता है। कभी दो मन भी हो जाता है। इसी प्रकार गोणी शब्द प्रचलित है। गोणी का अभिप्राय गधों पर लादी जाने वाली गोण से है। इसका वजन भी २½ या ३ मन होता है।

---

१. "यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान"—लेखक वैद्यराज हकीम ठा० दलजीत सिंह की पुस्तक के आधार पर।

प्राचीनकाल में इसी प्रकार शूर्प शब्द वजन या भार के रूप में आता है । शूर्प या छाज का एक वजन होता है। छाज उसी आकार के होते हैं । देहातों में आज भी यह प्रयोग चलता है। एक मुट्ठी अनाज दे दो, एक छाज भर गेहूँ दे दो । मुष्टि के लिये प्रकुञ्च-विल्व आदि शब्द आते हैं।

इसलिए इन विषयों में देश या लोक को प्रामाणिक मानना चाहिए जिस प्रकार कि शब्दों के विषय में लोक प्रमाणिक है, व्याकरण नहीं । इसलिए तोल को लोक से समझना चाहिए।

साथ ही यह भी आवश्यक है कि एक योग में एक ही तोल परिमाण से नाम लेना चाहिए। यह नहीं कि उसमें आये पल, कुडव, आढ़क, प्रस्थ शब्दों का मान भिन्न-भिन्न तोलों से लिया जाये। यदि पल=४ तोले से लिया जाये तो सम्पूर्ण योग के वजन—आढ़क, प्रस्थ आदि इसी अनुपात से लेने चाहिए। योग में भिन्न-भिन्न तोलों का मेल नहीं करना चाहिए। एक योग में एक ही तोल करना चाहिए ।

दुगना करना—भारतवर्ष में केवल बंगाल परिपाटी के वैद्य द्रव मान को दुगना करते हैं। दूसरे राज्यों के लोग शास्त्र में लिखे परिपाटी से ही द्रवों को लेते हैं। ये पल भी ८ तोले का लेते हैं। इनका सेर ६४ तोले का है। प्रायः सेर ८० तोले का लेते हैं। इसलिए योग निर्माण में अन्तर आता है।

द्रव वस्तु को दुगुना करने का बहुत महत्त्व नहीं । परिभाषा का अर्थ स्पष्ट हो जाना चाहिए अर्थात् क्वाथ्य द्रव्य का पूरा रस क्वाथ में आ जाये। यदि क्वाथ द्रव्य बहुत कठिन है तो उसमें ८ से भी अधिक १६ गुणा जल मिला लेना चाहिए । नर्म है फूल आदि है (गुलवनफ्सा, गुलाब के फूल आदि) या एक बार का किये हुए क्वाथ का फोक हो (जैसा यूनानी हकीम प्रयुक्त करते हैं) तो दुगना जल ही पर्याप्त होता है, इसी प्रकार तेल या घृत पकाने में भी क्वाथ एवं कल्क का पूरा गुण इनमें आ जाये इस सिद्धान्त को सामने रखना चाहिए। अधिक पानी चढ़ाकर तेज अग्नि देने की अपेक्षा, धीमी अग्नि से थोड़े पानी में तेल, घृत पकाना अधिक गुणकारी होता है।

मान निर्देश[1]

सुश्रुत मान	चरक मान	शार्ङ्गधर मान	आधुनिक मान
	६ वंशी=१ मरीची	३० परमाणु=१ वंशी	
	६ मरीची=१ राजिका	६ वंशी=१ मरीची	
	३ राजिका=१ लाल सरसों	६ मरीची=१ राजिका,	
	८ लाल सरसों=१ तण्डुल	३ राजिका=१ लाल सरसों	
	२ तण्डुल=१ धान्य माष	२ लाल सरसों=१ पीली सरसों	
४ धान्य माष=१ निष्पाव	४ धान्य माष=१ अण्डिका (सेम)	८ पीली सरसों=१ उड़द, जौ	
१२ धान्य माष=१ माशा	४ अण्डिका=१ माशा	२ जौ=१ रत्ती	
८ माशा=१ कोल	३ माशा=१ शाण	६ रत्ती=१ माशा	=मासा
१९ निष्पाव=१ धरण	२ शाण=१ कोल, वदर	४ माशा=१ शाण	
२ कोल=१ कर्ष	२ कोल=१ कर्ष	२ शाण=१ कोल	
२ कर्ष=१ शुक्ति	२ कर्ष=१ शुक्ति	२ कोल=१ कर्ष	=१ तोला
४ कर्ष=१ पल	२ शुक्ति=१ पल	२ कर्ष=१ शुक्ति	=२ तोला
४ पल=१ कुड़व	२ पल=१ प्रसृत	२ शुक्ति=१ पल	=४ तोला
४ कुड़व=१ प्रस्थ	२ प्रसृत=१ कुड़व	२ पल=१ प्रसृत	=८ तोला
२ प्रस्थ=१ ऊर्ध पात्र	२ कुड़व=१ मानिका	२ प्रसृत=१ कुड़व	=१६ तोला
४ प्रस्थ=१ आढ़ल	४ कुड़व=१ प्रस्थ	२ कुड़व=१ शराव	=३२ तोला

१. रसयोग सागर के आधार से

	२ प्रस्थ=१ ऊर्व पात्र	४ कुड़व=प्रस्थ	=६४ तोला
	४ प्रस्थ=१ आढ़क	२ प्रस्थ=१ अर्धप्रस्थ	
४ अम्ढ़ल=१ द्रोण	८ प्रस्थ=१ कंस	४ प्रस्थ=१ आढ़क	=२५६ तोला
	२ कंस=१ द्रोण	२ आढ़क=१ कंस	
	२ द्रोण=१ शूर्प–कुम्भ	२ कंस=१ द्रोण	=१०२४ तोला
	२ शूर्प=१ गोणी	२ द्रोण=१ शूर्प	=२०४८ तोला
	२ गोणी=१ खारी	२ शूर्प=१ गोणी	=४०९६ तोला
	२ खारी=१ भारी	४ गोणी=१ खारी	=१६३८४ तोला
१०० पल=१ तुला	२ भारी=१ वाह	१०० पल=१ तुला	=ऽ५ सेर
२० तुला=१ भार	१०० पल=१ तुला	२० तुला=१ भार	=२॥ऽ मन

आधुनिक कलिंग देश मान

३२ गुञ्जा=१वरहा	=१ शाण (शार्ङ्गधर मान)
१० वरहा=१ पल	=१ पल
८ पल=१ सेर	=१ शराव
५ सेर=१ वीसा	=२½ प्रस्थ
८ वीसा=१ मन	=५ आढ़क
२० मन=१ भार	१०० आढ़क

आधुनिक आन्ध्र देश मान

१ भार=२० मन	१/४ तोला=७ चिन्नम्
१ मन=८ वीसा	१/८ तोला=३½ चिन्नम्
१ वीसा=५ सेर	१ चिन्नम्=१ अडिगर
१ सेर=८ पल	१ अडिगर=२ गुञ्जा
१ पल=३ तोला	१ गुंजा=४ चावल (सलुष)
१ तोला=३० चिन्नम्	१ चावल रत्तिका
१/२ तोला=१५ चिन्नम	

रसतन्त्रीय परिभाषा

प्राचीनकाल में पारद और दरद (हिंगुल) काश्मीर के वर्त्तमान प्रदेश हूजा और गिलगित के प्रान्तों से आता था । उस समय के पारद में सम्भवत: नाग, वंग, विष दोष रहते होंगे। इन दोषों को प्राचीनों ने कञ्चुक नाम दिया है । परन्तु आज जो पारा हमको बाज़ार में उपलब्ध है, उसमें नाग और वंग दोष नहीं होते । यदि पारद में नाग और वंग मिलाकर आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित पद्धति से उसका शोधन किया जाये, तो सामान्य चालू शोधन विधि से ये पृथक् भी नहीं होते । तिर्यक् पातन, ऊर्ध्व पातन, अधः पातन विधियाँ ही इनको अलग कर सकती हैं। इसीलिये सम्भवत: अठारहवी शती में बने ग्रन्थों में पारद शोधन की प्रक्रिया को बहुत ही संक्षिप्त और सरल कर दिया गया है, यथा—"**एकेन लशुनेनापि शुद्धो भवति पारदः**"—अर्थात् अकेले लहसुन से भी पारा शुद्ध हो जाता है।[1]

प्राचीनकाल में पारद के दो मुख्य कर्म थे—पहला देह सिद्धि और दूसरा लोह सिद्धि। देह सिद्धि के लिये जहाँ तक चिकित्सा का सम्बन्ध है, काम चलाऊ शोधन ही अभीष्ट दीखता है। लोह सिद्धि के लिए संस्कार उपयोगी हैं। शास्त्रीय ग्रन्थों में इन संस्कारों का विस्तार से वर्णन है। अठारह संस्कारों को संक्षिप्त करके आठ संस्कार मुख्य माने गये हैं। बाद में इनको भी संक्षिप्त करके तीन माने गये—स्वेदन मर्दन और ऊर्ध्व पातन। इनको भी संक्षिप्त करने का यत्न किया गया।[2] इस समय क्रियात्मक रूप में मर्दन-मूर्च्छन-उत्थापन ये तीनों संस्कार एक ही शोधन प्रक्रिया के अंग बने हुए हैं।

इसके अतिरिक्त रसायन शास्त्र ने एक अन्य सरल उपाय पारद शोधन का सुझाया है। पारद का नत्रकाम्ल से समास जल्दी नहीं बनता । इसलिए यदि नत्रकाम्ल में से पारद को बूँद-बूँद करके टपकाया जाये, तो दूसरी सब अशुद्धियाँ नत्रकाम्ल में रह जाती हैं। शुद्ध पारद नीचे आ जाता है। यह विधि सुगम है अतएव इसको अपनाना चाहिए।[3]

शास्त्र के अनुसार शुद्ध पारद की पहिचान इस प्रकार है—

अन्तःसुनीलो वहिरुज्ज्वलो यो मध्याह्न सूर्य प्रतिम प्रकाशः ।
योज्योऽथ धूम्र : परिपाण्डुरश्च चित्रो न योज्यो रस कर्म सिध्यै ॥आ,. प्र. १।१२६

---

१. आयुर्वेद प्रकाश--१।१५१.
२. वही १–१३९
३. रस शास्त्र—हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित

जो पारा अन्दर में नीला दिखायी दे और बाहर से उज्ज्वल श्वेत चमकता हो,(जैसा शरद्ऋतु में निर्मल पानी होता है); जिसकी तेजस्विता-चमक तपते हुए दुपहर के सूर्य के समान हो, वह पारा रस कर्म में बरतना चाहिए। जो पारा काला-धूसर, नाना रंग के रंगों की झाँई देता हो; उसे रस कर्म में नहीं बरतना चाहिए।

जहाँ तक इस प्रकार की परीक्षा का प्रश्न है, यह परीक्षा मर्दन कार्य से हो जाती है। इसके लिये सामान्य रूप से लहसुन, ईंट का चूरा (अभाव में चूना), सन या ऊन; त्रिफला और चित्रक क्वाथ, हल्दी, नमक, निम्बू का रस के साथ पारद को तीन दिन तक भली प्रकार से रगड़ने से, पारद शुद्ध हो जाता है। आयुर्वेद प्रकाश में तो एक दिन रगड़ने का भी विकल्प दिया है। तीन दिन तक लोहे के खरल में भली प्रकार से रगड़ पड़ने पर पूर्णरूप से शुद्ध बन जाता है। शुद्ध होने के बाद काँजी, खट्टी तक्र या सिरका मिले पानी से धोना चाहिए। इस प्रकार धोने से इसमें चमक बहुत स्पष्ट आ जाती है। [1] पारद के शोधन में प्रत्येक द्रव्य का परिमाण पारद का सोलहवाँ भाग लेना चाहिए।

स्वेदन संस्कार

पारद हरताल, मैनसिल आदि वस्तुएँ जो पानी या अन्य द्रव में अघुलनशील होती हैं, उनका शोधन करने के लिए इन वस्तुओं को स्वेद दिया जाता है। स्वेदन से वस्तु के मल द्रवित हो जाते हैं। जिस प्रकार मनुष्य शरीर का स्वेदन करके उसे स्वेद देने पर मल बनकर सुगमता से बाहर किये जा सकते हैं, उसी प्रकार इन वस्तुओं के मल भी स्वेदन द्रव बनकर निकल जाते हैं। दोष-मैल स्वेदन से शिथिल हो जाते हैं।

स्वेदन में द्रव्य जो लिये जाते हैं, वे उष्ण वीर्य होते हैं। इसके लिए—सोंठ, मरिच, पीपल, मूली, नमक, राई, चित्रकमूल, आर्द्रक, इनको पीसकर इनके साथ काँजी से तीन दिन तक स्वेदन देना चाहिए।

स्वेदन करने के लिए दोला यंत्र का उपयोग होता है। इन द्रव्यों को पीसकर कांजी में मिलाकर स्वेदन देते हैं। अथवा वस्त्र या भोजपत्र में इनका लेप करके उसमें पारद को बाँधकर दोला यंत्र से स्वेदन देते हैं। काँजी का वाष्प वस्त्र में से पारद तक पहुँच कर उसको गरम करता है, जिससे दोष शिथिल होते हैं। कपड़ा यदि बरतना हो तो नाईलोन या रेशम का वस्त्र इस कार्य के लिये उत्तम है।

---

१. आयुर्वेद प्रकाश १।५२–५३.

मर्दन संस्कार

मर्दन का सामान्य अर्थ घोटना है। परन्तु पारद संस्कार में पादर को कही हुई वस्तुओं के साथ घोटना मर्दन करना-मर्दन संस्कार है। इसमें वस्तुएँ पारद से सोलहवाँ भाग ली जाती हैं। ये वस्तुएँ घर के धुआँ से; ईंटों के चूरे (चूना उपयोगी है); गुड़, दधि, नमक, राई, काँजी या निम्बुरस से रगड़ी जाती हैं। इस क्रिया द्वारा स्वेदन से शिथिल हुए दोष दूर होते हैं।

मूर्च्छन संस्कार

मूर्च्छन संस्कार में पारद को घीक्वार, त्रिफला, चित्रक मूल; अमलतास की मूल का क्वाथ से रगड़ा जाता है। मूर्च्छन संस्कार में पादर को इतना रगड़ते हैं कि उसका स्वरूप ही नष्ट हो जाता है। इसलिए मूर्च्छन संस्कार का एक नाम **नष्ट पिष्ट** है। इसमें पारद के कण बिखर जाते हैं। उसका संहत रूप नहीं रहता।[1] पारद का मूल रूप ही इसमें नष्ट हो जाता है। यही मर्दन और मूर्च्छन में अन्तर है।

उत्थापन संस्कार

इस संस्कार में पादर में चेतना लायी जाती है। इसके लिए उसे गरमी उष्णिमा देते हैं। इसमें पारद को तेज धूप में रखते हैं। गरम पानी या गरम काँजी से धोते हैं। ऊर्ध्वपातन करते हैं अथवा काँजी से स्वेद देते हैं। ऐसा करने से बिखरा हुआ पारा पुनः संहत्र रूप में आ जाता है। यही इसका उत्थापन है—चेतनत्व है।

पातन संस्कार

पातन का सामान्य अर्थ गिराना है। यह तीन प्रकार से किया जाता है। ये प्रकार हैं—ऊपर से गिराना—अधःपातन, नीचे से ऊपर गिराना–ऊर्ध्वपातन, तिरछे रूप में गिराना–तिर्यक्पातन। इसमें प्रायः तिर्यक्पातन विधि अपनायी जाती है। इस विधि से पारद के दोष–विशेषकर नाग और वंग नष्ट होते हैं।

---

१. मूर्च्छनोद्दिष्ट भेषज्यैर्नष्टपिष्ट कारकम् ।
तन्मूर्छनं हि संप्रोक्तं सर्वदोष विनाशनम् ।।
स्वरूपस्य विनाशेन पिष्टत्वा पादनं हि यत् ।
पिप्रवैर्वजितः सूतो नष्टपिष्टः स उच्यते ।। आ० प्र० १।५४ की टिप्पणी

इसमें एक सरल विधि है—विलायत से ७५ रत्तल (पौण्ड) पारा भरकर जो लोहे की बोतल आती है, उसके मुख पर पेचदार लोहे की टेढ़ी नली बैठाने से तिर्यक्पातन यंत्र बनता है। इस यंत्र में पारे को और चूने को डाल दें। बोतल एक तिहाई खाली रहे। अथवा अकेले पारे को डाल दें। बोतल के मुख पर पेचदार लोहे की नली बिठाकर, सन्धि को कपड़मिट्टी से बन्द करके यंत्र को बड़ी ऊँची अँगीठी पर रखकर यंत्र की नली को पार्श्व में रखी तिपाई पर रखे पानी भरे मिट्टी के पात्र में टेढ़ा रखकर; कोक की तेज आँच दें। जब सारा पारा निकल जाये, पारा आना बन्द हो जाये तब यंत्र को नीचे उतार लें। पात्र में आये तथा नली में लगे सब पारे को एकत्रित कर लें।

ऊर्ध्वपातन के लिए विद्याधर यंत्र का प्रयोग होता है। अधःपातन में अधःपातन यंत्र का उपयोग होता है। पातन का लाभ यही है कि जो दोष पारद के ताप परिमाण से अधिक ताप पर वाष्प बनते हैं, वे रह जाते हैं। पारद जल्दी वाष्प बन कर उड़ जाता है।

रोधन (बाधन) संस्कार

बाधन का अर्थ जाग्रत करना है। जिस प्रकार मूर्च्छन-संस्कार के बाद उत्थापन संस्कार होता है; उसी पातन क्रिया में पारद के अन्दर आई निष्क्रियता को दूर करने के लिये यह संस्कार किया जाता है। इसमें जहाँ इसको शान्त रूप में पड़ा रहने देते हैं, वहाँ साथ-साथ इसमें चेतना लाने के लिये अम्ल और लवण रस को भी बरतते हैं।

इसके लिए मिट्टी के पात्र में या नारियल के कपाल में एक भाग सैन्धव नमक और तीन भाग जल भर कर, इसमें पारद को डालकर पात्र का मुख बन्द करके तीन दिन रख देते हैं, (कोई कोई तीन दिन भूमि में एक हाथ गड्ढे में गाड़ देते हैं)। सैन्धव के पानी से स्वेद देने में यही लाभ होता है।

नियमन संस्कार

रोधन प्राप्त शक्तिवाले पारद की चपलता को नियन्त्रित करने के लिए यह संस्कार है। इसके लिये लहसुन, मोथा, भांगरा, इमली, बाँझककड़ी, धतूरा आदि वस्तुओं के साथ पारद का स्वेदन किया जाता है। स्वेदन से पारद नियमित हो जाता है। वह वश में आ जाता है।

दीपन संस्कार

दीपन का अर्थ भूख बढ़ाना है। इसलिए बुभुक्षा-खाने की इच्छा; मुखीकरण-मुख बनाना–जिसमें ग्रास (सोना-अभ्रक-चाँदी का) डाला जा सके, भी कहते हैं। इसके लिए वीर्य ओषधियों का ही उपयोग होता है, यथा—कासीस, सुहागा, मरिच, नमक, राई, सहजन बीज़ या छाल, कांजी, चित्रक इनके साथ पारद का स्वेदन किया जाता है। इससे पारद में बुभुक्षा ग्रास खाने की इच्छा उत्पन्न होती है। यही इसका **दीपन** है।

इसके बाद कई आचार्य अनुवासन संस्कार भी बताते हैं। इसमें पारद को **विजौरे** के रस या निम्बू के रस में डालकर दिन भर धूप में रख देते हैं। इसमें मिट्टी का पात्र बरतना चाहिए। अनुवासन-शब्द का अर्थ एक दिन वासा करके (पर्युषित) करके काम में लाना। इस संस्कार का कोई विशेष महत्त्व न देखकर कुछ आचार्य इसको नहीं मानते।

सामान्यत: चिकित्सा कर्म में दो प्रकार से शुद्ध पारा ही काम में लाया जाता है—

१—हिंगुल से निकाला हुआ पारद

२—मर्दन-मूर्च्छन-उत्थापन संस्कार द्रव्यों से शोधित पारद

हिंगुल से निकाला पारा—यह पारा उर्ध्वपातन, अध:पातन या तिर्यक् पातन की विधि से प्राप्त होने के कारण शुद्ध होता है। क्योंकि पारद जिस तापक्रम पर वाष्प बनता है, उस पर इसमें मिली दूसरी अशुद्धियों का वाष्पीकरण नहीं होता। इसलिये के पीछे रह जाती हैं।

हिंगुल को कागजी नीबू या बिजौरे के रस से एक प्रहर घोटकर सुखाकर विद्याधर यंत्र में रखकर या तिर्यक् पातन विधि से, अग्नि देकर इससे पारा निकाल लें। यह पारा सब दोषों से मुक्त होता है।

अथवा हिंगुल गोला बनाकर इस पर कपड़ों की लम्बी लम्बी पट्टियाँ लपेट कर एक बड़ी गेंद सी बनालें। इसको एक चौड़े बर्तन में (जो मिट्टी या लोहे का हो या एनमल्ड किया हो) रख दें। इसके ऊपर भी इसी के आकार का चौड़ा बर्तन ढाँक दें। दोनों बर्तनों में आधा या पौन इंच ऊँचाई रख दें, जिससे थोड़ी वायु जा सके। अब गेंद को अग्नि लगा दें। जब कपड़ों में अग्नि जलने लगे तब दूसरा पात्र इस पर ढाँक दें। इससे गरमी मिलकर पारा हिंगुल से अलग होकर कपड़ों की तहों में एकत्रित हो जाता है। आग बुझने पर इसको एकत्रित कर लें।

पारे का सामान्य शोधन—आजकल मिलने वाले पारे में सामान्यतः अशुद्धि नहीं होती। परन्तु देखने में मलिनता रहती है। इसके लिए इसको सफेद करने की प्रथा है। इसके लिए निम्न शास्त्रीय विधियाँ बरती जाती हैं। इसमें प्रत्येक द्रव्य पारे का सोलहवाँ भाग लेते हैं। पारे को धोने के लिये काँजी, निम्बू, इमली, बिजौरे आदि की अम्ल रस बरतते हैं, और अन्त में गरम पानी से धोकर रूई से या धूप में रख कर सब पानी शुष्क कर देते हैं। ये क्रियाएँ सब में समान है।

(१) नमक, हल्दी, लहसुन, चूना या ईटों का चूरा
(२) अकेला लहसुन
(३) त्रिफला क्वाथ, घीक्वार, हल्दी, नमक
(४) चित्रक क्वाथ, नमक, लाल सरसों, ऊन या सन

शास्त्र में सब प्रकार की लम्बी और छोटी विधियाँ तथा समय की दृष्टि से विकल्प दिये हैं। रस चिकित्सा में इनकी आवश्यकता रहती है। धातु बाद में लम्बी तथा कठिन विधियों का उपयोग है।[1] वे सब धातुवाद में हैं। इसी से मूर्च्छन विधि में कहा है—"**सप्तवाराणि मूर्च्छयेदिति धातुवादे; न रसेषु—अ० प्र० ।**

गन्धक का शोधन

जारण—रस शास्त्र में पारद के बाद गन्धक का महत्त्व है। आयुर्वेद प्रकाश में लिखा है कि पारा कितना ही शुद्ध क्यों न हो, उसे बिना गन्धक के प्रयोग नहीं करना चाहिए।[2] पारद की गन्धक के साथ जारणा (मूर्च्छना) आवश्य होनी चाहिए।

---

१. इसी से रससिंदूर बनाने में अशुद्ध हिंगुल और गन्धक का उपयोग भी बताया गया है—"आरोटकमन्तरेण हिंगुलगन्धकाभ्यां पिष्टाभ्यामपि सिन्दूर रसः संपाद्यः। आरोटक शब्दस्तु शुद्ध पर्यायवाचकः॥"—आ० प्र० १।
(ख) एकेन लशुनेनापि शुद्धो भवति पारदः।
(ग) त्रिदिन स्वेदना शक्तौ दिनमेकं निरन्तरम्। स्वेदयेद् रसराजं तु नाति तीक्ष्णेन वह्निना॥—आ० प्र० .
इस प्रकार से सब कार्यों के लिये विकल्प एवं संक्षिप्त विधि बताई है, यह सब समय-द्रव्य की अपेक्षा से है।

२. गन्धक जारणरहितः संशुद्धोऽपि रसो योगेषु न योज्यः, गदहन्तृवशक्त्यनुदयात् ॥ —आ० प्र० ॥

पारद की जारणा दो प्रकार की है—एक गन्धक के साथ और दूसरी गन्धक के बिना। इनमें गन्धक रहित जारण का उपयोग लम्बे समय तक नहीं कर सकते। यह सामयिक होती है। थोड़े समय देकर बन्द कर देनी पड़ती है।[1]

जारण और मूर्च्छना दोनों समान अर्थवाले शब्द हैं। गन्धक के साथ पारद की जारणा का अर्थ–गन्धक के साथ पारद का बद्ध हो जाना है। अब पारद स्वतंत्र रूप में नहीं रहता। अपितु गन्धक से मिलकर पारद गन्धित के रूप में हो जाता है। यही इसकी मूर्च्छना है।

गन्धक के साथ पारद की जारणा करने के लिये कच्छप यंत्र या बालुका यंत्र उपयोग करते हैं।[2] इसमें जारणा वहिर्धूम और अन्तर्धूम विधि से दो प्रकार की है—यह प्रायः बालुका यंत्र में की जाती है। बालुका यंत्र में धूम निकलने देकर जो जारणा की जाती है, वह वही धूम जारणा है। जब प्रारम्भ से ही डाट लगाकर शीशी का मुख बन्द करके जारणा की जाती है, तब इसको अन्तर्धूम जारणा कहते हैं।

जारणा के लिए शुद्ध गन्धक बरती जाती है। बाजार में अंग्रेजी दवा बेचने वालों के यहाँ सल्फर सबलीमेंट नाम से शुद्ध गन्धक मिलती है। इसका शोधन करके **या बिना शोधन करके,** उपयोग किया जा सकता है। यह गन्धक चूँकि वाष्प उड़ाकर तैयार की जाती है इसलिए पूर्ण शुद्ध होती है। इसके अतिरिक्त जो डण्डे की आकार की गन्धक मिलती है और बारूद आदि के काम में जो आती है, वह अशुद्ध होती है। उसका शोधन करना आवश्यक है। आयुर्वेद में आँवले के रंग की (पीले रंग की थोड़ी सी हरिमा की झाँई ली हुई) गन्धक को उत्तम कहा गया है—(**पीतश्चामलसाराख्यः श्रेष्ठो रसरसायने**—आ० प्र०)।

शोधन—गन्धक को लेकर उसको तोड़कर उसके चने के बराबर टुकड़े कर लेने चाहिए। गन्धक के बराबर तोल में गाय का शुद्ध घी लें। एक पात्र में गाय का दूध भरकर तैयार रखें। गन्धक और घी को एक साथ पिघलाएँ। जब गन्धक और घी पिघल जायें तब दूध वाले पात्र पर बँधे कपड़े में इसको छान कर नीचे दूध में गिरने दें। इससे पत्थर आदि की मलिनता वस्त्र के ऊपर रह जाती है। नीचे शुद्ध गन्धक मिलती है। इस गन्धक को गरम पानी से धो लेना चाहिए जिससे घी का चिकनापन दूर हो जाये (चिकनापन रहने से कई बार दुर्गन्ध आने लगती है)। फिर इसको

---

१. **किंच मूर्च्छना जारणा इत्येनर्थान्तरं प्रायः—आ० प्र०**

२. **कच्छप यंत्र और बालुका यंत्र, यंत्र अध्याय में देखें।**

शुष्क करने के लिए धूप में रख देना चाहिए या स्याही सोख (ब्लैटिंग पेपर से) पर फैला देना चाहिए।

आयुर्वेद के अनुसार घृत सब प्रकार के विषों को—दोषों को दूर कर देता है।[1] इस विधि को तीन बार करने का शास्त्र में विधान है। गन्धक की शुद्धि में या पर्पटी बनाने में लोहे का पात्र लेना चाहिए।

दूसरी विधि—इस विधि में घी और दूध साथ में मिला दिये जाते हैं। इसके लिए एक पात्र में घी और दूध डालकर पात्र का मुख कपड़े से बाँध दें। कपड़े पर गन्धक का चूर्ण रखकर इसको मिट्टी की परई या लोहे की परई से ढाँप दें: इसमें परई का उठा हुआ भाग ऊपर रखें। इस पात्र को भूमि में गाड़कर परई के ऊपर आग दें। ऐसा करने से गन्धक पिघल कर नीचे दूध में गिरती है।

इस गन्धक को गरम पानी से धोकर वस्त्र से सुखाकर काम में लाना चाहिए। योगों में मिलाने के लिये एक बार शोधन करना पर्याप्त है।

हिंगुल का शोधन

हिंगुल पारा और गन्धक का समास है। यह प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों प्रकार का होता है। प्राकृत हिंगुल व्यवहार में नहीं आता। क्योंकि बहुत कम मात्रा में मिलता है और इसमें पत्थर का भाग अधिक रहता है। कृत्रिम हिंगुल अशुद्ध पारद और अशुद्ध गन्धक से बना मिलता है। सामान्यत: जो अच्छा हिंगुल होता है; उसके स्फटिक लम्बे होते हैं। वह जल्दी टूटने वाला, बिखरने वाला और चिकना होता है। क्योंकि यह अशुद्ध पारा और गन्धक से बनता है। इसलिए इसका शोधन करना होता है। हिंगुल को शुद्ध करने के लिए उसे खरल में डालकर बारीक चूर्ण कर ले। बिजौरे या निम्बु के रस से तीन बार भावना देने से हिंगुल शुद्ध हो जाता है। आयुर्वेद ग्रन्थों में भेड़ के दूध या भैंस के दूध से भी भावना देने का उल्लेख है। इन दोनों दूधों में वसा की मात्रा अधिक रहती है। इनसे भावना देकर भी अम्ल वर्ग से भावना देने का विधान है। परन्तु सामान्यत: बिजौरे या निम्बू के रस से भावना देकर हिंगुल का उपयोग हो जाता है।

हिंगुल शोधन ही रस-ग्रन्थों में दिया है। अन्य कोई क्रिया नहीं दी है।

---

१. सुश्रुत में घी को रखने के लिए कृष्ण आयस का ही उल्लेख किया गया है," "घृतं कार्ष्णायसेदेयम्"—सु० सू० अ० ४६।४४९।

धातुओं का शोधन

धातुओं की शुद्धि के विषय में सातवीं-आठवीं शती में इस समय से बहुत अन्तर हो गया है। आधुनिक शोधन प्रणाली से धातु प्रायः पूर्ण शुद्ध रूप में मिल जाते हैं। सोना, चाँदी, ताम्र, सीसा, वंग, जस्ता ये धातु पूर्ण शुद्ध बाजार में मिलते हैं। शुद्धता का यही अभिप्राय है कि इनमें कोई दूसरा अपद्रव्य मिला न हो। स्वर्ण की शुद्धता के द्योतन के लिए प्राचीन काल में "वर्ण" शब्द चलता था। वर्त्तमान काल में 'कैरेट' शब्द प्रचलित है। आजकल चौबीस कैरट का स्वर्ण शुद्ध माना जाता है। प्राचीन काल में सोलह वर्ण का सोना शुद्ध माना जाता था।[1] स्वर्ण की शुद्धता प्रायः एक जैसी स्थिर रही है। स्वर्ण और चाँदी इन दो धातुओं को 'अक्षय' कहा जाता है। यदि इनको पूर्ण शुद्ध रूप में वायु मण्डल में रख दिया जाये, तो भी इनमें किसी प्रकार की विकृति नहीं आती। इसी से अक्षय कहाती हैं।

ताम्र भी शुद्ध रूप में इस समय प्राप्त होता है। ताम्र को बारीक से बारीक तार विद्युत् कार्य के लिए तथा सोना-चाँदी चढ़ाने के लिए बनाते हैं। इन तारों का ताम्र पूर्ण शुद्ध होता है। शुद्धता की कसौटी यही है कि धातु में दूसरी वस्तु का मेल न हो। वर्तमान काल में रसायन शास्त्र के द्वारा धातु में मेल या अपद्रव्य का पता चल जाता है। इसलिएँ बाजार से धातुओं को शुद्ध रूप में ही प्राप्त कर लेना चाहिए।

शोधन—इसका अर्थ शुद्ध धातुओं के अर्थ में अधिक सार्थक नहीं। अपितु उनकी भंगुरता-सूक्ष्म टुकड़े करने में है। तैल-तक्र आदि द्रवों में गरम करके डालने से इनका शोधन होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि इनके अपद्रव्य निकल जाते हैं अपितु ये भंगुर-टूटने वाले हो जाते हैं। इनका संघस्त मुलायम पड़ जाता है जिससे भस्म करने में सुगमता रहती है।

धातुओं का सामान्य शोधन—इस विधि में धातुओं को अग्नि में तपाकर किसी द्रव में निर्वापित-बुझाने का विधान है। सामान्यतः यह प्रक्रिया सात बार या तीन बार की जाती है। द्रवों में तैल (तिल या सरसों का) तक्र (छाछ) गोमूत्र, आरनाल (काँजी), कुलत्थी की कषाय—इनमें धातुओं को निर्वापित करते हैं। आयुर्वेद प्रकाश के अनुसार केले की जड़ के पानी में बुझाना चाहिए— बुझाने के लिए द्रव इतना होना चाहिए कि वस्तु उसमें डूब जाये।

---

१. देखिए 'रसशास्त्र' अत्रिदेव कृत पृष्ठ २३२ की टिप्पणी।

निर्माण की दृष्टि से इसमें पात्र सिलैन्डर के आकार का लम्बा लेना चाहिए। चौड़ा कम हो। (गिलास के आकार का)। जिससे द्रव की थोड़ी मात्रा में धातु की अधिक मात्रा बुझाई जा सके। इसमें गहराई अधिक रहती है।

सामान्यतः प्रत्येक बार नया द्रव लेने का विधान है; परन्तु क्रियात्मक दृष्टि से आजकल वस्तुएँ प्रायः शुद्ध मिलती हैं। केवल उनको भंगुर बनाना ही इच्छित होता है। इसलिए नया द्रव लेने का यही उद्देश्य है कि इसका ताप परिमाण धातु के ताप परिमाण से कम हो, यह ठण्डा हो। धातु को गरम कर के द्रव में डालने से वह द्रव को भी गरम कर देता है, इसलिए उसके स्थान पर दूसरी बार ठण्डा द्रव लेना चाहिए। ठण्डा होने पर पहले द्रव को भी प्रथम की भाँति काम में ला सकते हैं। यह शुद्धि सामान्यतः सब धातुओं के लिए है। प्रत्येक धातु की शुद्धि उसकी भस्म के साथ में है।

मारण या भस्म—इससे अभिप्राय शरीर में समाविष्ट करने योग्य बनाना है जिससे वह शरीर में विलय हो सके और अपना कार्य कर सके। इसके लिए शास्त्र में कुछ पहिचानें दी हैं—ये पहिचानें उस समय की दृष्टि से ठीक हैं परन्तु आज उससे अधिक साधन उपलब्ध हैं; उनका उपयोग करना चाहिए। प्राचीन पहिचान के अनुसार—

१—भस्म अँगुली के रेखाओं में भर जानी चाहिए।

२—पानी पर हंस की भांति तैरनी चाहिए ।

३—भस्म निरुत्थ होनी चाहिए—अर्थात् सुहागा, गुंजा, मधु, गुड़ और घी इन पाँच के साथ गरम करने पर वह अपनी पूर्व स्थिति में नहीं आनी चाहिए।

परन्तु आज उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान से प्राचीनों की ये परीक्षाएँ कसौटी पर सही नहीं उतरतीं। उदाहरण के लिये सुई या आलपीन जैसी वस्तु पानी से भरे गिलास में तैरती है। मशीनों के उपयोग से बारीक सूक्ष्म चूर्ण अंजन की भाँति बन जाता है। सुहागा अकेले के साथ कोई भी भस्म गरम करने पर लौट आती है। नाग और वंग को तेज आँच देने पर वह वापिस अपने रूप में आ जाती है। सोने और चाँदी को पीट-पीटकर उनके तबक बनाये जाते हैं। ये तबक (वरक)पान या मिठाई में खाये जाते हैं यह अपक्व स्वर्ण का उपयोग है। इसी प्रकार स्वर्ण को घिसकर देने का भी विधान है। चरक सुश्रुत आदि में लोहचूर्ण या अन्य धातुओं के सूक्ष्म चूर्ण का उपयोग बिना अग्नि संयोग के करने का उल्लेख मिलता है। इससे इतना स्पष्ट है कि सूक्ष्म रज धातुओं की ही उस समय अभीष्ट थी। इसलिए भस्म की सामान्य परीक्षा उसकी मसृणता-चिकनापन; कोमलता; सूक्ष्मता रेखा पूर्णांकिता इन बातों पर

निर्भर है। ये गुण अग्नि संयोग से जल्दी आ जाते हैं। इसलिए अग्नि में भस्म बनाने की प्रथा चली।[1]

धातुओं की भस्में पारद और गन्धक के योग से बनाना उत्तम है। पारद या गन्धक से बनी भस्मों में रसायनिक क्रिया होने पर उनका समास अच्छा बनता है। यह शरीर के लिये शीघ्र लाभकारी होता है। नाग-वंग आदि कुछ धातुओं के लिए सीधा गन्धक या पारद न बरतकर इनके बने समास मैनसिल, हरताल बरतने का शास्त्र में उपदेश है। इसी प्रकार लोह के लिए पारद का समास हिंगुल बरता जाता है। सोना चाँदी के लिये पारा और गन्धक या हिंगुल बरतते हैं।

पारद और गन्धक के बिना जो भस्में काष्ठौषधियों द्वारा बनायी जाती हैं, वे चिकित्सा में उपयोगी नहीं। इनका उपयोग धातु कर्म के लिए है। इसलिए यहाँ पर चिकित्सा की दृष्टि से भस्मों की निर्माणविधि दी है। पारद और गन्धक के योग से बनी भस्में बहुत ही सूक्ष्म होने पर और सावधानी से पानी पर बुरकने पर तैरती हैं।

स्वर्ण का शोधन और मारण—बाजार से शुद्ध सोना, जो चौबीस कैरट की सील का होता है, लाकर उसका मशीन में महीन पत्र (कण्टिकवेध-सूई से वींधा जा सके) बनवा लें अथवा सोने के वरक ले लें। यदि मशीन का पत्र बनाया गया हो और उससे मकरध्वज या चन्द्रोदय बनाया गया हो तो इसमें से निकला सोना भस्म के लिए बरतें। सामान्यत: स्वर्ण पत्र बारीक, सूक्ष्म होने चाहिए।

सोने में दुगना पारद मिलाकर तीन-चार दिन खरल में मर्दन करें, जिससे सोने में पारद का पूर्ण प्रवेश हो जाये।[2] इसके पीछे इसमें सबके बराबर गन्धक मिलायें और कज्जली बनायें। कज्जली को कण्टक चौलाई (मेघनाद) या सत्यानाशी के रस से भावना देकर बारीक टिकिया बना लें। इनको सुखाकर पुट दें। पुट में अग्नि मध्यम रहे। पहले थोड़ी अग्नि दें। इसे निकाल कर पीस कर देखें। यदि चमक अधिक हो तो सोने से चौथाई पारा मिलाये। फिर पहले की भाँति पुट दें। इस प्रकार चार-पाँच पुट देने पर सोने की चमक नष्ट हो जाती है। इसके बाद

---

१. देखिये—रसशास्त्र में भस्म

२. पारे के साथ सोना रगड़ने पर संरस (एमलगम) बन जाता है। जब यह बारीक अच्छी प्रकार मिल जाता है, तब खरल के साथ चिपकने लगता है। इस समय इसकी रगड़ाई करके पीछे कज्जली बनाये। पारा-सोने या अन्य धातु के कण-कण में व्याप्त होना चाहिए।

कचनार की छाल के क्वाथ से पुट दें। इससे तीन चार पुट देने पर उत्तम लाल रंग की भस्म बनती है।

सोना अक्षय है। इसकी भस्म कम नहीं होती। सामान्यतः एक तोले के पीछे एक या आधी रत्ती बढ़ती ही है।

सोने की चमक यदि थोड़ी रह भी जाये तो उससे डरने की कोई बात नहीं है। मिठाई या पान आदि के साथ सोना या चाँदी के जो वर्क हम खाते हैं, उनसे बहुत कम मात्रा में यह सोना इसमें जाता है। परन्तु प्रयत्न यही करना चाहिये कि यह भस्म में दिखाई न दे।

कचनार के सिवाय बट की छाल, बकरी के रक्त आदि की भी भावना देते हैं।[1]

सोने की भस्म का रंग खिलता गुलाबी या कुछ लाली लिये होता है। इस भस्म को सुहागे के साथ गरम करके सुनार लोग फिर से सोने का रूप दे देते हैं। आयुर्वेद में निरुत्थ या अपुनर्भव शब्द सोना और चाँदी के अर्थ में चरितार्थ नहीं होते; ये दोनों अक्षय होने से इसमें अपवाद है। ऐसी मेरी मान्यता है। लोह भस्म-सुहागा या मित्रपंचक (गुड़, घी, मधु, टंकण, चिनौठी से गरम करने पर भी अपने) पुराने रूप में नहीं आते।

चाँदी (रजत) की भस्में

बाज़ार में चाँदी भी पूर्ण शुद्ध मिलती है। इसके भी वरक बनते हैं। ये मिठाई या पान पर लगाये जाते हैं। उनसे चाँदी का बारीक पतरा बनाकर काम ले सकते हैं। परन्तु इससे भी सरल और अच्छा उपाय यह है कि नियारिये सोना-चाँदी साफ़ करते समय जब सोना या चाँदी शुद्ध कर लेते हैं तब उसको डली या लगड़ी का रूप देने से पूर्व वे दोनों राख, भूति के रूप में बारीक चूरा होते हैं। भस्म के लिए चाँदी का यही चूरा लेना चाहिए। इस चूरे को शुद्ध करने की कोई जरूरत नहीं होती।

---

१. कचनार को आयुर्वेद में रक्तस्तम्भक माना गया है। क्षय रोग में रक्त आता है। इसी से कचनार एवं बकरी के मांस आदि द्रव्यों की भावना का विधान है। सामान्यतः नियम यह है कि जिस रोग के लिए भस्म बनानी हो उस रोगनाशक वनस्पति के रस या क्वाथ की भावना दी जाती है—इस प्रकार भावना देने से भस्म में उस औषध का गुण आता है, उदाहरण के लिये क्षय रोग के लिये अभ्रक की भस्म को बकरी के रक्त या कचनार के क्वाथ से भावना देते हैं।

यदि शुद्ध करने का आग्रह ही हो तो इसको अग्नि में किसी लोहे के पात्र में या कुठाली में रखकर नीचे और ऊपर से धौंकनी की अग्नि से गरम लाल करके निम्बू के पानी में या अगस्तिया के क्वाथ में एक या दो बार बुझा देना चाहिए।

इस प्रकार शुद्ध चाँदी को या नियारिये से लिये चाँदी में बराबर का शिगरफ मिला कर रगड़ें। शिगरफ़ जब चाँदी के साथ अच्छी प्रकार मिल जाये, (चाँदी अलग से न दीखे) तब सारी वस्तु को ऊर्ध्वपातन यंत्र में रख कर अग्नि दें। इससे पारा अलग निकल आयेगा और नीचे काले लाल रंग की चाँदी की विभूति मिलेगी। इसमें लाली अधिक हो तो दुबारा ऊर्ध्वपातन कर लें।[1]

ऊर्ध्वपातन निकली चाँदी को एक पुट निम्बू के रस से मर्दन करके दे देना चाहिए। टिकिया बारीक बनानी चाहिये। इसके पीछे इसमें चाँदी से चतुर्थांश हरताल तबकी पीली हरताल मिलाकर निम्बू के रस से मर्दन करके पुट दें। पिछले पुटों में हरताल मिलाने की जरूरत नहीं होती। इस प्रकार चार-पाँच पुट निम्बू के रस से देने पर भस्म काले रंग की बन जाती है। बहुत से वैद्य हरताल नहीं मिलाते। केवल निम्बू रस से मर्दन करके, टिकिया बनाकर पुट देते हैं।

सोना, चाँदी, लोहा, ताम्र को पहले तेज आँच देनी चाहिए और फिर धीरे-धीरे कम करते जाना चाहिए। नाग, वंग, पीतल, काँसा को पहले हल्की आँच देनी चाहिए और धीरे-धीरे जब ये अग्निसह हो जाये तब तीव्र आँच देनी चाहिए।

चाँदी की भस्म काली बनती है। चाँदी की भस्म हाथ में लगाने में मुलायम रहनी चाहिए। सुनार इसको भी सुहागे की सहायता से असली रूप में ले आते हैं।

ताम्र की भस्म

भस्म के लिए ताम्र शुद्ध लेना चाहिए। बाजार में बिजली के कार्य में आने वाली ताम्र की शुद्ध एवं पतली तार मिल जाती है। इसके अतिरिक्त सोने में मिलाने के लिये ताम्र के छोटे-छोटे टुकड़े भी पूर्ण शुद्ध मिल जाते हैं। इनको लेकर काम करना चाहिए। अथवा ताम्र के बारीक पत्र जिन पर हरा-लाल रंग लगा रहता है। इनका उपयोग मुसलमान अपने ताबूत बनाने में करते हैं। उनको अग्नि में गरम करके बरत सकते हैं। अग्नि में गरम करने से इनका रंग निकल आता है। ये हिलाने

---

१. एक किलो चाँदी का बुरादा और एक सेर शिंगरफ लेकर उर्ध्वपातन करने पर सामान्यतः ८ से १० छटाँक पारा निकलता है। पारे की मात्रा शिंगरफ़ की क्वालिटी और अग्नि पर निर्भर रहती है।

पर आवाज़ करते हैं। इनको लेकर बारीक कैंची से काट लेना चाहिए। तार बरती हो तो उसको भी जला लेना चाहिए! इससे यह टूटने लायक हो जाती है। यदि शोधन करने का आग्रह हो तो इसको अग्नि में गरम करके जिमीकन्द (सूरण जो कि जीभ को काटता है) के रस में अथवा गल गल या जम्बीरी निम्बू के रस में निर्वापित कर देना चाहिए।

शुद्ध ताम्र पर गन्धक और सैन्धा नमक (साधारण चालू सामुद्री नमक भी काम देता है) लगाकर निम्बू रस (जम्बीरी निम्बू—जो बहुत खट्टा होता है) से मर्दन कर के टिकिया बना कर पुट देना चाहिए। इसमें ताम्र की भस्म हो जाती है। इस प्रकार तीन पुट देने के पीछे, दो पुट जिमीकन्द, (सूरण) के रस से देनी चाहिए। ताम्र की भस्म काली या थोड़ी लाली लिये होती है। इस भस्म को दही के पानी में डालकर देखना चाहिए। यदि पानी में अगले दिन या कुछ घण्टों में अधिक नीला हरा रंग दिखाई दे, तो इसको जिमीकन्द एवं निम्बू के रस से दो-तीन पुट और दे देने चाहिए।

ताम्र की भस्म बिल्कुल कोमल लाली लिये काली होती है।

नाग और वंग की भस्में

नाग (सीसा) और वंग (टिन) ये दोनों शुद्ध मिलते हैं। सामान्यतया इनके शुद्ध करने की जरूरत नहीं होती। यदि शुद्ध करने का आग्रह ही हो तो एक बर्तन में छाछ या गोमूत्र लेकर, उस पर चक्की आदि का भारी पत्थर का बोझ रख दें, जिसमें छोटा छेद बना हो। अब नाग या वंग को पिघला कर इस छेद में से द्रव में गिरायें। ऐसा करने से इनका शोधन हो जाता है।

शुद्ध नाग या वंग को लेकर कड़ाही में रखकर चलाये। जब यह पिघल जाये, तब इसमें हल्दी का चूर्ण, अजवायन का चूर्ण, पीपल की छाल का चूर्ण, इमली की छाल, अपामार्ग-इनको थोड़ा-थोड़ा डालते हुए लोहे के डण्डे से बराबर रगड़ते जाना चाहिए। रगड़ने से, वंग और नाग की भूति बन जाती है। सब वंग और नाग समाप्त होने पर सारे द्रव्य को कड़ाही में इकट्ठा करके ऊपर से तवे या लोहे के भारी पात्र से ढाँपकर तीव्र अग्नि देनी चाहिए। जब ऊपर का पात्र लाल हो जाये, तब अग्नि बन्द करके ठण्डा होने दें।

वंग की इस भस्म को लेकर इसमें हल्दी के रस की भावना देकर या आँवले के क्वाथ या रस की भावना देकर पुट दें। पहले थोड़ी आँच दें; अन्यथा, वंग फिर पहली अवस्था में आ जायेगी। इस प्रकार तीन पुट दें।

सीसक को घीक्वार के रस की भावना देकर पुट दें। इस प्रकार से तीन-चार पुट देने पर वंग की भस्म श्वेत और सीसक की पीली भस्म (मुर्दासिंख की तरह की) बनती है।

वंग को यदि हरताल मिलाकर पुट दें तो भस्म काली बनती है। इसी प्रकार नाग में मैनसिल मिलाकर पुट देने से भी भस्म काली बनती है । चिकित्सा में सामान्यत: वंग की सफेद और नाग की पीली भस्म चलती है। ये सस्ती भी रहती हैं। कुछ वैद्य यवक्षार के योग से सीसक भस्म बनाते हैं।

भस्म बनाने में यह ध्यान रखना चाहिए कि वह पूर्णरूप से भस्म-भूति-राख हो जाये। उसमें धातु की चमक, स्वाद, तीक्ष्णता न मिले।

लोह भस्म विधि

प्राचीनकाल में लोहे के कई भेद थे। परन्तु आज कल लोहे का चूरा जो सामान्यत: भस्म कार्य में लिया जाता है, खराद किये हुए लोहे का होता है। इसमें तलवार जैसा उत्तम लोहा लेकर सामान्यत: सीखचे आदि का भी लोहा बरता जाता है। लोहे की उत्तमत्ता उसकी कठोरता (Hardness) पर न होकर उसकी दृढ़ता और लचक पर माननी चाहिये। आजकल धुरा आदि का लोहा बहुत कठोर गिना जाता है। यह कठोरता कोबल्ट, कार्बन आदि अन्य वस्तुओं के कारण आती है। प्राचीन काल में शायद यह पहिचान नहीं थी। उस समय की पहिचान वाला इस समय उपलब्ध नहीं।[1]

आयुर्वेद की भस्म के लिये कठोर लोहे की भस्म उत्तम नहीं होती। उसके लिये नर्म, लचकदार लोहे की चूरा जो रेती से रेत कर या खराद कर बनाया गया हो, अधिक उत्तम होता है। इस चूरे को पहले अग्नि में लाल गरम कर लेना चाहिए। ऐसा करने से तेल या अन्य वस्तु जो लगी हो नष्ट हो जाती है। इसके पीछे लोहे को अग्नि में लाल गरम करके त्रिफला के क्वाथ में, गोमूत्र में सात या दस बार निर्वापित करना चाहिए। अग्नि में लाल गरम करके, शीतल द्रव में निर्वापित करने से लोहा भंगुर बन जाता है। यह भंगुरता ही इसकी शुद्धि है।

---

१. आयुर्वेद के मत से उत्तम लोहा वह है जिसके बने पात्र में रखे हुए पानी के ऊपर तेल की बूँदें फैले नहीं; जिस पात्र में रखा हींग अपनी गन्ध छोड़ दे; जिस लोह पात्र में उबाला हुआ दूध भूमि पर न गिरे, वह उत्तम होता है। ऐसा लोहा आज उपलब्ध नहीं है।

शुद्ध लोहे का चूरा लेकर इसका चतुर्थांश हिंगुल मिला कर रगड़ना चाहिए। अच्छी प्रकार मिल जाने पर इसमें निम्बू का रस डालकर टिकिया बनाकर पुट देना चाहिए। लोहे को पहले तीव्र आँच देनी चाहिए। यदि लोहचूरा अब भी बारीक न हुआ हो तो इसमें फिर अष्टमांश हिंगुल मिला कर पहले की भाँति पुट देना चाहिए। बारीक होने पर हिंगुल मिलाना बन्द करके निम्बू के रससे रगड़ कर पुट देना चाहिए।[1]

कुछ फार्मेसी लोहचूर को गरम करके, लोहासव में डाल देती हैं। इसमें पड़ा लोहा कुछ मुलायम हो जाता है। इस चूरे को या ऊपर लिखे अनुसार शुद्ध किया चूरा लेकर गोमूत्र या त्रिफला क्वाथ से ही भावना देकर आठ-दस पुट भस्म तैयार करती हैं।

सामान्यतः पारे का लोहे पर कोई प्रभाव नहीं होता। पारा लोहे के साथ मिल कर संरस नहीं बनता। इसी से पारा लोहे की बोतलों में आता है। इस दृष्टि से लोह में हिंगुल या पारा मिलाना पसन्द नहीं किया जाता।

लोहे की हिंगुल से बनी भस्म लाली लिये काले रंग की होती है। यह मुलायम और बुरक कर पानी पर छोड़ने से तैरती है। त्रिफला या गोमूत्र के साथ बनी प्रायः काले रंग की धूसर रंग की होती है। लोहे की भस्म-मारण-चिकनी-मुलायम और बारीक होनी चाहिए। लौह भस्म को सदा एक से पाँच सेर की मात्रा में बनाना चाहिए। निर्माण शालाओं में इतनी मात्रा में बनाना लाभप्रद है। इसको मिट्टी के पात्र में (मर्तवान) या शीशे के पात्र में रखना चाहिए। लोहे या टीन के पात्र में नहीं रखना चाहिए।

मण्डूर भस्म

मण्डूर—एक प्रकार का लोहे का मैल है। इससे इसको किट्ट कहा गया है। आयुर्वेद के विचार से किट्ट या मण्डूर जितना ही पुराना हो, उतना ही अच्छा होता है। संभवतः इसकी श्रेष्ठता आयुर्वेद की दृष्टि से इसलिए मानी गयी है कि पुराना होने से यह स्वयं भस्म के समीप आ जाता है। सोना और चाँदी पुराने होने पर भी अपना रूप बनाये रखते हैं। उनमें किसी प्रकार का क्षय नहीं होता। ताम्र भी बहुत समय तक अपनी स्थिति बनाये रखता है। परन्तु बाद में इस पर असर होता है जिससे इसका रंग नीला हरा हो जाता है। लोहा पुराना होने पर जर्जर-चूरा बन जाता है। इसी से लोहे को गोमूत्र या कषायों में रखकर सूक्ष्म करने का विधान है।[2]

---

१. निम्बू से अभिप्राय—गलगल-जम्बीरी निम्बू से है; जो बहुत अधिक खट्टे होते हैं।
२. देखिये—'अयस्कृति'—'रसशास्त्र'—हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित।

पुराने मण्डूर को गरम करके गोमूत्र में निर्वापित करना चाहिए ।बाद में इस को कुटवाकर बारीक चूर्ण बना लेना चाहिए। इस चूर्ण को त्रिफला, गोमूत्र या घीक्वार के रस से घोटकर टिकिया बनाकर पुट देना चाहिए। इस प्रकार सात पुट देने पर मण्डूर की उत्तम भस्म बन जाती है। मण्डूर की भस्म लाली लिये मृदु-कोमल होती है। यह लोहे की अपेक्षा अधिक सुपाच्य होती है। इससे किसी प्रकार के विकार की आशंका नहीं रहती है।

यशद की भस्म

यशद की भस्म वंग औरं नाग विधि से ही है। बाजार में जस्ता शुद्ध मिलता है। इसको लोहे की कड़ाही में पिघला कर इसमें हल्दी या पीपल की, ईमली की सूखी छाल का चूर्ण अथवा अपामार्ग का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालकर घोटते जाना चाहिए। जब यह बारीक भूति बन जाये, तब सारे को इकट्ठा करके तेज आँच देनी चाहिए। बाद में इसको घीक्वार के रस से घोटकर मृदुप्रद देनी चाहिए। (तीव्र अग्नि मिलने से यह) फिर अपने वास्तविक रूप में लौट आती है।

जस्ते की भस्म हल्के पीले रंग की बनती है। जस्ता का पुष्प (यशद पुष्प) श्वेत बनता है। रसशास्त्र में इसका नाम पुष्पांजन दिया हुआ है। इसको फूत्कार से करके बनाते हैं। यह जयपुर, नजीबाबाद, मुरादाबाद आदि में बनता है। यह आँखों में लगाया जाता है।

कांसी आदि वर्त्तुल लोहे की (भरत) भस्म ताम्र की भाँति बनती है। पीतल की भस्म का व्यवहार आयुर्वेद में नहीं मिलता। परन्तु इनकी भस्म भी ताम्र की भाँति बनाई जा सकती है।

आवश्यक सूचना

भस्मों में निरुत्थ या अपुनर्भव ये शब्द केवल लोह, ताम्र, मण्डूर भस्म के लिए ही समझने चाहिए। सोना, चाँदी, नाग, वंग, यशद, आदि तीव्र अग्नि मिलने पर पुनः अपने पूर्ण रूप में परिवर्त्तित हो सकते हैं।

अभ्रक भस्म

आयुर्वेद की दृष्टि से काली, भारी जिसमें पत्थर न हों, जिसके पत्र सुगमता से अलग हो सकें, ऐसी अभ्रक पसन्द की गयी है। यूनानी हकीम श्वेत अभ्रक की भस्म प्रयोग में लाते हैं। अभ्रक की भस्म बनाने के लिए काली, भारी पत्थर रहित अभ्रक को

लेकर अग्नि में गरम करके, गोमूत्र, या त्रिफला क्वाथ में निर्वापित करना चाहिए। ऐसा करने से अभ्रक के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं।[1] इन टुकड़ों को इमामदस्ते में कूट कर बारीक बना लेना चाहिए।

इस बारीक चूर्ण को शोरा और गुड़ मिलाकर एक या दो पुट दे देने चाहिए। शोरा अभ्रक से चतुर्थांश तथा गुड़ अष्टमांश लेना चाहिए। इनको मिलाकर कसौदी के रस से खरल करके पुट देना चाहिए। पुट देते समय अग्नि तीव्र देने के लिए गज-पुट बरतना चाहिए। टिकड़ी पतली बनानी चाहिए जिससे अग्नि पूरी लग सके। अभ्रक की भस्म कम से कम एक सेर, ढाई सेर, पाँच सेर बनाने का यत्न करना चाहिए।[2]

गुड़ और शोरे के दो चार पुट देने से अभ्रक की चमक जाती रहती है। इसके बाद अभ्रक को कसौदी (कासमर्द) वटजटा, पान, मंजीठ आदि अभ्रक के मारक गण की ओषधियों से आठ या दस पुट देने चाहिए। अभ्रक को कुछ वैद्य बकरे के रक्त की भावना भी देते हैं। अभ्रक और लौह ये दो वस्तुएँ आयुर्वेद में ऐसी हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि अधिक पुट देने से ये अधिक गुणकारी बनती हैं। रसेन्दु-सार के अनुसार रोग चिकित्सा में दस पुट पर्याप्त हैं। रसायन या वाजीकरण के लिए अधिक पुट दिये जाते हैं। पुटों की संख्या बढ़ाने की अपेक्षा अधिक अच्छा हो कि इनका मर्दन अधिक किया जाये जिससे ये सूक्ष्म, मसृण और चिकनी हो जाये। इनकी कर्कशता और रुक्षता जाती रहे। इस लिए मर्दन अधिक समय करके दस पुट देने से काम चलता है।

आयुर्वेद के मत से भस्म में चमक नहीं रहनी चाहिए और भस्म के लिये श्वेत अभ्रक उत्तम नहीं। परन्तु यूनानी हकीम श्वेत अभ्रक की भी भस्म बनाते हैं। उनकी दृष्टि में काली और श्वेत अभ्रक में कोई अन्तर नहीं होता।

अभ्रक के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि इसमें लोहा, सिल्का पर्याप्त होता है। श्वेत अभ्रक में लोहा कम रहता है। लोहे के कारण ही अभ्रक को अधिक पुट दिये जाते हैं। इसलिए इसकी मात्रा अधिक ली जाती है।

---

१. ग्रन्थों में शोधन के लिये पाँच, सात आदि के रूप में संख्या का निर्देश जो मिलता है; वह केवल दिग्दर्शन रूप में ही है। इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि टुकड़े सूक्ष्म या सूक्ष्म चूर्ण होना चाहिए।

२. कुछ वैद्य शोरा और गुड़ न मिलाकर सीधा ही कसौदी या नागरमोथे के क्वाथ से पुट देते हैं।

अभ्रक भस्म का रंग सामान्यतः पके हुए घड़े के ठीकरे के बारीक चूरे के समान लाल होता है। रंग बहुत अधिक भावना द्रव्यों पर आश्रित है। बटजटा और मजीठ से गहरा लाल आता है। पान और कसौदी से हल्का लाल रहता है।

अभ्रक और लोहे के विषय में यह बात ध्यान देने योग्य है कि पुट की आवश्यकता वहीं तक रहती है, जहाँ तक ये वस्तुएँ मसृण-सूक्ष्म (मैदे की तरह) न हों। इसके बाद भावना द्रव्य के रस का ही महत्त्व है। जितना ही रस इसमें मिलेगा, उतना ही इसका गुण बढ़ेगा। इसी से कहा गया है कि मर्दन से गुण बढ़ता है और पुट से द्रव्य में सूक्ष्मता तथा बारीकी आती है। सूक्ष्मता आने के बाद पुट का महत्त्व नहीं। इसलिये निर्माणशालाओं में अभ्रक या लोह की भस्म बनानी हो और उन्हें योगों में मिलाना हों तो दस-बारह पुट की पर्याप्त है। पृथक् रूप में रसायन दृष्टि से सेवन करनी हो तो उनको पचास, सौ, हजार पुट देने चाहिए। इनमें २५० या ५०० पुटों के पीछे भावना द्रव्य के रस से रगड़कर धूप में सुखाकर भी यह काम हो सकता है।

प्रवाल, सीप, कौड़ी (कपर्दिका) एवं शंख भस्म

प्रवाल,सीप,कपर्दिका, शंख या अन्य इसी प्रकार के खटिक के समासों की भस्म एक ही प्रकार से बन जाती है। इनके चुनने में विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रवाल (मूँगे) की शाखाएँ पतली ठोस,भारी मुर्गे की कलँगी के समान लाल होनी चाहिए। छिद्रवाली, खोखली श्वेत शाखाएँ अच्छी नहीं होतीं। इसी प्रकार सीप भी कठोर, होनी चाहिए। कौड़ियों का एक परिमाण ग्रन्थों में लिखा है। सामान्यतः पीले रंग की, गाँठोंदार, मध्यम परिमाण की भार में एक तोले के लगभग की कौड़ी उत्तम है। इस सब का यही अभिप्राय है कि वस्तु में खटिक की मात्रा अधिक से अधिक रहे।

इनको लेकर अग्नि में गरम करके काँजी, निम्बू के रस या सिरके में अथवा तक्र में निर्वापित करना चाहिए। अथवा इन्हीं द्रवों में दोला यंत्र से स्वेदन देना चाहिए। गरम करके शीतल द्रव में निर्वापित करने से ये बहुत जल्दी चूरा हो जाते हैं। इसके बाद इनको घीक्वार या काँजी, निम्बू का रस—(गलगल का रस) से भावना देना चाहिए। भावना देने से श्वेत भस्म बनती है।

प्रवाल पिष्टी—बहुत-सी फार्मेसियाँ और वैद्य प्रवाल, मोती आदि की भस्म न बनाकर पिष्टी बनाते हैं। पिष्टी में वस्तु का सम्पूर्ण तत्त्व रह जाता है। जिन वस्तुओं के कारण प्रवाल में गुलाबी और लाल रंग रहता है, वे भी सुरक्षित रहती हैं। इसलिए इसकी पिष्टी भी बनायी जाती है।

पिष्टी बनाने के लिए प्रवाल को इमामदस्ते में कूटकर कपड़े से छान लेना चाहिए। इस छने हुए चूर्ण को न घिसने वाले खरल में डालकर बारीक कर लेना चाहिए। इसमें थोड़ा-थोड़ा गुलाब जल और अर्क वेदमुश्क मिलाकर खरल करते जाना चाहिए। जब तक यह चूर्ण अंजन-सुरमे के समान बारीक न हो जाये, इसे बारीक करते रहनी चाहिए। यह पिष्टी है। चन्द्रमा में रखने से इसे चन्द्रपुटी कह देते हैं। परन्तु इसमे कोई तथ्य नहीं। चन्द्रमा की किरणें प्रवाल पर पड़ने से कुछ नहीं होता। यह चन्द्रकान्त मणि नहीं।[1]

शंख भस्म—यह भी इसी प्रकार काँजी या खट्टी तक्र से बनती है। शंखनाभि लेने का शास्त्र में विधान है। परन्तु बाजार में शंखनाभि के स्थान पर गोल कटे हुए चक्कर से टुकड़े मिलते हैं। इन टुकड़ों को गरम करके काँजी, खट्टी छाछ में बुझाना चाहिए। इससे ये नरम होकर चूरा बन जाते हैं। कुछ बड़े रह जायें तो इमामदस्ते में कुटवा कर भस्म बनानी चाहिए।

आवश्यक सूचना—शंख भस्म में बहुत तीक्ष्णता होती है। जिह्वा पर रखने से जिस प्रकार चूना जीभ को काटता है, उसी प्रकार यह शंख भस्म भी काटती है। इसलिए बहुत से वैद्य इसको पानी से धोते हैं; जिससे इसकी तीक्ष्णता कम हो जाती है। परन्तु शंखबटी आदि में शंख भस्म का उपयोग इसी तीक्ष्णता के लिए ही है। जो शंख भस्म का उपयोग स्वतंत्र रूप में करते हैं, उनके लिये पानी में धोकर उपयोग में लाना सोचना चाहिए। ये सब वस्तुएँ चूने का ही समास हैं। एक प्रकार का उत्तम चूना है।

सिकता प्रधान द्रव्य

इसमें दुग्धपाषाण, जहरमोहरा, हज्रुल यहुद, संगे रेशम (एसबसट्रोज) वस्तुओं का समावेश है। चिकित्सा में इनका उपयोग होता है। विशेषकर पित्तदोष प्रधान रोगों में ।

---

१. नीलम, पन्ना, पुखराज, माणिक्य आदि रत्नों में जो रंग होता है; यह एल्युमीनियम के साथ मिले लोहा, कोवल्ट आदि धातुओं के कारण आता है। भस्म बनाने में इनका यह रंग बहुत कुछ निकल जाता है। इसलिए यूनानी हकीम इनकी पिष्टी ही पसन्द करते हैं; जो मेरी दृष्टि में अच्छी है। इनकी पिष्टी भी प्रवाल पिष्टी की भाँति ही बनती है। पिष्टी की उत्तमता, इसका सुरमा जैसा बारीक होने पर निर्भर करती है।

इनका सूक्ष्म चूर्ण करके ही प्रयोग होता है। चूने के समास होने से इनको सूक्ष्म चूर्ण करके रक्तस्राव, दाह, अतिसार, ज्वर की गरमी में बरतते हैं। इनको अर्क गुलाब, अर्क वेदमुश्क, अर्क केवड़ा के साथ रगड़कर बारीक सूक्ष्म चूर्ण किया जाता है। हज्रुल यहूद का प्रयोग प्राय: करके अश्मरी शूल में, अश्मरी को तोड़ने के लिए दिया जाता है। मात्रा ४ से ८ रत्ती।

मोर की पिच्छा (चंदोवा) की भस्म अन्तर्धूम विधि से करनी चाहिए इनको कड़ाही में रखकर ऊपर से ढाँककर नीचे से आँच देनी चाहिए। भस्म करते समय इनकी डण्डी की भी भस्म करनी चाहिये —उसे फेंकना नहीं चाहिए।

गोदन्ती भस्म

गोदन्ती के साथ हरताल नाम सम्भवत: इसलिए जुड़ गया है कि इसके पत्र भी हरताल की भाँति (अभ्रक की परतों की भाँति हरताल तवकी के पत्र होते हैं और उसी की भाँति यह गोदन्ती भी) होती है। वास्तव में इसका उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें संखिया जरा भी नहीं होती अपितु खटिक-चूना ही होता है।

इसको गरम जल से धोकर चूर्ण कर लेना चाहिए। फिर कुमारी स्वरस या निम्बू पत्र रस से मर्दन करके सुखाकर गजपुट देने से श्वेत रंग की भस्म बन जाती है।

काशीश भस्म

शुद्ध कासीस (सल्फेट ओफ आइरन) को ओषध में बरतना चाहिए। इसको भाँगरे के रस में या निम्बू के रस में मर्दन करके सुखाकर दस सेर उपलों में पुट देना चाहिए। इससे भस्म लाल रंग की होती है।

काशीश को वायु में खुला छोड़ देने से यह श्वेत वर्ण का हो जाता है। इसे पुष्प कासीस कहते हैं। इसका भार भी कम हो जाता है। इसे काम में नहीं लाना चाहिए।

पीतल और वर्त्तलोह का मारण

पीतल और वर्त्तलोह (कांसी) ये ताम्र के संयोग से बनते हैं। इनका शोधन और मारण ताम्र की भाँति ही किया जाता है। फिर भी अन्य विधि भी काम में आती है।

इनको अग्नि में गरम करके तैल, तक्र में निर्वापित करके, हल्दी मिले संभालू के स्वरस में पाँच बार निर्वापित करना चाहिए।

बाद में शुद्ध मैनसिल और गन्धक को निम्बू के रस में मर्दन करके पीतल के पत्तों पर या काँसे के पत्र पर लेप करने से गजपुट की आँच देने से भस्म हो जाती है।

कुछ लोग मैनसिल के स्थान पर हरताल बरतते हैं।

टंकण (सुहागा-चौकिया लेना उत्तम है) और **फिटकरी को आग पर फुला** लेने से शोधन हो जाता है।

कुक्कुडाण्डत्वक् की भस्म को पहले निम्बू के पानी या नमक में २–४ घन्टे भिगोकर व्रज चूर्ण करके पुट देने से या अग्नि पर ढाँक करके गरम करने से उत्तम भस्म बन जाती है। भस्म से अभिप्राय–मसृण चूर्ण से ही है।

रत्नों की भस्म या पिष्टी

रत्न-पन्ना, माणिक्य, पुखराज आदि में इनके रंग का विशेष महत्त्व है। आग में भस्म बनाने से इनका रंग निकल जाता है। इसलिए यूनानी लोग इनकी भस्म न कर के पिष्टी, बारीक चूर्ण बनाकर प्रयोग करते हैं।[1] अभिप्राय यही है कि उपयोग करने में शरीर में ये लय हो जायँ। इसलिए अर्क गुलाब, अर्क केवड़ा, चन्दनादि अर्क में से किसी में इसको अच्छे खरल में पीसते हैं। खरल ऐसा होना चाहिए, कि घिसे नहीं। इसके लिए संगे यशव, अकीक, समाक पत्थर का खरल बरतते हैं।

रत्नों का शोधन करने और भस्म बनाने के लिए उच्चश्रेणी का रत्न प्रायः बरतने की जरूरत नहीं होती। इसके लिए इनकी रबड़ अथवा रत्न को तराशते-काटते समय जो पास के टुकड़े सूक्ष्म कण गिरते हैं, उनको लेना चाहिए। इनको सामान्य भाषा में परत कहते हैं। इन्हें लेकर अग्नि में लाल वर्ण करके ऊपर लिखित रस-द्रव में भिगोकर हावनदस्ते में कूट लेना चाहिए। कूटकर भस्म बनानी चाहिए।

यदि पिष्टी बनानी हो तो बिना अग्नि संयोग किये ही कूटकर खरल में डाल कर अर्क से मर्दन करके बारीक चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को रेशम या नायलोन के महीन वस्त्र से छानना चाहिए।

इस विधि से प्रवाल, कहरुवा; अकीक, संगे यशव, लाजवर्द, स्फटिक, आदि पत्थरों की पिष्टी बन जाती है।[2]

---

१. विस्तार के हिन्दी साहित्य-सम्मेलन से प्रकाशित—'रसशास्त्र' देखें।

२. अत्रिपुत्र ने कुलत्थी के लिए कहा है—"अश्मनोः यदेनः परम्:" पत्थरों को तोड़ने में उत्कृष्ट है। आज भी पत्थर काटने में कुलत्थी के काढ़े का उपयोग होता है। इसलिए रत्नों का भस्म बनाने के लिए कुलत्थी का क्वाथ बरतना उत्तम है।

भस्म बनाने के लिए माणिक्य, नीलम, पुखराज, गोमेद, वैडूर्य (लहसुनिया) मरकत–(पन्ना), इनको गरम करके, आँवले के रस में, या निम्बू (गलगल के रस में कांजी में निर्वापित करें। इस प्रकार २१ बार करने से भंगुर हो जाते हैं। इनको हावनदस्ते में कूटकर इनमें मैनसिल,गन्धक, हरताल इनका सूक्ष्म चूर्ण (रत्न के बराबर-बराबर) मिलाकर, वड़हल (लकुच) के रस से पीसकर अथवा गलगल के रस में पीसकर (जम्बीरी निम्बू के रस से) टिकिया बनाकर पुट देंवे। इस प्रकार ५–६ पुट देने से भस्म बन जाती है।

हीरे की भस्म—हीरे की भस्म बनाने के लिए हीरे के परत लेकर इनको कुठाली में लाल गरम करके पारद में ५१ बार और कुलत्थी के काढ़े में ५१ बार बुझायें। ऐसा करने से ये भंगुर हो जायेंगे। इनको हवानदस्ते में कूट लें।

फिर इस चूर्ण के बराबर रससिन्दूर(अथवा हिंगुल)शुद्ध मैनसिल; हरताल गन्धक के साथ तीन दिन कुलत्थी के क्वाथ में मर्दन करके गोला बनाकर सुखाकर पुट दें। १४ या २१ बार पुट देने चाहिए। हीरे की भस्म या रत्नों की भस्म में मसृणता; मुलायमपन आना चाहिए। इसको सुरमे के समान होना आवश्यक है। यही इनकी भस्म या पिष्टी की परीक्षा है।

वैक्रान्त–की भस्म—वैक्रान्त से सामान्यतः तुरमुली (स्फटिक) ली जाती है। इसे गरम करके कुलत्थी के क्वाथ में निर्वापित करें। बाद में चूर्ण करके कुलत्थी के क्वाथ या निंबू के रस में मर्दन करके आठ पुट दें। मर्दन करते समय इसके बराबर गन्धक मिला लें।

मुक्ता भस्म और मुक्ता पिष्टी

बाजार में मुक्ता के रूप में बहुत वस्तुओं का उपयोग होता है; अनविंधे बसरई मोती से लेकर, चावला तथा अन्य बेडौल मोती एवं मोती के टुकड़े-चूरे का उपयोग होता है। मोती को बींधते समय जो मोती टूट जाते हैं। उनका भी उपयोग ओषध में होता है। इसीसे दामों में अन्तर आता है। इस अन्तर का कारण मुक्ता भस्म से बनने वाली ओषधियों में भी होता है।

उत्तम श्रेणी की मुक्ता भस्म के लिए अनविंधे बसरई मोती–जो एक आकार-रूप के हों उनका उपयोग करना चाहिए। मध्यम श्रेणी मुक्ता भस्म के रूप में मोती को बींधते समय टूटे हुए टुकड़ों का या बेडौल ठोस मोती का उपयोग और तृतीय श्रेणी के रूप में भारी बेडौल , चावला, या मुक्ताशुक्ति के आकार के मोती बरते जा सकते हैं।

मुक्ता भस्म या पिष्टी प्रवाल भस्म या पिष्टी के समान ही बनती है। इसको काँजी या तक्र के साथ भस्म बना सकते हैं। पिष्टी के लिए गुलाब जल और अर्क वेदमुश्क काम में लाना चाहिए।

शृंग भस्म

मृग का शृंग भस्म के लिए चुना जाता है। इसी से बहुत सी फार्मेसियाँ बारह सिंगे का सींग भी भस्म के लिए पसन्द करती हैं। सींग काटने पर ठोस (अन्दर से सच्छिद्र या खोखला नहीं होना चाहिए।

सींग को आरी से छोटे-छोटे टुकड़े करके एरण्ड या तिल का तेल डालकर आग लगा देनी चाहिए। (मिट्टी का तेल डालकर आग लगाने पर बदबू आती है) अथवा उपले जलाकर उसमें ये टुकड़े रख देने चाहिए। जब टुकड़े जल जायें, (जलने पर ये श्वेत या कुछ कालिमा लिये, हाथ से टूटने वाले हो जाते हैं) तब इनको निकाल लेना चाहिए। इनमें जो हिस्सा जलकर एकदम श्वेत, नरम, चूरा हो गया हो, उसे अलग कर लेना चाहिए। शेष को घीक्वार से रगड़कर अग्नि में शराब सम्पुट से पुट देना चाहिए। इस प्रकार अग्नि देने पर श्वेत भस्म बन जाती है।

कुछ फार्मेसी शृंग की काली भस्म भी बेचती हैं। यह भस्म पूरी न जलने पर काली रहती है। वास्तव में लकड़ी की भस्म ठीक प्रकार से पूरी तरह जलने पर भूति-श्वेतिमा लिए राख बनती है। साधु अपने शरीर पर जिस राख या भूति को लगाते हैं, वह श्वेतिमा लकड़ी के जलने की होती है। अधिक जलाने से श्वेतिमा आती है।

स्वर्णमाक्षिक एवं विमल की भस्म

स्वर्णमाक्षिक में ताम्र का अंश अधिक रहता है। विमल में लोह का अंश रहता है। इनकी भस्म प्रायः एक ही प्रकार से बनती है। परन्तु स्वर्णमाक्षिक भस्म को पीछे से सूरण के रस के या सूरण में रखकर पुट देना उत्तम है। इससे इसका वमनकारक दोष कम हो जाता है।

भस्म बनाने के लिए इनको कूटकर कड़ाही में डाल देना चाहिए। इससे आधा सैन्धव नमक या समुद्री नमक डालकर लोहे के कौंचे से रगड़ते जाना चाहिए। इसमें गलगल का रस मिलाते जाना चाहिए। जब सारा चूर्ण सूक्ष्म एवं लाल वर्ण हो जाये तब कड़ाही में से निकाल लेना चाहिए। विमल की यह भस्म योगों में काम आ जाती है। परन्तु स्वर्णमाक्षिक की भस्म को जम्बीरी निम्बू के रस या सूरण के रस से आठ-दस पुट देने ही चाहिए। इस प्रकार देने से भस्म निरापद बनती है।

रौप्यमाक्षिक, कांस्यमाक्षिक आदि वस्तुओं की भस्म भी इसी प्रकार बनती है। ये सब ताम्र और लोह के गन्धक के साथ बने समास हैं।

वैक्रान्त भस्म

वैक्रान्त के नाम से तुरमुली ली जाती है। यह एक प्रकार का कठोर पत्थर है। इसका शोधन और मारण हीरे की भाँति किया जाता है। हीरे के स्थान पर योगों में बरती भी जाती है। इसका शोधन करने के लिए इसे गरम करके कुलत्थी के क्वाथ में बुझाना चाहिए। इस प्रकार सात बार करना चाहिए। शोधन का जो अर्थ है—अर्थात् भंगुर बन जाती है।

भस्म बनाने के लिए इसको लेकर इमामदस्ते में कुटवाकर बारीक कर लेना चाहिए। फिर इसको सैन्धव, हींग मिले कुलत्थी के क्वाथ से ईक्कीस पुट देने चाहिए। पुटों के देने में इसका घर्षण-मर्दन अच्छी प्रकार से करना चाहिए।

ऐसा करने से इसकी भस्म धूसर रंग की बनती है।

शोधन द्रव्य

आयुर्वेद में बहुत से द्रव्य शुद्ध करके उपयोग में लाये जाते हैं। इनमें कुछ द्रव्यों में (यथा—शिलाजीत) में पत्थर में मिट्टी मिली रहती है। कुछ द्रव्यों का शोधन उनकी उग्रता या तेजस्विता कम करने के लिए होता है। जिससे वे सहन हो सकें (यथा—भिलावा, जयपाल); कुछ द्रव्य मृदु बनाने के लिए शोधन किये जाते हैं (यथा—कुचला, मीठा तेलिया), कुछ द्रव्यों को पीसकर बारीक बनाने के लिए शोधन करते हैं (यथा—संखिया, हरताल, मैनसिल); कुछ द्रव्यों का शोधन उनकी उग्र गन्ध कम करने के लिए किया जाता है (यथा—हींग और लशुन); इस प्रकार शोधन का उद्देश्य भिन्न-भिन्न है। शोधन से शुद्धि ही अर्थ है। यह शुद्धि भिन्न-भिन्न अर्थों में है। सब द्रव्यों में मलिनता नहीं होती। हरताल में जो पत्थर का अंश है, वह चूर्णोदक में दोला यंत्र से उबालने पर नहीं निलकता। इसलिए इसी दृष्टि से इन द्रव्यों का शोधन मिलता है।

हरिताल, मैनसिल, संखिया का शोधन

ये वस्तुएँ संखिये का समास या शुद्ध संखिया है, जो पानी या द्रव में न घुलने वाला है। इसलिए इनका शोधन दोला यंत्र में हो जाता है। दोला यंत्र में चूने का पानी, पेठा (कूष्माण्ड) का रस या गोदूध बरता जाता है। दोला यंत्र में शोधन

न करना हो तो हरताल और मन:शिला को आर्द्रक रस या जम्बीरी निम्बू के रस से मर्दन करके काम में ला सकते हैं। मर्दन में ये बारीक हो जानी चाहिए। संखिया को भी इसी प्रकार से शुद्ध करना चाहिए।

मैनसिल और हरताल इस प्रकार की लेनी चाहिए कि इसमें पत्थर का अंश न हो; (**सुखनिर्मोच पत्रं च**—जिसके पत्ते सुगमता, अभ्रक के समान जल्दी से अलग किये जा सकें); ऐसी लेनी में सुगमता रहती है।

खर्पर शोधन

खपरिया का निर्णय अभी तक नहीं हुआ। कुछ वैद्य इसके स्थान पर यशद भस्म का व्यवहार करते हैं। दूसरे संगविसरी को बरतते हैं। बाजार में देहरादून के गन्धक के चश्मे में मिलने वाले पत्थर भी बेचे जा रहे हैं। कुछ लोग कैलेमिना प्रीपेरेटा का उपयोग करते हैं। इसलिए इस विषय में एक मत नहीं। यही ठीक है, यशद भस्म का उपयोग अभी किया जाये। यदि शोधन ही करना हो तो इसमें से पत्थर का भाग पूर्णत: निकाल देना चाहिए।

अफीम का शोधन

आजकल गाजीपुर से दवाइयों के लिए शुद्ध अफीम मिलती है। उसको गाय का दूध गरम करके (जब उसमें मलाई आने लगे); उससे तीन, चार भावना देनी चाहिए। दूध की भावना देने से इसकी रूक्षता-शुष्कता; (जिसके कारण यह मल-बन्ध करती है) कम हो जाती है। यही इसका शोधन का अभिप्राय है। प्राचीनकाल में जब अफीम की नील की तरह खेती होती थी, इसका रस इकट्ठा करके चार गुणे दूध में पकाकर काम में लाते थे। ऐसा इसकी रुक्षता कम करने के लिए किया जाता था।

कुचले का शोधन—कुचले का बीज विष है, फल विष नहीं है। इसको कौए खाते हैं। बीज से विष का अधिक अंश इसके अन्दर की जिह्वा में (जयपाल के बीजों की तरह) रहता है। इसको निकालना होता है।

कुचला का बीज बहुत कठोर होता है। इसलिये इसको पहले गोमूत्र में दस बारह दिन भिगोकर रखना चाहिए। इसके बाद इसको पेषण यंत्र में (डिसैन्ट्री ग्रेटर या ग्राइण्डर) डालकर या चट्टू में कुटवा कर मोटे-मोटे टुकड़े कर लेने चाहिए। टुकड़े होने से जीभ अलग निकल जाती है। अब इन टुकड़ों को घी में भुनवाकर तुरन्त कुटवा लेना चाहिए। यदि फिर भी सख्त रहें तो थोड़े से घी में भूनकर फिर कुटवा कर बारीक चूर्ण कर लेना चाहिए।

घी में कुचला, हींग आदि उतनी देर तक भूननी चाहिए, जब तक इनका रंग भूरा मटमैला न हो जाये।

हींग का शोधन—हींग का शोधन इसको घी में भूनने से हो जाता है। भूनने पर इसका रंग लाल भूरा होना चाहिए। ओषधियाँ सदा श्वेत हींग निर्यास ही बरतनी चाहिए। इसी में उग्र गंध होती है; इसी को कम करने के लिए घी में इसको भूना जाता है। यह गन्ध इसमें रहने वाले उड़नशील तैल के कारण होती है। लाल हींग या दूसरी बनावटी हींग का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

अच्छी हींग मद्य (स्प्रिट) में तुरन्त घुलकर दूधिया रंग बनाती है; दिये की लौ या कपूर की तरह जलती है। पानी में घुलकर तुरन्त दूधिया रंग देती है।

भिलावे का शोधन—अत्रिपुत्र ने इनकी अग्नि से उपमा दी है। इनके बीजों को लेकर पानी में डाल देना चाहिए। इनमें जो बीज डूब जायें उनको लेकर टुकड़े करना चाहिए। टुकड़े करते समय हाथों पर नारियल का तेल लगाना चाहिए। इमामदस्ते में ईंटों का चूरा थोड़ा डाल लेना चाहिए। जिससे तेल छिटक कर ऊपर न आये। टुकड़े मोटे-मोटे (दो या चार) करने चाहिए। अब इनको गरम पानी से धो लेना चाहिए। इससे इन पर लगा तेल धुल जायेगा। अब इन टुकड़ों को न लेकर, चूने के पानी में या सोडे के पानी में उबाल लेना चाहिए। ऐसा करने से इनके तेल की मात्रा बहुत कम हो जाती है। जो बचती है, वह ऐसी होती है कि सह्य हो सके।

जयपाल का शोधन—जयपाल में तेल की उग्रता ही इसके शोधन का कारण है। इसके लिए इनके ऊपर का छिलका उतार कर इनको दो टुकड़े बीच से कर लेने चाहिए। और फिर इनके बीच की जिह्वा निकाल देनी चाहिए। इसमें परिश्रम और खर्च बहुत है।

इसके लिए इनको सिल पर या खरल में निम्बू या जम्बीरी निम्बू के रस से अच्छी प्रकार पीसकर स्याही चूस या कोरी हाँडियों की पेंदी (तले पर) लेप कर देना चाहिए। ऐसा करने से इनका बहुत-सा तेल का अंश स्याहीचूस या हाँडिया चूस लेती हैं। इनको अब काम में ला सकते हैं।

लशुन का शोधन—रसोन पिण्ड आदि के लिये लहसुन का शोधन करना होता है। यह शुद्धि इसकी उग्र गन्ध कम करने के लिए है। इसके लिए लहसुन की कलियाँ निकाल कर इनको बोरी या खुरदरे वस्त्र पर डालकर रगड़ना चाहिए जिससे ऊपर का छिलका (पतला सा) उतर जाये। बाद में इन कलियों को छाछ-सिरके में डालकर पाँच-सात दिन रख देना चाहिए। इसके बाद इनको गरम पानी से धोकर काम में लाना चाहिए।

कृष्णी सर्प विष का शोधन—सर्प विष के शोधन का यही अभिप्राय है कि इसकी उग्रता-तीक्ष्णता कम हो जाय। इसके लिए सरसों के शुद्ध तेल की दो-चार-पाँच बूँद मिला देते हैं। सरसों का तेल मिला रहने से रखा हुआ यह विष शुष्क नहीं होने पाता। अन्यथा इसका द्रवांश शुष्क होने से विष भी नष्ट हो जाता है। इसकी रक्षा के लिये इसमें सरसों का तेल मिलाते हैं। यही इसका शोधन है।

गेरू का शोधन—गेरू पर्वत से निकलता है। इसमें पत्थर मिला रहता है। परन्तु बिना पत्थर का साफ़ कोमल गेरू भी मिलता है। जिस प्रकार खान में निकले सैन्धा नमक में कोई टुकड़ा स्वच्छ, निर्मल,कोमल रहता है, और किसी में, जो खान की दीवार के साथ लगा होता है; पत्थर भी मिला रहता है उसी प्रकार गेरू भी होता है। इसलिए साफ गेरू लेना चाहिए जिसमें पत्थर न हो।

इस गेरू को पीसकर थोड़े से घी में कड़ाही में भून लेना चाहिए। घी अधिक नहीं बरतना चाहिए, इतना घी डालें कि जिससे रूक्षता कम होकर इसमें मसृणता आ जाये।[1]

शिलाजीत शोधन—शिलाजीत अब बद्रीनाथ-गढ़वाल से आता है। पहले यह रावलपिण्डी के ऊपर पेशावर की तरफ़ से आता था। शिलाजीत में कंकड़, पत्थर मिट्टी के साथ में 'बाँझ' वृक्ष की गोंद या इसका कोयला या राख भी मिली रहती है। बांझ का कोयला या लकड़ी भारी होती है। इसी से भार बढ़ने के लिए इसका मेल किया जाता है। इन वस्तुओं को शिलाजीत से पृथक् करना होता है। इसमें जो वस्तुएँ पानी में घुल नहीं सकती हैं, वे छानने से अलग हो सकती हैं या पानी को नितार कर अलग की जा सकती हैं; जैसे पत्थर या कंकड़। जो वस्तुएँ पानी में घुली रहती हैं, उनको पकाकर और ठण्डा करके, ऊपर से मलाई के रूप में जमी वस्तु को अलग लेकर निकाल सकते हैं। मलाई के रूप में मिली शिलाजीत ही शुद्ध शिलाजीत होती है।

मलाई जमाने के लिए कोई लोग केवल सूर्य की गरमी का व्यवहार करते हैं। परन्तु निर्माणशालाओं के लिए अग्नि पर गरम करके, उबाल के, ठण्डा करना ही उत्तम है।।

शिलाजीत के टुकड़े करके इसको गोमूत्र; त्रिफला क्वाथ में अच्छी प्रकार घोल देना चाहिए। पानी पर्याप्त लेना चाहिए जिससे मैल, पत्थर-मिट्टी अच्छी प्रकार नीचे बैठ सकें। प्रातः इस द्रवांश को नितार कर फिर अग्नि पर उबालना चाहिए।

---

१. **गेरू को जम्बीरी निम्बू के रस में रगड़ कर भी शुद्ध करते हैं।**

इसको पुनः ठण्डा होने देना चाहिए। इस पानी को फिर अलग नितार लेना चाहिए। अब इसको गरम करके, ठण्डा करना चाहिए। ठण्डा होने पर जो मलाई आये उसे पौने से (जिससे हलवाई दूध से मलाई अलग करते हैं, जिसमें छेद होते हैं) अलग कर लेनी चाहिए। यह शुद्ध शिलाजीत है। शुद्ध इसलिए है कि इसमें अपद्रव्य, ईंट; पत्थर, मिट्टी आदि नहीं है।

गुग्गुलु शोधन—गूलुल वृक्ष का गोंद है। इसमें प्रायः ईंट, पत्थर, मिट्टी मिली रहती है। शुद्ध-साफ गूगुल साफ, विरौजे के समान होता है। शोधन में यही मिट्टी पत्थर अलग करने होते हैं। इसके लिए गूगुल के टुकड़े करके उबलते गरम पानी में भली प्रकार घोल देना चाहिए। फिर इसको रात भर स्थिर पड़ा रहने देना चाहिए। पानी की मात्रा पर्याप्त लेनी चाहिए। अगले दिन इस पानी को पका कर गाढ़ा-शुष्क कर लेना चाहिये। यह गूगुल शुद्ध है; इसको काम में लेना चाहिए।

मीठा तेलिया (विष) का शोधन—इसका आकार सींग के समान होने से इसका शोधन होता है। यह एक प्रकार का कन्द-मूल विष है। इसके शोधन का अभिप्राय यही है कि इसकी तीक्ष्णता कम हो जाये।[1] इसके लिए इसके मोटे-मोटे टुकड़े कर के गोमूत्र में ५–७ दिन भीगा रखते हैं। गोमूत्र को कुछ लोग प्रतिदिन बदलते हैं परन्तु यदि गोमूत्र अधिक मात्रा में पहली बार डाल दिया जाये, तो प्रतिदिन बदलने का प्रश्न नहीं रहता।[1]

धत्तूरा और भांग के बीज—इनका शोधन दोला यंत्र से गाय के दूध में होता है।[2] भांग की पत्ती का शोधन करने के लिये; इसको घी में भून लेना चाहिए।

---

१. मीठातेलिय (Aconite)—हृदय की गति को मन्द करता है। यह अवसादक है। गोमूत्र में शुद्ध करने पर इसका यह दोष कम हो जाता है। आयुर्वेद के ज्वर के प्रायः सब योगों में इसका उपयोग है। साथ ही रससिन्दूर, हिंगुल, या कज्जली का भी मिश्रण देखते हैं। बिना इनके विष का उपयोग बहुत कम होता है।

२. दोला यंत्र से शोधन करके दूध के साथ मर्दन करके भी शुद्ध कर लेते हैं। भांग की पत्तियों को पीस कर पानी में इतना धोना चाहिए कि इनमें से हरा रंग निकलना बन्द हो जाये।

द्वितीय भाग

[क्रियात्मक पक्ष]

प्रचलित क्वाथ

निर्माणशाला में दो प्रकार के क्वाथ बनते हैं—शुष्क और प्रवाही। शुष्क क्वाथों में वस्तुओं-द्रव्यों को साफ करके मोटा दरकच (चने के बराबर) रक्खा जाता है। प्रवाही क्वाथों में इसी क्वाथ को चार गुणे पानी में क्वाथ करके चतुर्थांश और भी थोड़ा करके (छठा भाग) छान लेते हैं। फिर इसको शीशी में भरकर उस पर शुद्ध अवलकोहल की तीन-चार बूँद डालकर कार्क लगाकर, सील बन्द कर देते हैं—जिससे वायु न जाये। उपयोग करते समय इसमें से निश्चित मात्रा पानी के बिना या थोड़ा पानी मिला कर ले सकते हैं। इसमें पुनः उबालने का प्रश्न नहीं। ऑफिस आदि में कार्य करते हुए भी इनका व्यवहार सुगमता से हो सकता है।

शुष्क क्वाथ का भी प्रातः क्वाथ तैयार करके सायंकाल या मध्य में भी बरता जा सकता है। इसको प्रातः एक बार इतनी मात्रा में बना लें कि उस दिन में दो या तीन बार उपयोग में आ सके। सायंकाल तक यह बरता जा सकता है।

तीव्र ओषधियों के क्वाथ (यथा—विरेचक क्वाथ) जब प्रातः सायं दो बार लेने होते हैं, उस समय यूनानी हकीमों की विधि उत्तम है। उनके अनुसार प्रातःकाल में किये हुए क्वाथ का ही फोक (छानने से बचा द्रव्य) सायंकाल पानी में पुनः क्वाथ करके दे देना उत्तम है। इसमें मन्द वीर्य गुण करता है, जिससे रात्रि में बेचैनी आदि नहीं होती। तीक्ष्ण या तीव्र वीर्य वाली ओषधियों का क्वाथ (हरड़, अमलतास आदि) प्रातः देना चाहिए और सौंफ़, मुनक्का आदि का सायंकाल।

अभयादि क्वाथ—(ज्वर में—शां० ध:)—हरड़, मोथा, धनिया, लाल चन्दन, पद्माख; अडूसा; इन्द्र जौ, खस, गिलोय; अमलतास का गूदा, पाठा, सोंठ, कुटकी, पिप्पली—इनको समान मात्रा में लेकर क्वाथ बनायें।[1]

---

१. इस क्वाथ में पाठा—अनिर्णीत है। उसे छोड़ सकते हैं। उसके स्थान पर अमलतास की मात्रा दुगनी कर देना चाहिए। पिप्पली का चूर्ण मिलाने का उल्लेख है। उसके स्थान पर पिप्पली को मिलाकर क्वाथ करना चाहिए। इससे प्रयोग में सरलता रहती है।

अभयादि क्वाथ—(शोथ–च० द०)—हरड़, देवदारु, मुलैहठी, कुटकी, दन्तीमूल, पिप्पली, परवल के पत्ते, चन्दन लाल; दारुहल्दी; त्रायमाण, इन्द्रवारुणी इनका क्वाथ करें।[1]

अमृतादि क्वाथ—(मसूरिका–भै० र०)—गिलोय, अडूसा छाल; परवल के पत्ते, मोथा, सतवन की छाल, खैर की छाल; बेंत के पत्ते, नीम के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी–इनका क्वाथ करें।[2]

अमृताष्टक (ज्वर—आ० शि०)—गिलोय, इन्द्र जौ, नीम की छाल, परवल के पत्ते, कुटकी; सोंठ, लाल चन्दन, मोथा, पिप्पली इनका क्वाथ करें।[3]

आरग्वधादिक्वाथ—(ज्वर–शा० ध० भै० र०) अमलतास का गूदा, पिप्पलीमूल; मोथा, कुटकी, हरड़ इनका क्वाथ करें।[4]

गुडूच्यादि क्वाथ—(ज्वर–शा० ध० भै० र०)—गिलोय, नीम की अन्तः छाल, धनिया, पद्माख, लाल चन्दन इनका क्वाथ करें।

सूचना—गुडूच्यादि क्वाथ के नाम से भाव प्रकाश में तथा शार्ङ्गधर, भैषज्य रत्नावली में और भी कई पाठ हैं। इनमें खस, सोंठ, सारिवा, द्राक्षा, सौंफ, पुनर्नवा आदि औषधियों का मिश्रण है। ये वैकल्पिक द्रव्य समझने चाहिए। रोगी की अवस्थानुसार इनको इसमें सम्मिलित कर सकते हैं।

त्रिफला क्वाथ—(प्रमेह-शार्ङ्गधर)—त्रिफला (आँवला-बहेड़ा, हरड़), दारुहल्दी, मोथा, देवदारु इनका क्वाथ मधु डालकर प्रमेह में दें।

त्रिफला क्वाथ—(वृषण शोथ–भै० र०) त्रिफला का क्वाथ गोमूत्र में करें। इससे अण्डशोथ में लाभ होता है।[5]

---

१. इस क्वाथ में त्रायमाण–सन्दिग्ध है। इसके स्थान पर कुटकी की मात्रा दुगनी करनी चाहिए। इन्द्रायण की जड़ या इन्द्रायण का फल लेना चाहिए। इन्द्रायण का फल लेना उत्तम है।

२. बेंत के पत्तों के स्थान पर नीम के पत्ते दुगने करने चाहिए। अथवा नीम की अन्तः-छाल मिलायें।

३. इसमें भी पिप्पली चूर्ण मिलाने का उल्लेख है। उसके स्थान पर पिप्पली को आधी मात्रा में मिलाकर क्वाथ बना लें।

४. इसको आरोग्य पंचक भी कहते हैं।

५. इसमें एरण्ड तैल एक से दो तोला मिलाना चाहिए।

दशमूल क्वाथ—(ज्वर–शां०ध०)—शालिपर्णी, पृश्नपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू; विल्व की छाल; अरणी की छाल, श्योनाक (टेंटू) की छाल; गम्भारी की छाल, पाड़ल की छाल इनका क्वाथ करें।[1]

दशमूल क्वाथ—(राजयक्ष्मा–भै० र०)—दशमूल, वला, रास्ना, पुष्कर-मूल, देवदारु, सोंठ इनका क्वाथ दें।

दशमूल–(सूतिका–भै० र०)—शालिपर्णी, पृश्नपर्णी; वड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, नील झिन्टी; प्रसारणी, सोंठ, गिलोय, मोथा–इनका क्वाथ सूतिका को दें।[2]

दार्व्यादि क्वाथ—(प्रदर–भै० र०)—दारुहल्दी, रसौत, अडूसा छाल, मोथा, चिरायता, विल्वगिरी और लाल चन्दन; इनका कषाय करके मधु मिलाकर दें।

द्राक्षादि क्वाथ–(ज्वर–भै० र०)—द्राक्षा (मवेज); बड़ी हरड़, पित्त-पापड़ा; मोथा, कुटकी, इनके क्वाथ में अमलतास का गूदा मिलाकर दें।

देवदार्वादि क्वाथ–(सूतिका–भै० र०)—देवदारु, वच, कूठ, पिप्पली, सोंठ; चिरायता; कायफल, मोथा, कुटकी, धनिया, हरड़, गजपिप्पली, गोखरू, धमासा, बड़ी कटेरी, अतीस; गिलोय, कावड़ा शृंगी; काला जीरा और दुःस्पर्शा (छोटी कटेरी) इनका क्वाथ करके इसमें, हींग और सैन्धव नमक दो-दो रत्ती मिलाकर दें।

पटोलादि क्वाथ—(वातरक्त—शा० ध०)—परवल, त्रिफला, कुटकी, गिलोय, शतावर, इनका क्वाथ करें।

पटोलादि क्वाथ (उपदंश शा०—ध०)—पटोल, त्रिफला; नीम, चिरायता, खैर और असन की छाल का क्वाथ करके इसमें गुग्गुलु का प्रक्षेप देकर देना चाहिए या गुग्गुलु मिलाकर क्वाथ बनायें।

पथ्यादि क्वाथ–(अतिसार– भै० र०)—हरड़, चित्रक, कुटकी, पाठा, वच, मोथा, कुटज छाल; और सोंठ इनका क्वाथ करें।

---

१. वात कफ ज्वर में इसमें पिप्पली का चूर्ण मिलाये। गृध्रसी रोग में हींग और पुष्कर मूल का चूर्ण मिला कर दें। हृदय रोग में यवक्षार और सैन्धव को मिला कर देना चाहिए। गुल्म और शूल में भी हींग और सैन्धव मिला कर दें।

२. प्रसव के बाद दशमूल का क्वाथ देने की आम प्रथा है। इस क्वाथ में मृदुता रहती है। यह वायु और ज्वर दोनों को शान्त करता है।

सूचना—इसमें देवदारु और अतीस मिलाने से तथा गिलोय मिलाने से वातातिसार एवं आमातिसार में भी उपयोगी है।

पथ्यादि क्वाथ (शोथ–भै० र०)—हरड़, हल्दी, भारंगी, गिलोय, चित्रक, दारुहल्दी, पुनर्नवा, देवदारु; सोंठ, इनका क्वाथ करें।

पंचतिक्ता कषाय–(ज्वर–अ० हृ०)—चिरायता, कुटकी, मोथा, पित्त-पापड़ा, गिलोय इनका क्वाथ बनायें।

पुनर्नवादि कषाय–(शोथ–शा० सं०)—पुनर्नवा, दारुहल्दी, सोंठ, हरड़, गिलोय, चित्रक, भार्गी, देवदारु इनका क्वाथ करें।[1]

पुनर्नवाष्टक क्वाथ–(शोथ-पाण्डु–शा० सं०)—पुनर्नवा, हरड़, नीम, दारुहल्दी, कुटकी, परवल पत्र, गिलोय और सोंठ इनका क्वाथ गोमूत्र मिलाकर दें।[2]

फलात्रिकादि क्वाथ–(पाण्डु—भै० र०)—त्रिफला, गिलोय, वासा, कुटकी, चिरायता, नीम की छाल, इनका क्वाथ करें।

मंजिष्टादि क्वाथ (लघु) (रक्तशोधन–शा० सं०)—मजीठ; त्रिफला कुटकी, वच, दारुहल्दी, गिलोय, और नीम इनका क्वाथ करें।

मंजिष्टादि क्वाथ (वृहत्) (कुष्ठ–शा० सं०)—मजीठ, मोथा, कुटज, गिलोय, कूठ, सोंठ, भार्गी, कट्टेरी, वच, नीम की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, परवल पत्र; कुटकी मूर्वा, विडंग, विजयसार, चित्रक, शतावरी, त्रायमाण, पिप्पली, इन्द्र जौ, वासा, भृङ्गराज, देवदारु, पाठा, खैर, लाल चन्दन, निशोथ, वरणा की छाल, चिरायता, बावची, अमलतास, शाखोटक (सिहोरा की छाल) बकायन, करंज, अतीस; खस, इन्द्रायण, सारिवा, अनन्त मूल (उशवा) तथा पित्तपापड़ा का क्वाथ करके पिप्पली और गुग्गुलु मिलायें।[3]

रास्नादि क्वाथ–(अन्त्रवृद्धि–शा० सं०) रास्ना, गिलोय, बला, मुलैठी, गोखरु तथा एरण्डमूल के क्वाथ में एरण्ड तैल मिला कर दें।

महारास्नादि क्वाथ–(वात व्याधि–शा० सं०)—रास्ना २ भाग; धमासा, बला, एरण्ड मूल; देवदारु, कचूर, वंच, अडूसा; सोंठ हरड़, चव्य, मोथा, पुनर्नवा;

---

१. इस क्वाथ में गोमूत्र और गुग्गुलु मिलाकर देने से शोथ-उदर (यकृत शोथ में) लाभ होता है।

२. इसमें गोमूत्र पीछे से मिलाये।

३. पिप्पली और गुग्गुलु–क्वाथ में ही मिला देने से व्यवहार में सरलता रहती है। एक मात्रा के लिए पिप्पली १½ मासा तथा गुग्गुलु २ मासा पर्याप्त है।

गिलोय, विधारा; सौंफ, गोखरू, असगन्ध; अतीस, अमलतास, शतावर, पिप्पली, झिण्टी, धनिया, कटेरी तथा बड़ी कटेरी इनका क्वाथ करें। वंगसेन में रास्ना तीन भाग और शेष द्रव्य १ भाग लेने का उल्लेख है।

रास्ना सप्तक क्वाथ–(गृध्रसी–शा॰ सं॰)—रास्ना, गोखरू, एरण्ड मूल, देवदारु, पुनर्नवा, गिलोय, तथा अमलतास के गूदा का क्वाथ करें।

षडंग क्वाथ—(ज्वर-तृषा–शा॰ सं॰)—खस, पित्तपापड़ा; नेत्रवाला; मोथा; लाल चन्दन और सोंठ का क्वाथ करें।

स्तन्यवर्धक क्वाथ—(दूध बढ़ाने का–भै॰ र॰) भारंगी, देवदारु, वच; पाठा तथा अतीस का क्वाथ बनायें।

शारिवादि कषाय–(रक्त शोधन–भै॰ र॰)—शारिवा (उशबा), गोरख-मुण्डी, कृष्ण शारिवा; गिलोय, हरड़, कुटकी, मकोय, जीवन्ती, शतावर, बड़ी कटेरी का फल, आँवला, तथा विल्व फल का क्वाथ करें।[1]

ह्रीवेरादि क्वाथ (अतीसार–शा॰ सं॰)—नेत्रवाला, धातकी, पाठा, लोध, लाजवन्ती, कुटज छाल छाल; धनिया, अतीस, मुस्ता, गिलोय, बेलगिरी तथा सोंठ का क्वाथ करें।

धान्यपंचक क्वाथ—धनिया, नेत्रवाला, विल्व, मुस्ता तथा सोंठ को सम भाग लेकर क्वाथ करें।

शतपुष्पादि क्वाथ—सौंफ; धनिया; आँवला, गोखरू, ब्राह्मी, अनन्त मूल, प्रत्येक ४ तोला, तथा मरिच १ तोला लेकर क्वाथ करें। उत्तम होगा बाद में मरिच का २ मासा चूर्ण क्वाथ में मिलायें।

स्वर्णपत्रादि क्वाथ—गुलाब के फूल तथा मुनक्का प्रत्येक ४ तोला, सौंफ १ भाग तथा सनाय की पत्ती २ तोला लेकर क्वाथ करें।

तृण पंचमूल क्वाथ—कुशा, कास, शर, दाभ, ऊख इनकी जड़ें समान मात्रा में लेकर क्वाथ करें—मूत्रल है।

सूतिका दशमूल क्वाथ—शालपर्णी, पृश्नपर्णी, वृहती, कटेरी, गोखरू, प्रसारणी, सोंठ, गिलोय, मुस्ता तथा नील झिण्टी एक-एक भाग लेकर क्वाथ करें। यह प्रसूता के लिए उत्तम है।

---

१. **सारिवादि कषाय**—सारिवा, चोपचीनी, गिलोय, नीम की छाल मुंडी, कुटकी, लाल चन्दन, हरड़, उशवा–समान भाग लें। यह क्वाथ रक्तशोधक है।

वनप्सिकादि क्वाथ—वनप्सा, गाजवां, मुलैहठी उन्नाव, तथा रेशाखतमी एक एक भाग, द्राक्षा सात भाग, मरिच १/२ भाग मिलाकर क्वाथ करें।

क्षुद्रादि क्वाथ—छोटी कटेरी, गिलोय, सोंठ तथा कूठ या पोहकर मूल को समान भाग लेकर क्वाथ करें।

चन्दनादि क्वाथ—चन्दन श्वेत, उशीर, सुगन्धवाला, लाजा, द्राक्षा, पिप्पली, जौ तथा वेला को समान भाग लेकर क्वाथ करें।

चातुर्भद्र क्वाथ—गिलोय, अतीस, सोंठ, मुस्ता प्रत्येक १ भाग लेकर क्वाथ करें।

भाषादि क्वाथ—उड़द, कंवच, एरण्डमूल, वला—सब द्रव्य मिलाकर दो तोला, जल ३२ तोला; शेष ८ तोला बचायें। इसमें हींग २ रत्ती; और सैन्धव लवण ४ रत्ती मिलायें।

उपयोग—वात व्याधि में अनुपान रूप में।

माषवलादि क्वाथ—उड़द; वलामूल; कौंच बीज, गन्धतृण रास्ना, अश्वगन्धा और एरण्ड मूल— सब समान भाग लें। इसमें हींग और सैन्धव लवण—२ रत्ती और ३ मासा मिलायें।

उपयोग—वात रोगों में अनुपान रूप में।

तगरादि क्वाथ—तगर, पित्तपापड़ा, अमलतास, मोथा, कुटकी; खस; अश्वगन्धा; ब्राह्मी, द्राक्षा; लालचन्दन, शंखपुष्पी; विल्व छाल, श्योनाक छाल, गम्भारी छाल; पाठल छाल; अरणी छाल; शालपर्णी; पृश्नपर्णी; कटेरी; बड़ी कूटेरी; गोखरू; सब वस्तु सम भाग लें।

उपयोग—रोगी को नींद न आने पर, प्रलाप में, भ्रम रोग में उपयोगी।

अष्टदशांग क्वाथ—दशमूल, चिरायता; देवदारु; सोंठ; मोथा, कुटकी; इन्द्र जौ; धनिया; गज पिप्पली; सब द्रव्य समान भाग लें।

उपयीग—पित्तल कफ प्रधान सन्निपात ज्वर में—सन्निपातजन्य मूर्च्छा में उपयोगी है।

नवकार्षिक क्वाथ—हरड़; वहेड़ा; आँवला; नीम छाल; मजीठ; वच; कुटकी; गिलोय और दारुहल्दी प्रत्येक द्रव्य सम भाग लें।

उपयोग—वातश्लैष्मिक वातरक्त, स्पर्शशक्ति ह्रास; दाह; वेदना लक्षणों में बरतें।

सारिवादि क्वाथ—सारिवा; चोपचीनी; कुटकी; पटोल; गिलोय; धनिया;

सप्तपर्ण की छाल इनको सम भाग लेकर इसमें से २ तोला जल ३२ सेर–शेष ८ तोला क्वाथ करें।

उपयोग—सब प्रकार के उपदंश तथा रक्त विकार में उपयोगी है।

वरुणादि क्वाथ—वरुणा छाल; सोंठ; पाषाण भेद; गोखरू प्रत्येक द्रव्य सम भाग; प्रक्षेप यवक्षार ३रत्ती।

उपयोग—मूत्रावरोध, पथरी; में उपयोगी है।

खदिराष्टक—खेर की छाल; हरड़; बहेड़ा; आँवला; नीम की छाल; परवल; गिलोय; अडूसा छाल; प्रत्येक द्रव्य सम भाग लें।

उपयोग—मसूरिका; खसरा; विसर्प रोग में उत्तम है।

पिप्पल्यादि क्वाथ—पिप्पली; पिप्पलीमूल; मरिच; गज पिप्पली; सोंठ; चव्य; चित्रक; खस; इलयाची; अजवायन; सरसों श्वेत; भार्गी; पाठा; इन्द्र जौ; बकायन छाल; अतीस; कुटकी; विडंग; मूर्वा–प्रत्येक द्रव्य सम भाग लेकर २ तोला क्वाथ ३२ तोला में पिकायें। ८ तोला रहने पर छान ल। साथ में घी में भूनी हींग दो-तीन रत्ती मिलायें।

उपयोग—वात श्लेष्मावस्था में या दिन में निश्चित समय पर ज्वर आता है, भूख न लगे; प्रसूत ज्वर में उपयोगी है।

सूतिका दशमूल—शालपर्णी; बड़ी कटेरी; छोटी कटेरी; गोखरू; पृश्नपर्णी; झिण्टी; प्रसारणी; सोंठ; गिलोय; मोथा इनको सम भाग लेकर क्वाथ करें।

उपयोग—दाहयुक्त सूतिका रोग नष्ट होता है।

रस प्रकरण

निर्देश—आयुर्वेद के रसों में पारा; गन्धक; अथवा हिंगुल का प्रायः योग रहता है। इसलिये इनको यथासम्भव सूक्ष्म पीसकर ही सब द्रव्य मिलाने चाहिए। भावना द्रव से भली प्रकार मर्दन करके फिर शुष्क करना चाहिए। रखने के लिए चूर्ण या गोली के रूप में रख सकते हैं। रोगी को पीसकर देना चाहिए अथवा उसे निर्देश कर देना चाहिए कि इनको बारीक चूर्ण करके पीसकर बरते। जिन योगों में कज्जली (पारद और गन्धक) हों उनमें कज्जली सदा ताजी बनानी चाहिए। पहिले की रखी हो तो उसे फिर से रगड़ कर मिलाना चाहिए।

अगस्ति सूतराज—पारा; गन्धक की सम भाग में बनी कज्जली १ भाग, हिंगुल १ भाग; धत्तूर बीज २ भाग; अफीम ४ भाग; इन सबको भाँगरे के रस से भावना देकर, एक रत्ती की गोली बनायें।

उपयोग—ग्रहणी रोग एवं अतिसार में उपयोगी है, विशेषकर जब दर्द-ऐंठन होती हो।

अग्नि कुमार रस—(अजीर्ण अधिकार)—पारा; गन्धक; टंकण; प्रत्येक १ तोला; मीठा विष—३ तोला; वराट भस्म ३ तोला; शंख भस्म ३ तोला; काली मिर्च ८ तोला; इनको जम्बीरी निम्बू (गलगल) के रस से मर्दन करके एक रत्ती की गोली बनायें।

उपयोग—अग्निमान्द्य, विसूचिका में होता है।

निर्देश—अग्निकुमार रस के बहुत पाठ हैं। यहाँ पर निर्दोष एवं अजीर्ण में काम आने वाला पाठ दिया है। ग्रहणी के लिए जो अग्निकुमार रस का पाठ है, उसमें अफीम है; साथ ही लोह भस्म, अभ्रक भस्म त्रिकुट भी है। इसका नाम अभ्रवटिका या ग्रहणी गज केशरी है।

अग्नि तुण्डी बटी—पारद, मीठा विष, गन्धक; अजवायन; त्रिफला; सर्जक्षार; यवक्षार; चित्रक; सैन्धव; जीरा; सौवर्चल; विडंग; सामुद्रनमक; सुहागा प्रत्येक सम भाग; सब के बराबर कुचला लेकर जम्बीरी निम्बू के रस से मर्दन करके एक-एक रत्ती की गोली बनायें।

उपयोग—पेट में आध्मान, वायु बनना; पेट चढ़ना; थोड़ा खाने से भी भारीपन इनके लिये उत्तम है। कुचला होने से खाली पेट नहीं देना चाहिए। भोजन के पीछे गरम जल या तक्र के साथ बरतें।

अग्नि रस—मरिच; मोथा; वच; कुष्ठ सब समान भाग लेकर मीठा विष सब के बराबर लें। इसको आर्द्रक रस से मर्दन करके एक रत्ती की गोली बनायें।

उपयोग—सब प्रकार के अजीर्ण में उपयोगी है। इसमें विष को सब के समान एक भाग में लेते हैं अर्थात् पाँचों द्रव्य समान भाग लेते हैं।

अग्नि कण्टक रस—पारद; गन्धक; मीठा विष; सब एक तोला; सब के बराबर मरिच तीन तोला, इन सबको मिलाकर कटेरी फल के रस से २१ बार भावना दे। मात्रा—एक रत्ती।

उपयोग—अजीर्ण और विसूचिका में उपयोगी है।

अजीर्णारि रस—पारद ८ तोला; गन्धक ८ तोला, हरड़ १६ तोला, सोंठ २४ तोला, पिप्पली २४ तोला; काली मिर्च २४ तोला; सैन्धव नमक २४ तोला; भांग का चूर्ण ३२ तोला; इन सबको मिला निम्बू के रस से सात भावना दें। मात्रा—४ से १५ रत्ती।

उपयोग—अजीर्ण के साथ मलबन्ध; मल के अपरिपक्व रूप में बार-बार आने पर इसका उपयोग उत्तम है।

अम्ल पित्तान्तक रस—रस सिन्दूर; ताम्र; लोह प्रत्येक १ भाग। इनके बराबर हरड़ तीन भाग लेकर मिलायें। मात्रा—१ रत्ती। इसको मधु के साथ रोगी को दें।

उपयोग—अम्लपित्तनाशक है। भोजन के बाद खट्टी डकार आने पर उपयोगी है।

अर्श कुठार रस—पारद ८ तोला; गन्धक १६ तोला; लोह भस्म १६ तोला; ताम्र भस्म १६ तोला; दन्ती मूल; सोंठ; मिर्च काली, पिप्पली; जिमीकन्द; प्रत्येक १६ तोला; त्रिफला; सुहागा; यवक्षार; सैन्धव; प्रत्येक ५ पल; थोहर का दूध ८ पल; गोमूत्र ३ सेर ३ छटाँक; १ तोला। इसमें ऊपर वर्णित सभी वस्तुएँ डालकर पाक करें। पिण्डाकार बन जाने पर उतार लें। मात्रा–६ रत्ती से २४ रत्ती तक।

निर्देश—शुभा से वंशलोचन न लेकर त्रिफला लेना उत्तम है।

उपयोग—वात कफजन्य अर्श में, मल का विबन्ध रहने में उत्तम है।

अश्वकञ्चुकी (हयचोली) रस—पारद; गन्धक; मीठा विष; हरताल शुद्ध; त्रिफला; त्रिकटु; सुहागा; जयपाल बीज (शुद्ध दन्ती बीज)—प्रत्येक द्रव्य सम भाग लेकर भांगरे के रस से मर्दन करें। मात्रा १ रत्ती।

उपयोग—सामान्य मलबन्ध; पेट में दर्द; भारीपन, अजीर्ण में उपयोगी है।

आनन्द भैरव रस—हिंगुल मरिच; सुहागा; मीठा विष, पिप्पली इन सभी को सम भाग लेकर जल में पीस लें। मात्रा–१/२ से १ रत्ती। अनुपान—कुटज छाल मिश्रित इन्द्र जौ का चूर्ण और मधु।

उपयोग—अतिसार, ज्वरातिसार में विशेष उपयोगी है।

आमवातारि—पारद १ भाग; गन्धक १ भाग; त्रिफला (मिलित) तीन भाग; चित्रक ४ भाग; गुग्गलु ५ भाग; इनको एरैण्ड तेल के साथ अच्छी प्रकार मर्दन करें। मात्रा–६ रत्ती। एरण्ड तेल का सेवन कर ऊपर से गरम जल पियें।

उपयोग—आमवात में उपयोगी है।

निर्देश—गुग्गुलु को एरण्ड तेल में नरम करके (कूटकर) फिर शेष द्रव्य मिलायें।

आरोग्य वर्धनी—पारद १ भाग; गन्धव १ भाग; लोह भस्म १ भाग; अभ्रक भस्म १ भाग; ताम्र भस्म १ भाग त्रिफला ६ भाग; शिलाजीत ३ भाग; गुग्गुलु

४ भाग; चित्रकमूल ४ भाग; सब के बराबर कुटकी चूर्ण मिलाकर नीम के पत्र स्वरस से ३ भावना दें।

उपयोग—यकृत की बीमारी—अकर्मण्यता; शोथ में तथा उदर में सेद संचय में उपयोगी है।

इच्छा भेदी रस—सोंठ; पिप्पली; सुहागा; हिंगुल प्रत्येक एक-एक तोला; वच ८ तोला; शुद्ध जमालगोटा के बीज ८ तोला; इन सब का चूर्ण कर गाय के दूध से भावना दें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—शर्बत या चीनी।

उपयोग—रेचक है; आध्मान को कम करता है।

उन्माद गजकेशरी—पारद; गन्धक; मैनसिल–एक-एक तोला; धत्तूरे के बीज ३ तोला; इनको वच और ब्राह्मी के स्वरस से सात-सात बार भावना दें। मात्रा दो रत्ती।

उपयोग—उन्माद; अपस्मार में उपयोगी है।

कनक सुन्दर रस—हिंगुल; मरिच; गन्धक; पिप्पली; सुहागा; मीठा विष, धत्तूरे के बीज सब बराबर लेकर भांग के रस से रगड़ें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—अतिसार—पतले दस्तों में तथा ऐंठन होने में उपयोगी है।

कफकेतु—शंख भस्म; सोंठ; मरिच; पिप्पली; सुहागा इन सबको समान भाग लेकर सबके बराबर मीठा विष लें; इसको अद्रक रस से भावना तीन बार दें। मात्रा—१२ रत्ती।

उपयोग—गले के रोग; प्रतिश्याय; इन्फ्लुयञ्जा; ज्वर के साथ प्रतिश्याय में उपयोगी है।

कर्पूरा रस—हिंगुल; अफीम; मोथा; इन्द्र जौ; जायफल; कपूर इनको सम परिमाण में लेकर जल से पीस लें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—विसूचिका—पतले–पानी या मण्ड जैसे दस्तों में, ऐंठन में उपयोगी है।

कल्पतरु रस—पारद; गन्धक; मीठा विष; ताम्र भस्म—समान भाग लेकर मछली—गीध; सुअर; मोर; बकरी–इनके पित्तों से भावना दें। बाद में निर्गुणी के स्वरस की सात भावना एवं आर्द्रक रस की तीन भावना देकर आधी रत्ती सरसों के बराबर गोली बनायें। मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती।

उपयोग—ज्वरनाशक है। इस रस से रोगी को पसीना आता है। उष्ण-वीर्य है। शीतांग सन्निपात में उपयोगी है।

कल्याण सुन्दर रस—रस सिन्दूर; अभ्रक; चाँदी; स्वर्ण; स्वर्ण माक्षिक;

इन सब को सम भाग लेकर चित्रक और हस्तिशुण्डी की क्वाथ से; सात-सात भावना देकर एक रत्ती की गोली बनायें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—हृदय रोग–पुराने में उपयोगी है।

कस्तूरी भूषण—रस सिन्दूर; अभ्रक; सुहागा; सोंठ; कस्तूरी; पिप्पली; दन्तीमूल; जयाबोज; कर्पूर; मरिच; समान भाग लेकर आर्द्रक रस की भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—आर्द्रक स्वरस और मधु।

उपयोग—वात-कफ ज्वर तथा कफाधिक ज्वर में उपयोगी है।

कस्तूरी भैरव—हिंगुल; विष; टंकण; जायफल; जावित्री; मरिच; पिप्पली; कस्तूरी; सम भाग लेकर जल या आर्द्रक रस से भावना दें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—वातश्लस्य ज्वर, पसीना, निद्राधिक्य, पार्श्व वेदना, कास की अधिकता में।

कामदुधा रस—(१)—गिलोय सत्त्व ४ तोला; स्वर्ण गेरू एक १ तोला; अभ्रक भस्म १ तोला इन सब को मिलायें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—गाय का दूध या चावलों का पानी। घी या राब।

उपयोग—प्रदर रोग तथा रक्तस्राव में।

कामदुधा(२)—मोती; प्रवाल, मुक्ता शुक्ति; कौड़ी; शंख इनकी भस्म गेरू; गिलोय सत्त्व ये सब समान भाग लेकर मिला लें।
मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—जीरा ३ मासे और शक्कर ३ मासे।

उपयोग—जीर्ण ज्वर; पित्त रोग; अम्लपित्त; में लाभ करता है।

कामिनी विद्रावण—अकरकरा; सोंठ; लौंग, केशर; पिप्पली; जायफल; जावित्री; चन्दन प्रत्येक एक तोला; हिंगुल; गन्धक; प्रत्येक आधा तोला; अफीम ८ तोला; इन्हें एकत्र करके वटिका बनाये। मात्रा—१ से २ रत्ती। अनुपान–दूध।

उपयोग—वीर्यस्तम्भकारी तथा रतिशक्तिवर्धक होता है।

कुमार कल्याण रस—रस सिन्दूर; मुक्ता भस्म; अभ्रक; स्वर्णमाक्षिक; इनको समान मात्रा में लेकर घीक्वार के रस से मर्दन करके मूँग के बराबर (१/२ रत्ती की) गोली बनायें। मात्रा—१/२ रत्ती से २ रत्ती। अनुपान—दूध।

उपयोग—बालकों के कामला; अतिसार, कृशता; अग्निमान्द्य में उपयोगी है।

कुमुदेश्वर रस—(यक्ष्मारोगाधिकार)—स्वर्ण भस्म; रस सिन्दूर; गन्धक; मुक्ता भस्म; पारद; सुहागा; चाँदी; स्वर्णमाक्षिक भस्म—सब समान भाग लेकर काँजी के साथ पीस कर एक इसका गोला बनायें। इस पर मिट्टी का लेप एक अंगुल मोटा करके सुखा लें। इसको फिर सम्पुट में रखकर लवण यंत्र में ४ प्रहर पकाये या मृदु

पुट दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल लें। मात्रा—३ रत्ती। सहपान—मरिच चूर्ण तथा गो घृत।

उपयोग—राजयक्ष्मा; कार्श्य में—अनुलोम-प्रतिलोम क्षय दोनों में उपयोगी है।

कृमिमुद्‌गर रस—पारद १ तोला; गन्धक २ तोला; अजवायन ३ तोला; वायविडंग ४ तोला; कुचला—५ तोला; ढाक के बीज ६ तोला; इनको मिला लें-मात्रा—१ से ८ रत्ती। अनुपान—मधु एवं मोथे का क्वाथ।

उपयोग—पेट कें कृमियों को नष्ट करता है।

क्रव्याद रस—पारद ८ तोला; गन्धक १६ तोला; ताम्र भस्म ४ तोला; लोह भस्म ४ तोला; इनको मृदु अग्नि पर पिघलाकर पर्पटी बनायें। फिर लोह पात्र में निम्बू का रस १० सेर डाल कर, मृदु अग्नि से पाक करें। जब रस जीर्ण हो जाये तब पंचकोल (पिप्पली; पिप्पलीमूल; चव्य; चित्रक; सोंठ) इनके क्वाथ से ५०, अम्लवेतस क्वाथ की ५० भावना दें। इसमें सुहागा ३२ तोला; विड लवण १६ तोला; काली मिर्च १ सेर मिलाकर चणकाम्ल से सात भावना दें। मात्रा—२ से ५ रत्ती। अनुपान—सैन्धव मिश्रित छाछ।

उपयोग—अजीर्ण, भोजन के पीछे आध्मान होने पर देना उपयोगी है।

कुलवधू रस—पारद; ताम्र; सीसक; मैनसिल; तुत्थ इनको समान भाग लेकर एक दिन इन्द्रायण के रस वे मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती। पानी में घिसकर अंजन करें।

उपयोग—इस रस का अंजन या नस्य देने से ज्वर तथा ज्वर की मूर्च्छा नष्ट होती है।

कुष्ठ कालानल—पारा; गन्धक; सुहागा; ताम्र; लोह, पिप्पली; सब द्रव्य सम भाग लेकर, नीम के पंचांग (पत्र; पुष्प; फल; छाल; मूल) कषाय, त्रिफला और अमलतास के कषाय से पृथक् पृथक् भावना दें। मात्रा—४ रत्ती से ६ रत्ती।

उपयोग—सब प्रकार के कुष्ठ रोग में उपयोगी है।

गगन सुन्दर रस—सुहागा; हिंगुल; गन्धक; अभ्रक; समान भाग लेकर दूर्वा के रस से भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—मधु और ३ रत्ती राल।

उपयोग—रक्तस्राव तथा रक्तातिसार।

गण्डमाला कण्डन रस—पारा १ तोला; गन्धक ६ माशा; ताम्र भस्म १½ तोला; मण्डूर ३ तोला; त्रिकटु ६ तोला; सैन्धा नमक ६ माशा; कचनार की छाल

का चूर्ण १२ तोला; गुग्गुलु १२ तोला; मात्रा—३ माशा। अनुपान–कचनार और वरुणादिगण क्वाथ।

उपयोग—गलगण्ड; गण्डमाला तथा अपची को नष्ट करता है।

निर्देश—पहले घी के साथ गुग्गुलु को कूटना चाहिए। गुग्गुलु नर्म बन जायँ तब दूसरी औषधि थोड़ी-थोड़ी करके मिलायें कूटें।

गन्धक रसायन—शुद्ध गन्धक को गाय के दूध, चतुर्जात (दालचीनी; इलायची; तेजपत्र और नागकेशर), गिलोय, हरड़; बहेड़ा, आँवला, भांगरा; आर्द्रक प्रत्येक के रस से आठ बार भावना देकर शुष्क कर लें। इसमें समान भाग शक्कर मिलायें। मात्रा—दो मासा। प्रातः एवं सायं लेनी चाहिए।

उपयोग—रसायन रूप में तथा रक्त विकार में।

गन्धक वटी—गन्धक २ तोला; चित्रक; मरिच; पिप्पली; प्रत्येक १ तोला; सोंठ २ तोला; यवक्षार; सैन्धव, सौवर्चल; साम्भर ये प्रत्येक ६ मासा; निम्बू रस से भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। भोजन के बाद तक्र के साथ।

उपयोग—मन्दाग्नि; शूल; गुल्म; उदावर्त्त में उपयोगी है।

गन्धक वटी (लशुनादि वटी)—लहसुन, गन्धक; जीरा; सैन्धव; त्रिकटु (सोंठ; मरिच; पिप्ली); हींग—ये सब समान भाग लेकर इनको जम्बीरी निम्बू से मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—अद्रक और निम्बू के रस में सैन्धा और सेचल नमक मिलाकर।

उपयोग—हैजे में (विसूचिका में)—मन्दाग्नि में, वमन में।

गर्भचिन्तामणि—पारद; हरताल; लोह भस्म प्रत्येक १ तोला; अभ्रक २ तोला; कर्पूर, वंग, ताम्र; जायफल; जावित्री; गोखरू; शतावरी; वला; अतिवला प्रत्येक १ तोला; इनको शतावरी के रस या जल से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—गर्भवती के या प्रसूता के ज्वर; प्रदर, दाह में।

गर्भ पीयूष रस—पारा; गन्धक; स्वर्ण; लोह; चाँदी; स्वर्णमाक्षिक; हरताल; वंग; अभ्रक; ये द्रव्य सम भाग लेकर; ब्राह्मी, वच; भांगरा; पित्तपापड़ा; दशमूल इनके क्वाथ से सात-सात भावना दें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—प्रदर; गर्भवस्था की निर्बलता; प्रसव ज्वर में उपयोगी है।

गर्भ विनोद रस—त्रिकटु ३ तोला; हिंगुलु ४ तोला; जावित्री; लवंग; प्रत्येक ३ तोला; स्वर्णमाक्षिक—२ तोला; पानी के साथ मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—गर्भावस्था की शिकायतें—वमन; अरुचि; मन्दाग्नि में लाभ करता है।

गर्भणाल रस—हिंगुल, सीसक; वंग; दालचीनी; इलायची; तेजपात; सोंठ; मरिच; पिप्पली; धनिया; काला जीरा; चव्य; द्राक्षा; देवदारु; ये प्रत्येक १ तोला; लोह भस्म; ६ माशा मिलाकर एक सप्ताह तक विष्णुक्रान्ता के रस से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—द्राक्षा का क्वाथ।

उपयोग—गर्भ को स्थिर रखने के लिए प्रथम मास से नवम मास पर्यन्त देना चाहिए।

गुडूची लोह—गिलोय सत्त्व; सोंठ; मरिच; पिप्पली; हरड़; बहेड़ा; आँवला; तज; तेजपात; ईलायची ये सब बराबर भाग लेकर इनके चूर्ण के बराबर लोह भस्म मिलायें। मात्रा—१ मासा।

उपयोग—वातरक्त में उपयोगी है।

गुल्मकालानल—पारा; गन्धक; हरताल; ताम्र भस्म; सुहागा; प्रत्येक दो-दो तोला; इन सबके बराबर यवक्षार; मोथा; पिप्पली; सोंठ; मरिच; गज पिप्पली; हरड़; वच; कूठ प्रत्येक का १–१ तोला चूर्ण मिलायें। इसको पित्तपापड़ा; सोंठ; चिरचिटा; मोथा; पाठा; इनसे एक-एक भावना देकर बारीक चूर्ण कर लें। मात्रा—४ रत्ती। अनुपान—हरड़ का क्वाथ।

उपयोग—गुल्म नाशक है। पेट के चढ़ने, भारीपन वायु के रुकने में लाभकारी है।

ग्रहणीकपाट रस—रजत; मुक्ता; स्वर्ण; लोह भस्म १–१ भाग; गन्धक दो भाग; पारा तीन भाग; इनको कैथ के रस (पत्ते या कच्चे फल के रस) से अच्छी प्रकार (गाढ़ा करके) मर्दन करें। फिर मृग के सींग में रखकर कपड़मिट्टी करके मध्यम पुट से आँच दें। फिर निकाल कर; बला के रस से सात; चिरचिटे से तीन; लोध; अतीस; मोथा, धातकी फूल; इन्द्र जौ; गिलोय इनमें प्रत्येक के रस की तीन-तीन भावना देवें। मात्रा १ मासा, अनुपान—मधु और मरिच।[1]

उपयोग—अतिसार, ग्रहणी में।

ग्रहणीकपाट रस—पारा; १ भाग; गन्धक २ भाग; अभ्रक ३ भाग; धत्तूरे के बीज १ भाग; अफीम १ भाग; इनको मिलाकर, पान के रस से, भांगरे के रस से और अंकोल के रस से तीन तीन भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—छाछ।

उपयोग—ग्रहणी में।

---

१. **भैषज्य रत्नावली में इसका उल्लेख बृहद् ग्रहणी कपाट के नाम से है।**

चण्डेश्वर रस—पारा; गन्धक; विष; ताम्र; इनको आर्द्रक रस से; निर्गुण्डी (सम्भालु) के पत्तों के रस से सात-सात भावना दें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान— आर्द्रक स्वरस।

उपयोग—प्लेग में, ज्वर में जब ताप परिमाण बहुत ऊँचा हो; रोगी बलवान-युवा हो तब दें।

चतुर्मुख (कृष्ण चतुर्मुख)—पारा; गन्धक; लोह; अभ्रक; ये सब सम भाग और स्वर्ण पारद का चौथाई; सबको मिलाकर घीक्वार के रस से मर्दन करके; पीछे से त्रिफला, तुलसी, ब्राह्मी रस से भावना देकर एरण्ड पत्रों में लपेट कर धान्यराशी में तीन दिन रखें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—त्रिफला क्वाथ। भैषज्य रत्नावली में केवल घीक्वार के रस की ही भावना लिखी है—प्रयोग भी इसी भावना का होता है।

उपयोग—अनिद्रा, रक्तचाप बढ़ने; ज्वर तथा मूर्च्छा में उपयोगी है।

निर्देश—भैषज्य रत्नावती में रस गन्धक के स्थान पर रस सिन्दूर पाठ करके यही योग दिया है। इससे रक्त चतुर्मुख बनता है। इसी को **चिन्तामणि चतुर्मुख** कहा गया है।

चिन्तामणि चतुर्मुख—रस सिन्दूर ४ तोले; लोह भस्म २ तोले; अभ्रक भस्म २ तोले; स्वर्ण भस्म १ तोला; इनको घीक्वार के रस से भावना देकर; एरण्ड पत्र में रखना चाहिए। मात्रा—२ रत्ती।

चतुःसम मण्डूर—मण्डूर भस्म; घी; मधु; शर्करा—ये सब समान भाग लेकर; ताम्रपात्र में मथकर एक दिन धूप में रक्खें; जब गाढ़ा हो जाये तब एक रात ओस में रखें। फिर ताम्बे के पात्र में घी लगाकर रख छोड़ें। मात्रा—४ माशे। अनुपान—जल।

उपयोग—कामला; पाण्डु; मन्दाग्नि तथा अम्लपित्त में उपयोगी है।

चतुःसम लोह—अभ्रक; ताम्र; पारद; लोह; गन्धक ये सब चार-चार तोला लेकर मिला लें। इनको घी ४८ तोला और दूध ३ सेर लेकर लोहे की कड़ाही में पकायें। जब खोया बनने लगे तो उतारकर इसमें विडंग, त्रिफला; चित्रक; त्रिकूट में से प्रत्येक का चार-चार तोला चूर्ण मिलायें। इसे चिकने पात्र में रख दें। मात्रा—१ माशा से ८ माशा। अनुपान—मधु एवं नारियल का जल।

उपयोग—पार्श्वतशूल; परिणाम शूल; हृदय शूल में।

चन्दनादि लोह—लाल चन्दन; तगर (सुगन्धवाला); पाठा; खस; पिप्पली; हरड़; सोंठ; कमलगट्टा; आँवला; चित्रक; विडंग; नागरमोथा प्रत्येक द्रव्य सम भाग

और सबके बराबर लोह भस्म मिलायें। मात्रा—१ माशा। अनुपान—जीर्ण ज्वर में, जब ज्वर सायंकाल में मन्द-मन्द आता है।

चन्द्रकला रस—पारा; ताम्र; अभ्रक; एक-एक तोला; गन्धक २ तोला इनको मिलाकर नागरमोथा रस; अनार रस; केवड़े की जड़ का रस; सहदेवी; घीक्वार से एक एक भावना देकर : पित्तपापड़ा; पिप्पली; चन्दन; सारिवा इनका एक-एक तोला चूर्ण इसमें मिलायें। इसमें द्राक्षा के कषाय की सात भावना दें। इसे छाया में सुखा लें। मात्रा—१ से २ रत्ती।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्र; अम्लपित्त; प्रदर; दाह या पित्त ज्वर में।

चन्द्रकला वटी—इलायची; कर्पूर; मिश्री; आँवला; जायफल; सिम्वल की गोंद–(मोच रस) गोखरू; पारा; वंग; लोह; इन सबको गिलोय और सिम्वल का कषाय से भावना दें। मात्रा—१ से २ मासा। अनुपान—मधु।

उपयोग—प्रमेह—गोनोरिया में उपयोगी है।

निर्देश—इसमें गन्धक नहीं है। इसलिए रसयोग सागर में पारद के स्थान पर रस सिन्दूर लेने का निर्देश है जो ठीक भी है। पारे के बराबर गन्धक भी मिलाया जा सकता है।

चन्द्रप्रभा गुटिका (अर्श रोग)—वायविडंग; चित्रक; सोंठ; मरिच; पिप्पली, त्रिफला; देवदारु; चव्य; चिरायता; पिप्पलीमूल; मुस्तक; कचूर; वच; स्वर्ण-माक्षिक; सैन्धव; यवक्षार; हल्दी; दारुहल्दी; धनिया; हस्तिपिप्पली; अतीस; प्रत्येक २ तोला; शिलाजीत ६४ तोला; गुग्गुलु १६ तोला; लोह भस्म १६ तोले; खांड ३२ तोला; वंशलोचन ८ तोला; दन्तीमूल ८ तोला; तेजपत्र ८ तोले; छोटी इलायची ८ तोले; इन सबको मिलाये। मात्रा—४ रत्ती से ६ रत्ती। अनुपान—तक्र या मस्तु।

उपयोग—अर्श रोग में मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाकर १ मासे तक ले जायें।

निर्देश—इसमें पारद ४ तोले; गन्धक ४ तोला भी मिलाते हैं।

चन्द्रप्रभा वटी—(प्रमेहाधिकार)—कपूर; वच; मुस्ता; चिरायता; देव-दारु; हल्दी; अतीस; दारुहल्दी; पिप्पली मूल; चित्रक; निशोथ; दन्तीपत्र; दाल-चीनी; इलायची; वंशलोचन; प्रत्येक २ तोला; धनिया, त्रिफला; चव्य; विडंग; गजपिप्पली; स्वर्णमाक्षिक; त्रिकटु; यवक्षार; सर्जक्षार; सैन्धव; सौवर्चल; सांभर, प्रत्येक ६ मासा; लोह भस्म ४ तोला; खांड ८ तोला; शिलाजीत १६ तोला; गुग्गुलु १६ तोला; सब को मिलायें। मात्रा—१० रत्ती।

उपयोग—प्रमेह; प्रदर; मूत्रकृच्छ्र, कामला।

निर्देश—पहले गुग्गुलु को दशमूल या गिलोय के क्वाथ में घोलकर शेष सब वस्तुएँ इसमें मिलायें।

चन्द्रामृत रस—त्रिकटु; त्रिफला; चव्य; धनिया; जीरा; सैन्धव प्रत्येक १ तोला; पारद; गन्धक; लोह भस्म प्रत्येक २ तोला; सुहागा; ८ तोला, मरिच ४ तोला मिलाकर बकरी के दूध से भली प्रकार भेर्दन करें। मात्रा—४ रत्ती।

उपयोग—कास में।

निर्देश—बम्बई आदि शहरों में जहाँ बकरी का दूध सामान्यतः सुलभ न हो, वहाँ भाँगरे के रस से भावना दें।

चन्द्रांशु रस—पारद; गन्धक; लोह; अभ्रक; वंग; इनको समान भाग ले कर घीक्वार के रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती; अनुपान—जीरे का क्वाथ।

उपयोग—प्रसूता के रोग—जरायु दोष; योनि शूल; योनिकण्डू; कामोन्माद में।

चन्द्रोदय रस—सुवर्णपत्र १ तोला; पारा ८ तोला; गन्धक १६ तोला; इनको कपास के फूलों के रस, और घीक्वार से तीन-तीन दिन मर्दन करें। फिर शुष्क करके वालुका यंत्र में पका लें। फिर गले में लगा चन्द्रोदय लें।

निर्देश—(१) वैद्यों में यह मकरध्वज; पूर्ण चन्द्रोदय नाम से व्यवहार में आता है। कोई कोई इसको वटप्ररोह—बरगद के अंकुरों से भावना देते हैं। उनकी मान्यता है। ऐसा करने से वृष्यता आती है। (२) कुछ वैद्य इसमें चन्द्रोदय १ पल (४ तोला); शुद्ध कपूर १६ तोला; जायफल; समुद्रशोष; लौंग; कस्तूरी; ये सब ४-४ मासा मिलाकर पान के रस से गोली बनाते हैं। या चूर्ण रूप में पान या मलाई के साथ तीन-तीन रत्ती मात्रा में बरतते हैं।

उपयोग—वाजीकरण, योनवाही है।

चन्द्रोदय (मकरध्वज)—जायफल; लवंग; कर्पूर; मिर्च प्रत्येक १ तोला; स्वर्ण भस्म; और कस्तूरी एक-एक माशा; इन सबके बराबर रस सिन्दूर मिलाकर लाल कमल के रस से मर्दन करें। मात्रा—४ रत्ती। अनुपान—पान का रस, दूध की मलाई।

उपयोग—योनवाही, वाजीकरण।

चतुर्भुज रस—रस सिन्दूर २ भाग; स्वर्ण भस्म १ भाग; मनःशिला १ भाग; कस्तूरी १ भाग; हरताल १ भाग; इनको घीक्वार के रस से मर्दन करके एरण्ड पत्र में लपेट कर धान्यराशी में तीन दिन रखें। बाद में व्यवहार में लायें। मात्रा—१/२ रत्ती से २ रत्ती। अनुपान—त्रिफला और मधु।

उपयोग—उन्माद; अनिद्रा; रक्तचाप बढ़ने पर अपस्मार में।

चिन्तामणि रस—पारद; गन्धक; अभ्रक; वंग; लोह; शिलाजीत; प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला; स्वर्ण भस्म ३ मासा; रजत भस्म ६ मासा; इन सबको मिल कर चित्रक; भांगरे का रस; अर्जुन की छाल का क्वाथ इनसे सात-सात भावना दें मात्रा १ रत्ती। अनुपान—गेहूँ का क्वाथ।

उपयोग—हृदय-रोग हृदय की धड़कन, निर्बलता; श्वास की कठिनता में

जयमंगल रस—पारा (हिंगुल से निकला); गन्धक; सुहागा; ताम्र; वंग; स्वर्णमाक्षिक; सैन्धव; काली मिर्च; ये सब समान भाग लेकर; इनसे दुगनी स्वर्ण भस्म; स्वर्ण भस्म से आधा लोह भस्म; लोह भस्म के बराबर चाँदी की भस्म; इन सबको मिलाकर धतूरा, हरसिंगार के पत्तों का रस; दशमूल का क्वाथ; चिरायता के क्वाथ से तीन-तीन भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—जीरा और मधु।

उपयोग—जीर्णज्वर; प्रतिलोम क्षय में।

निर्देश—पारा आदि द्रव्य ४ मासे हों तो; स्वर्ण भस्म ८ मासे; लोह भस्म ४ मासा रजत भस्म ४ मासा लें।

जलोदरारि रस—(ताम्रयुक्त)— पिप्पली, मरिच; ताम्र भस्म; हल्दी चूर्ण; इनको सेहण्ड के दूध से मर्दन कर के; सबके बराबर जयपाल का चूर्ण मिलायें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—जलोदर में जिसमें प्लीहा बढ़ी हो।

जलोदरारि (ताम्ररहित)—पारा २ तोला; गन्धक ४ तोला; मैनसिल, हल्दी; जयपाल; त्रिफला; त्रिकटु; चित्रक प्रत्येक २ तोला; इनको मिलाकर दन्ती-मूल; गिलोय, भांगरे के रस से सात-सात भावना दें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—जलोदर में।

ज्वरांकुश—पारा १ तोला; गन्धक १ तोला; मीठा विष १ तोला; धत्तूरा बीज ३ तोला; त्रिकटु का चूर्ण १२ तोला; सबको मिलायें। मात्रा—२ रत्ती; अनुपान—आर्द्रक रस या जम्बीरी निम्बू की मज्जा।

उपयोग—ज्वर में विशेषतः मलेरिया ज्वर के रूपों में उपयोगी है।

ज्वर नाग मयूर चूर्ण—लोह; अभ्रक; टंकण; ताम्र; हरताल; वंग भस्म; पारा; गन्धक; सहजन के बीज; त्रिफला; चन्दन; अतीस; पाठा; वच; हल्दी, दारुहल्दी; खस; चित्रक; देवदारु; पटोल; जीवक; ऋषभक; जीरा; तालीस पत्र; वंशलोचन; कटेरी का फल और मूल; कचूर के पत्ते; त्रिकटु; गिलोय सत्त्व; धनिया;

कुटकी; पित्तपापड़ा; मोथा, बिल्व; ह्रीवेर (सुगन्धवाला) मुलेहठी प्रत्येक वस्तु सम भाग और इन सब से चार गुणा काले जीरे का चूर्ण इसके बराबर ताड़ के पुष्प का चूर्ण और सब के बराबर चिरायते का चूर्ण इसके बराबर पिप्पली का चूर्ण मिलायें। मात्रा—१ मासा।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वरों, जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर, में विशेष लाभकारी है।

निर्देश—पारा और गन्धक की कज्जली बनाकर इसमें वंग भस्म—हरताल मिलायें बाद में दूसरे चूर्ण मिलायें।

ज्वरारि अभ्रक—अभ्रक; ताम्र; पारद; गन्धक, मीठा विष; ये प्रत्येक एक-एक तोला, इनसे दुगना धत्तूर बीज २ तोला; त्रिकटु मिलित ५ तोला; इसको जल या आर्द्रक रस से मर्दन करके गोली बनायें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—ज्वरों में विशेषकर प्लीहा यकृत विकार वाले पुराने ज्वरों में उपयोगी है।

ज्वरमुरारि[1]—पारद; गन्धक; मीठा विष; हिंगुल; प्रत्येक १–१ तोला; लौंग ६ मासा; मरिच ८ तोला; धत्तूरे के बीज १६ तोला; निशोथ १ तोला; इनको दन्ती मूल के क्वाथ से सात भावना दें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—अजीर्ण विष्टम्भ युक्त ज्वर में; आमवात में।

तारकेश्वर रस—पारद; गन्धक; लोह; वंग; अभ्रक; जवासा, जौखार; गोखरू, हरड़ सब समान भाग लेकर इनको कुष्माण्ड के पानी से; पंचतृण मूल क्वाथ; गोक्षुर के क्वाथ से भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—मधु। बाद में गूलर के पके फल का चूर्ण १ तोला मधु से खायें।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्रनाशक—गन्ने का रस, बकरी का दूध पियें।

तारा मण्डूर—विडंग; चित्रक; चव्य; त्रिफला; त्रिकटु; प्रत्येक सम भाग इन सबके बराबर मण्डूर भस्म; इनसे दुगना गोमूत्र; गोमूत्र से आधा गुड़ मिलाकर कड़ाही में पाक करें। जब गोला बनने लगे, तब उतार लें। मात्रा—६ मासा।

उपयोग—पाण्डु रोग; अर्श; शोथ में उपयोगी है।

सूचना—नवायस मण्डूर को ही गुड़ और गोमूत्र में पकाने से यह योग बना है। इसी को गुड़मण्डूर, सिंहमण्डूर नाम दिया है।

---

१. शिंगरफ; मीठा विष; त्रिकटु; सोंठ और हरड़; जमालगोटा इनको मिलायें। मात्रा—२ रत्ती। यह दूसरा ज्वरमुरारि है। इसका उपयोग भी अजीर्ण वाले ज्वरों में होता है।

तालकेश्वर—हरताल शुद्ध; पारा; गन्धक; लोह; अभ्रक वंग भस्म सब सम भाग लेकर एक-दो दिन मधु से मर्दन करें। मात्रा—२ से ३ रत्ती। अनुपान—गूलर के पके फलों का चूर्ण और मधु।

उपयोग—बहुमूत्र रोग, सोम रोग में।

निर्देश—हरताल के स्थान पर रजत भस्म मिलाने से तारकेश्वर बनता है। सोमरोगी में जब नर्व्स सिस्टम से सम्बन्धित लक्षण हों तो रजत भस्म से बना तारकेश्वर उपयोगी है।

तारकेश्वर (कुष्ठ रोगाधिकार) हरताल; ताम्र, मैनसिल; पारद; गन्धक; सुवर्ण भस्म, अभ्रक; लोह—ये सब बराबर; मीठा विष—पारद का चतुर्थांश मिलाकर जम्बीरी निम्बू के रस से मर्दन कर के एक पुट दें। मात्रा ४ रत्ती।

उपयोग—कुष्ठ रोग में।

ताल सिन्दूर (ताल चन्द्रोदय)—कुष्माण्ड के रस से शोधित हरताल के बराबर पारा लें। पारे से दुगनी गन्धक मिलाकर कज्जली बनायें और वालुका यंत्र में पाक करे। मात्रा—१ से २ रत्ती।

त्रिकत्रयादि लौह—मण्डूर भस्म—८ तोला; गाय का घी ८ तोला; शर्करा ८ तोला; मधु ८ तोला; कान्त लोह १ तोला, इनको एकत्र करके, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद (नागर मोथा चित्रक; विडंग) इनका चूर्ण (प्रत्येक द्रव्य १ तोला; अर्थात् त्रिकटु तीन, त्रिफला ३, त्रिमद ३ तोला) मिलाकर; इसको लौह पात्र या मृत्पात्र में सात दिन भली प्रकार मर्दन करें। दिन में धूप में और रात्रि में ओस में रखें। मात्रा—४ रत्ती।

उपयोग—पाण्डु, कामला, श्वयथु में।

त्रिगुणाख्य रस (त्रिनेत्र रस)—सुहागा; मृगश्रृंग भस्म; स्वर्ण, गन्धक; रस सिन्दूर ये सब समान भाग लेकर आर्द्रक रस से मर्दन करके शराव सम्पुट में एक पुट दें। मात्रा—४ रत्ती। अनुपान—मधु, घी से चाटकर सैन्धा नमक, जीरा और हींग खायें।

उपयोग—हृच्छूल, पंक्तिशूल में उपयोगी है।

त्रिनेत्र रस[1]—पारा; गन्धक; अभ्रक सम भाग लेकर; अर्जुन की छाल के क्वाथ से इक्कीस भावना दें। मात्रा—४ रत्ती से ८ रत्ती। अनुपान-मधु के साथ।

---

१. इसी में अभ्रक के स्थान पर ताम्र भस्म मिलाने से हृदयार्णव रस बनता है। उपयोग दृष्टि से अभ्रक और ताम्र दोनों ही मिला लें तो उत्तम है।

उपयोग—हृदय रोग में।

त्रिफला लौह—लोह भस्म; हल्दी दारुहल्दी; **त्रिफला** कुटकी; सब सम भाग लेकर मिलायें। मात्रा—३ माशा। अनुपान—मधु और घी।

उपयोग—प्रमेह, कामला; पाण्डु में; जीर्ण ज्वर में।

त्रिभुवन कीर्त्ति—हिंगुल; मीठा विष; त्रिकटु; सुहागा; पिप्पली, पिप्पली-मूल; सम भाग लेकर, इनको तुलसी, अद्रक; धत्तूरे के रस से तीन-तीन भावना दें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—ज्वर में।

त्रिविक्रम रस—ताम्र भस्म में समान परिमाण में बकरी का दूध मिलाकर अग्नि पर पकायें। जब दूध का द्रव भाग समाप्त हो जाये तो इस ताम्र को लेकर इसमें सम भाग, पारद और गन्धक मिलाकर कज्जली करें। फिर इसे सम्भालू के पत्तों के रस से एक दिन मर्दन करके वालुका यंत्र में पकायें। मात्रा ½ रत्ती।

उपयोग—अश्मरी और शर्करा रोग में।

त्रैलोक्य चिन्तामणि—स्वर्णभस्म २ भाग, चाँदी का भस्म २ भाग; अभ्रक भस्म २ भाग, लोह भस्म ५ भाग, प्रवाल पिष्टी ५ भाग; मुक्ता भस्म ३ भाग; रस-सिन्दूर ७ भाग; इन सबको घीक्वार के रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—बकरी का दूध।

उपयोग—क्षय रोग, प्रमेह, जीर्ण ज्वर में।

त्रैलोक्य चिन्तामणि (वात व्याधि)—हीरा भस्म, स्वर्ण भस्म; रजत भस्म; १-१ भाग; लोह भस्म ३ भाग, अभ्रक भस्म ६ भाग; रस सिन्दूर ६ भाग; इनको घीक्वार के रस से मर्दन करें। मात्रा—एक-एक रत्ती।

उपयोग—वात व्याधि तथा नपुंसकता में उपयोगी है।

दन्तोद्भेद गदान्तक रस—पिप्पली; पिप्पलीमूल; चव्य, चित्रक; सोंठ, अजमोद; अजवायन; हल्दी; मुलैहठी; देवदारु, दारुहल्दी; विडंग; इलायची; नागकेशर; नागरमोथा, काकड़ाशृंगी, कचूर; विड़ नमक; अभ्रक भस्म; शंख, लोह; सुवर्णमाक्षिक भस्म; इनको सम भाग में मिला—पानी से घोट कर रखें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—इसको बच्चों के मसूड़ों पर मलना चाहिए। दवा को घिसकर या शहद में मिलाकर देने से दाँत बिना कष्ट के निकलते हैं। दाँत निकलने के समय के रोग अतिसार आदि कम होते हैं।

दरदादि वटी—हिंगुल, मीठा विष, मोथा, पिप्पली; मरिच; ये वस्तुयें

समान भाग लेकर निम्बू के रस से तीन दिन मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान —आर्द्रक रस और मधु।

उपयोग—कास, पेट के दर्द में।

दुग्ध वटी—शिगरफ १ तो० लौंग, अफीम, वछनाग, जायफल, धत्तूरे के बीज, प्रत्येक आधा तोला; इनके चूर्ण को भांग के रस में मर्दन करके। मात्रा–१ से २ रत्ती।

उपयोग—संग्रहणी, तीव्र अतिसार; शोथ में उपयोगी है।

धात्री लौह—आँवला; लोह भस्म; त्रिकटु; हल्दी; सब सम भाग लें। मात्रा—१ से ३ मासा। अनुपान मधु, घी और शर्करा के साथ।

उपयोग—कामला, पाण्डु, शोथ में।

नयनामृत—पारा और सीसक (भस्म नदी) सम भाग; दोनों से दुगना सुरमा; पारे के बराबर कपूर; लेकर सबको लोहे के कड़ाही में लोहे के डंडे से एक सप्ताह तक घोंटे।

उपयोग –धुंधियाला, आँख में जाला; अर्जुन, मोतिया नष्ट होता है।

निर्देश—सीसक को पिघलाकर पारे में डालकर तुरन्त रगड़ना चाहिए, जिससे इनका मिश्रण एलौय जल्दी एक समान बन जाये। फिर अन्य वस्तुएँ मिलायें।

नवजीवन रस—रससिन्दूर; कुचला शुद्ध; चित्रक; अभ्रक; लोह प्रत्येक २–२ तोला; त्रिकटु ४ तोला लेकर सब को, चित्रक क्वाथ, आर्द्रक रस, पान का रस से एक दिन मर्दन कर लें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—शूल, आध्मान; बाजीकरण है।

नवायस लौह—त्रिकटु; त्रिफला; मुस्ता; वायविडंग, चित्रक ये सब परस्पर सम भाग; सब के बराबर लोह भस्म मिलायें। मात्रा—१ मासे से ३ मासा। अनुपान–घी और मधु।

उपयोग—पाण्डु; हलीमक, शोथ;

नाराच रस—पारा; सुहागा; मिरच प्रत्येक १ भाग; गन्धक; पिप्पली, सोंठ; दो-दो भाग; सब के बारबर शुद्ध जयपाल मिलायें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—आध्मान, गुल्म; उदर रोग में उत्तम रेचक है।

नित्योदित रस—पारद; अभ्रक, लोह; ताम्र–वछनाग; गन्धक; सब द्रव्य परस्पर सम भाग; सब के बराबर शुद्ध भिलावा मिलायें। इसको शूरणकन्द (जिमी कन्द जंगली) के रस में तीन दिन मर्दन करें। मात्रा–१मासा। अनुपान—घी के साथ खायें।

उपयोग—अर्श तथा गुल्म में उपयोगी है।

नृपति वल्लभ रस—जायफल; लौंग; मोथा; तज; इलायची; सुहागा; हींग; तेजपात; जीरा; अजवायन; सोंठ; सैन्धा नमक; लोह; अभ्रक; पारा; गन्धक; ताम्र भस्म; प्रत्येक ८–८ तोला; मरिच; १६ तोला; लेकर बकरी के दूध से; आँवले के रस से मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती।

उपयोग—अतिसार, ग्रहणी में।

एकांगवीर रस—गन्धक; पारा; लोह; वंग; सीसक; ताम्र; अभ्रक; तीक्ष्ण लोह; इनकी भस्में, सोंठ, मरिच; पीपल; सम भाग लेकर; त्रिफला; त्रिकटु; निर्गुण्डी, चित्रक; आर्द्रक; सहजन; कुष्ठ; आँवला; कुचला; आक, अकरकरा और फिर अद्रक इनके तीन-तीन भावना दें। मात्रा—३ रत्ती।

उपयोग—पक्षाघात; गृध्रसी, वातव्याधि में बरता जाता है।

अगस्ति सूतराज रस—पारा; गन्धक; शिगरफ एक-एक भाग; धत्तूरे के बीज २ भाग; अफीम २ भाग; इनको भांगरे के रस से भावना दें। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती। अनुपान—त्रिकटु और मुलेहेठी का चूर्ण।

उपयोग—रस शेष अजीर्ण तथा अतिसार में (जीरे का चूर्ण और जायफल के साथ)

अमृत रस—गन्धक २ तोला; पारद १ तोला; त्रिकटु; त्रिफला; मुस्ता; विडंग; चित्रक; इनमें प्रत्येक ४ तोला; लेकर मिलायें। मात्रा ४ मासा। अनुपान—मधु और घी।

उपयोग—अम्लपित्त; परिणामज शूल; कामला; पाण्डु रोग में।

कज्जली योग—पारद और गन्धक की सम भाग में बन कज्जली को वरुणादि गण क्वाथ से सेवन करने पर विद्रधि विशेषतः अन्तः विद्रधि नष्ट होती है। मात्रा—२ से १० रत्ती।

पंचानन रस—पारा; गन्धक; लौह भस्म; अभ्रक सब परस्पर सम भाग; इन सबसे दुगनी वंग भस्म लेकर मधु में मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—शीतल जल।

उपयोग—शुक्र तरलता, प्रमेह में।

पंचामृत पर्पटी—गन्धक ८ मासा; पारा ४ मासा; लोह २ मासा; अभ्रक १ मासा; ताम्र भस्म ४ रत्ती लेकर कज्जली बनायें। फिर पर्पटी विधि से पर्पटी बना लें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—पाण्डु, ग्रहणी पुरातन अतिसार में।

पंचामृत रस—पारा १ भाग; गन्धक १ भाग; सुहागा ३ भाग; विष ३ भाग

इनको मिलाकर आर्द्रक रस से गोली बनायें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—पानी या आर्द्रक रस।

उपयोग—जलोदर; शोथ में उपयोगी; विशेष करके जनरल ड्रॉप्सी में।

पाण्डुसूदन रस—पारा; गन्धक; ताम्र; जमालगोटा; गुग्गुलु—ये सब समान भाग लेकर कज्जली करके थोड़ा घी मिलाकर (गरम पानी थोड़ा डालकर—जिससे गुग्गुलु मिल जाये)। बटी बनायें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—शोथ और पाण्डु में।

निर्देश—कुछ वैद्य इसमें अभ्रक भी मिलाते हैं। निर्माण समय में गुग्गुलु को पृथक् पानी में घोल कर मिलायें या फिर घी के साथ सम्पूर्ण द्रव्य रगड़ें।

पानीय भक्त बटी—निशोथ; मोथा; त्रिफला; त्रिकटु प्रत्येक ४ तोला; पारा और गन्धक २–२ तोला; लोह; अभ्रक; विडंग; प्रत्येक ८–८ तोला; लेकर त्रिफला के क्वाथ से गोलियाँ बनायें। मात्रा—१ मासा।

उपयोग—पार्श्व शूल उदर शूल, में उपयोगी है।

पाषाणभेद रस—पारा १ भाग; गन्धक २ भाग; शिलाजीत १ भाग; इनको श्वेत पुनर्नवा तथा श्वेत विष्णुक्रान्ता के रस से पृथक्-पृथक् तीन-तीन रगड़कर पात्र में रखकर दोला यंत्र में शुष्क कर लें (वाष्पों से शुष्क करें)। इसका चूर्ण बना लें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र रोग में।

पाषाण वज्र रस—शुद्ध पारा १ भाग; गन्धक २ भाग; कज्जली करके श्वेत पुनर्नवा के रस से एक दिन मर्दन करके गोला बनाकर भूधर यंत्र में दिन भर पकायें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—पुराना गुड़।

उपयोग—अश्मरी में। बाद में पपीता मूल २ तोले का चूर्ण कुलत्थी के क्वाथ से दें।

पिप्ल्यादि लौह—पीपल; आँवला; द्राक्षा; बेर की गिरी; मधु; शर्करा; विडंग; पुष्कर मूल; लौह भस्म ये सब सम भाग लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा—२ मासा। अनुपान—मधु या दूध।

उपयोग—वमन; हिचकी में।

पीतक चूर्ण—मैनसिल, यवक्षार, हरताल; सैन्धव; दारुहल्दी की छाल; इन सबका बारीक चूर्ण घी और मधु में मिलाकर मुख में रखने से—मुख रोग नष्ट होते हैं।

पीतक चूर्ण (मंजन)—कूठ, दारुहल्दी की छाल; लोध, मोथा; मजीठ;

पाठा; कुटकी; तेजवल को छाल या तुम्वरू बीज और हरताल, या मैनसिल का चूर्ण; इनको सम भाग लेकर चूर्ण बना लें।

उपयोग—पायरिया—दाँतों से रक्त तथा दुर्गन्ध आने में उपयोगी है।

पीयूषपल्ली रस—पारा; गन्धक; अभ्रक; रजत; लोह; टंकण; रसौंत; माक्षिक भस्म—४-४ मासे; लौंग, लाल चन्दन; मोथा; पाठा,—जीरा; धनिया; मजीठ; अतीस; लोध; कुटज की छाल; इन्द्र जौ; तज; जायफल; सोंठ; बेल गिरी; शुद्ध धत्तूरे का बीज; अनार की छाल; लज्जालु; धाय के फूल; कूठ; प्रत्येक द्रव्य पारद के बराबर लेकर भांगरे के रस से भावना दें। बाद में सुखाकर बकरी के दूध से पीस लें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—बेल को जलाकर गुड़ के साथ दें।

उपयोग—पुरातन अतीसार; रक्तातिसार में; ग्रहणी में।

पुनर्नवा मण्डूर—पुनर्नवा; निशोथ; त्रिकटु; विडंग; देवदारु; चित्रक; कूठ; हल्दी; त्रिफला; जमालगोटा; चविका; इन्द्र जौ; पिप्पली; पिप्पली मूल; मुस्ता; प्रत्येक १ तोला; मण्डूर भस्म—सारे चूर्ण से दुगनी लेकर गोमूत्र १२८ तोले में पकायें। पाक होने पर बेर के बराबर गोली बनायें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—तक्र।

उपयोग—श्वयथु; ग्रहणी; अर्श; प्लीहा; विषम ज्वर में।

पुरन्दर वटी—पारा १ भाग; गन्धक २ भाग; त्रिकटु; त्रिफला—प्रत्येक द्रव्य १ भाग लेकर बकरी के दूध से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—कास, श्वास; ज्वर में—योगवाही है।

पुष्पधन्वा रस—पारा; सीसा; लोह; अभ्रक; वंग भस्म; शुद्ध धत्तूरे के बीज—मुलेहठी; सिम्बल की जड़; पान की जड़; प्रत्येक सम भाग लेकर पान के रस में मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती; अनुपान–घी, मधु और शक्करयुक्त दूध।

उपयोग—बाजीकरण—शुक्रवर्धक।

पूर्ण चन्द्र रस—(बृहत्)—पारद ४ तोला; गन्धक ४ तोला; लोह भस्म ८ तोला; अभ्रक ८ तोला; रजत २ तोला, वंग ४ तोला; स्वर्ण भस्म १ तोला; ताम्र भस्म १ तोला; कांस्य भस्म १ तोला; जायफल; लौंग, इलायची; भांगरा; जीरा कर्पूर प्रियंगु प्रत्येक २ तोला सब को घीकुंवार के रस से मर्दन करें। बाद में त्रिफला और केबुक (जलकुम्भी या कसेरू) के रस से सात सात भावना दें। फिर एरण्ड पत्रों में लपेट कर धान्यराशि में तीन दिन रखें। निकाल कर उपयोग में लायें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—पान का रस या मधु।

उपयोग—बलकारक; बाजीकरण; ग्रहणी रोग में—पाण्डु रोग में।

निर्देश—केबुक से गुजरात में घी तेल लेते हैं। कई केबुक के स्थान में रूबु-

काना पाठ मानकर एरण्ड मूल से भावना देते हैं। वरातोयैः के स्थान पर वरीतोयैः भी पाठ है। वहाँ शतावरी का रस बरता जाता है।

पूर्ण चन्द्र रस—रस सिन्दूर; अभ्रक; लोहा; शिलाजीत; विडंग; स्वर्ण-माक्षिक; सब समान भाग लेकर पान के रस से या सिम्बल के मूल से भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—मधु; घी और शर्करा मिला दूध।

उपयोग—बाजीकरण।

प्रतापलंकेश्वर—पारा १ भाग; अभ्रक १ भाग; गन्धक १ भाग; मरिच ३ भाग; लोह भस्म ४ भाग; शंख भस्म ८ भाग; जंगली कण्डों की भस्म १६ भाग; शुद्ध वछनाग १ भाग—लेकर मिलायें। मात्रा—३ रत्ती।

उपयोग—प्रसूतिवात; प्रसवोत्तर ज्वर तथा सन्निपात में उपयोगी है।

प्रदरान्तक लोह—लोह भस्म; २ तोला वंग भस्म, खपरिया (अभाव में यशद भस्म); कहरवा, घी में पकाया सोना गेरू; मोचरस; राल—प्रत्येक १ तोला; इनको दूब, अनार और आँवले के रस की सात-सात भावना दें। मात्रा—३ रत्ती। पाषाण भेद के चूर्ण एवं शक्कर मिले दूध से दें।

उपयोग—प्रदर में विशेषतः फलफल है।

प्रदरान्तक रस—पारा; गन्धक; वंग; चाँदी; खपरिया; कौड़ी इन सब की भस्म चार-चार मासे, लोह भस्म ३ तोला; लेकर घीकुंवार के रस में एक दिन मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती।

उपयोग—प्रदर रोग में।

प्रदरारि लोह—कूडा की छाल ४०० तोला लेकर १२ सेर पानी में पकायें। अष्टमांश रहने पर छान लें। इसको अग्नि पर रखकर गाढ़ा बनायें। गाढ़ा-घनक्रिया बनते समय इसमें मजीठ, लज्जावती; मोचरस, पाठा; बेलगिरि; नागरमोथा; धाय के फूल; अतीस; अभ्रक भस्म और लौह भस्म—४–४ तोले मिलाये। मात्रा—३ रत्ती; अनुपान—शर्करा मिला दूध; कुशमूल से साधित दूध।

उपयोग—रक्त प्रदर-श्वेत प्रदर में।

प्रभाकर वटी—स्वर्णमाक्षिक; लोह भस्म; वंशलोचन; शिलाजीत; सब समान भाग लेकर; अर्जुन की छाल के क्वाथ से या स्वरस से मर्दन करें। मात्रा—६ रत्ती। अनुपान—अर्जुन की छाल का क्वाथ।

उपयोग—हृद् रोग में।

प्रमेह (मेह) कुशान्तक रस—वंग, अभ्रक; पारा; गन्धक; चिरायता; पिप्पली मूल; त्रिकटु; त्रिफला; त्रिवृत्त; रसौंत; विडंग; मोथा; बिल्वगिरी;

गोखरू; अनार की छाल; प्रत्येक एक तोला; शिलाजीत ४ तोला; इनको एरण्ड खरबूजे के मूल के स्वरस से मर्दन करें। मात्रा—१ मासा।

उपयोग—सब प्रकार के प्रमेहों में—शुक्र तारल्य में।

प्रवाल पञ्चामृत—मोती, शंख, शुक्ति; कौड़ी— प्रत्येक सम भाग; प्रवाल मोती से दुगना लेकर अर्क के दुग्ध से मर्दन करें। इसको पुट दें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—मधु।

उपयोग—गुल्म; उदर; अम्लपित्त; प्रमेह; मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी है।

निर्देश—इसको दो प्रकार से बनाते हैं। प्रथम विधि में प्रवाल आदि के बराबर आक का दूध लेकर इसको एक पात्र में रखकर पुट देते हैं। गज पुट प्रायः देना होता है। दूसरी विधि में—आक के दूध की भावना देकर सम्पुट करके पुट देते हैं। ठण्डा होने पर निकाल लेते हैं।

प्रवाल योग—प्रवाल, मोती; सौवीरांजन—शंख भस्म—सोनो गेरू इनको मिलाकर चूर्ण बनायें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—गोमूत्र या दूध या मक्खन (क्षीरसर्पि—क्रीम)।

उपयोग—पाण्डु एवं रक्त स्राव में।

निर्देश—कुछ लोग इसमें स्वर्ण गेरू नहीं भी मिलाते हैं किन्तु मिलाने से अच्छा लाभ करता है। पाठ में अंजन है इससे सौवीरांजन या सामान्य सुरमा (एन्टीमनी या लड़ैका) लेते हैं। जो भी हो उसको शुद्ध कर लेना चाहिये। अंजन गरम करके त्रिफला क्वाथ में निर्वापित करने से शुद्ध हो जाता है।

(सिद्ध) प्राणेश्वररस—शुद्ध गन्धक; पारा; अभ्रक; प्रत्येक ४ भाग—सर्जीक्षार, यवक्षार, पाँचों नमक (सैन्धव; सेचल; विड, साम्भर, सामुद्र) त्रिफला, त्रिकटु; इन्द्रजी जीरा; काला जीरा; चित्रक, अजवायन; हींग; विडंग, सौंफ प्रत्येक का चूर्ण १ भाग; इनको जल से पीसकर गोली बनायें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—अतिसार, ज्वरातिसार, शूल (विष्टम्भ) में उपयोगी है।

प्लीहान्तक—ताम्र भस्म; अभ्रक; चाँदी; लोह; शुक्ति; हिंगुल; पोहकर मूल, पारा और गन्धक, गुग्गुलु; त्रिकटु; रास्ना, जयपाल बीज; त्रिफला, कुटकी; दन्ती; देवपाली; सैन्धव, त्रिवृत्त, यवक्षार, सब सम भाग लेकर एरण्ड तैल से मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती।

उपयोग—उदर रोग—प्लीहा, शोथ में।

निर्देश—पारा-गन्धक की कज्जली बनाकर शेष भस्में मिलाकर खरल करें। बाद में सबके चूर्ण मिलाकर एरण्ड तैल से मर्दन करें।

प्लीहारि रस—पारद, गन्धक; सुहागा; विष; त्रिकटु; त्रिफला प्रत्येक एक-एक तोला; जयपाल सबसे आधा लेकर ढाक के रस से (छाल के क्वाथ या रस से) मर्द्दन करें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—गुल्म, प्लीहावृद्धि में; उदावर्त्त में।

वाकुच्यादि लोह—वाकुची; त्रिफला; पिप्पली; विडंग, तुलसी, गिलोय, लोह भस्म सब समान भाग लेकर चूर्ण करें। मात्रा—अवस्थानुसार।

उपयोग—रसायन, श्वेतकुष्ठ में उपयोगी है।

बाल रोगान्तक (बालरस)—पारा, गन्धक १-१ भाग, स्वर्णमाक्षिक आधा भाग, इनको भांगरे के रस से, सँम्भालु के पत्तों से, मकोय के रस से, हरमल, दुरुहुल, पुनर्नवा, मण्डूक पर्णी, श्वेत कोयल के स्वरस से भावना दें। इसमें पारा से आधा मरिच का चूर्ण मिलायें। मात्रा—सरसों के बराबर। (आधी रत्ती)।

उपयोग—बच्चों की खांसी, ज्वर में तथा दाँत निकलने में उपयोगी है।

वालार्क रस—खपरिया (अभाव में यशद भस्म) प्रवाल, शृंगभस्म, हिंगुल कचूर एक-एक तोला, केसर- सब के बराबर लेकर जल से मर्दन करें। मात्र—½ रत्ती। अनुपान—जल।

उपयोग—वात कफ रोगों, अतिसार, कृमि, कास में।

वोल पर्पटी (वोलवृद्ध रस)—पारा, गन्धक, की कज्जली बना कर पर्पटी बनायें। फिर इसके बराबर-वोल-हीरादवूवन का चूर्ण मिलायें। मात्रा—६ रत्ती, अनुपान—शक्कर और मधु।

उपयोग—रक्तपित्त, रक्तस्राव, योनि से रक्त आने पर।

निर्देश—वोल के लिये खून खराबा नाम अधिक प्रचलित है।

ब्राह्मी बटी—तज, जायफल, लौंग, मरिच, लोह भस्म, जावित्री, सोंठ, अकरकरा, धनिया, गज पीपल, चित्रकमूल अजमोद, वच, मीठी कुठ, तुम्बरू, चिरायता, शुद्ध हिंगुल, अगर, असगन्धा, अम्बर, मोती, वंशलोचन, स्याह जीरा, पिप्पली मूल, विडंग, माणिक्य भस्म, सौंफ, श्वेत चन्दन, चन्द्रोदय, पोहकरमूल, कस्तूरी, शतावर, कहरवा, नीलम की भस्म, निशोथ, मूँगे की भस्म, अजवायन, खुरासानी अजवायन, संगयशभ की भस्म—चार-चार मासे, ब्राह्मी २ तोले, सुवर्ण भस्म ४ मासे, इनको ब्राह्मीरस की एक भावना देकर मधु के साथ गोली बनायें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—रोगानुसार।

उपयोग—अपस्मार, उन्माद, चित्तविभ्रम, यक्ष्मा, धनुर्वात तथा वात रोगों में।

भुवनेश्वर बटी—सैन्धव, त्रिफला, अजवायन, वेल की मज्जा (गिरी), गृहधूम

सब सम भाग लेकर जल से मर्दन कर लें। (मात्रा—१ मासा । अनुपान—जल ।

उपयोग—अतिसार तथा अपचन में ।

भागोत्तर बटी—पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, पिप्पली ३ भाग , हरड़ ४ भाग, बहेड़ा ५ भाग, वांसा ६ भाग, भार्गी ७ भाग, इन सब के चूर्ण को बब्बूल के क्वाथ से २१ बार भावित करें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—पिप्पली और भटकटैया की क्वाथ।

उपयोग—कास, श्वास में ।

भैरव रस—पारा, गन्धक, मीठा विष, टंकण, मरिच, चव्य, चित्रक, सम भाग लेकर आर्द्रक रस से मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—जल।

उपयोग—स्वरभेद, श्वास तथा कास में,

मकरध्वज रस—रस सिन्दूर, स्वर्ण, लोह, लौंग, कपूर, जायफल, कस्तूरी, सम भाग लेकर पान के रस से मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती।

उपयोग—नपुंसकता, धातुक्षय, कास, जीर्णज्वर में ।

मन्मथाभ्ररस—पारा, गन्धक ४–४ तोला, अभ्रक–२ तोला, कर्पूर १ तोला, लौंग–४ मासा, ताम्र भस्म, ६ मासा लोह भस्म १ तोला, विधारा, विदारी, शतावरी, ताल मखाना, वला, केवाच, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, भांग के बीज, राल, अजवाइन—ये प्रत्येक ४–४ मासे लेकर पानी से रगड़ें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—शक्कर मिश्रित गरम दूध ।

उपयोग—वाजीकरण शुक्रवर्धक, कामशक्ति को बढ़ाता है ।

मल्ल सिन्दूर—शुद्धपारा और रस कपूर ९–९ मासा; सफेद संखिया ४ मासा, शुद्ध गन्धक ६ मासा, लेकर कज्जली करके वालुका यंत्र में पकायें। मात्रा—१ रत्ती, अनुपान—रोगानुसार

उपयोग—श्वास, पाण्डु, वात रोगों में ।

महा गन्धक—पारा–१ तोला, गन्धक–१ तोला, लेकर पर्पटी बनायें। इसमें जायफल, जावित्री, लौंग, नीम तथा सम्भालु के पत्ते, इलायची प्रत्येक का चूर्ण १–१ तोला मिलायें। फिर पानी से मर्दन करके, इसको सुखा कर—मोती की सीप में रख कर–पुटपाक विधि से पाक करें। मात्रा –६ रत्ती।

उपयोग—बालकों के अतिसार, दाँत निकलने के समय, ग्रहणी में यकृत रोग में उपयोगी है ।

माणिक्य रस—तवकी हरताल को कुष्माण्ड के रस में दोला यंत्र से स्वेदन देकर शुद्ध कर लें। फिर इसका दरदरा चूर्ण बना लें। एक हाँडी में अभ्रक पत्र रख कर उस

पर यह चूर्ण फैला कर अभ्रक पत्र से इसे ढाँक दें। इस पर पुनः हरताल का चूर्ण बिछा कर अभ्रक पत्र रखें। इस प्रकार भरकर हांडी का मुख शराव से बन्द करके, सन्धि को बेरी के पत्तों के कल्क से बन्द करके चूल्हे पर रख दें। जब नीचे का पात्र लाल हो जाये तब आग देना बन्द करके ठण्डा होने दें। फिर खोल कर अभ्रक के पत्तों के बीच से इसको उतार लें। यही माणिक्य रस है। मात्रा—१ से ३ रत्ती।

उपयोग—ज्वर में, वातरक्त, कुष्ठ में।

निर्देश—आजकल अभ्रक पत्तों के बीच में हरताल रख कर स्प्रिट लैम्प या कोयलों पर गरम करके सीधा ही इसको बना लेते हैं।

मकरध्वज रस (चूर्ण चन्द्रोदय, या चन्द्रोदय रस)— स्वर्णपत्र ८ तोला, पारद ६४ तोले, गन्धक १२८ तोले लेकर कज्जली बना कर—कपास के लाल फूलों के रस से (अभाव में घीक्वार के रस से) मर्दन कर लें, वालुका यंत्र में पाक करें। इस औषध के ८ तोले, कर्पूर ८ तोला, जायफल, मरिच, लौंग, कस्तूरी प्रत्येक ६ मासा, मिला कर जल से मर्दन करके (पान के रस से उत्तम है) गोली २ रत्ती की बनायें। मात्रा—१ से २ रत्ती। अनुपान—मधु, मलाई।

उपयोग—वाजीकरण, रतिशक्ति वृद्धि करता है।

महा ज्वरांकुश—पारा, गन्धक, मीठा विष, १–१ तोला, धतूरे के बीज ३ तोला, त्रिकटु १२ तोला, मिलायें। इसको निम्बू और आर्द्रक रस से भावना दें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—मलेरिया के सब रूपों में उपयोगी है।

मृत्युंजय रस—गोमूत्र शोधित मीठा विष १ भाग, काली मिर्च, पिप्पली, गन्धक, सुहागा–प्रत्येक १ मासा, हिंगुल (निम्बू रस से शोधित) २ भाग, इसको आर्द्रक रस से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—ज्वर में, प्रतिश्याय में, इन्फ्लुएन्जा में उपयोगी है।

महा मृत्युञ्जय लौह—पारा, गन्धक, अभ्रक भस्म—तीनों १–१ तोला, लोह भस्म २ तोला, ताम्र भस्म ४ तोला, सर्जक्षार, यवक्षार, सैन्धव, विड नमक, कोड़ी भस्म, शंख भस्म, चित्रक, मैनसिल, हरताल, हींग, कुटकी, रोहेड़ा, त्रिवृत्, इमली की छाल, इन्द्रायण की जड़, अंकोठ, अपामार्ग क्षार, ताल जटाक्षार, अमलतास, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियगु, इन्द्र जौ, हरड़, अजमोद, अजवायन, तुत्थ भस्म, शरपुंखा, रोहितक छाल, रसौत, प्रत्येक ४–४ मासा; लेकर इसको आर्द्रक रस और गिलोय रस की भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—मधु।

उपयोग—प्लीहा वृद्धि के साथ ज्वर, उदर रोग, श्वयथु, कामला, पाण्डु में उत्तम है।

मुक्ता पंचामृत—मुक्ता ८ भाग, प्रवाल ४ भाग, वंग २ भाग, शंख और शुक्ति–१–१ भाग लेकर; इनको ईख के रस, गाय का दूध, विदारी, घीक्वार; तुलसी, हंसराज के रस से मर्दन करके, पांच मृदु पुट दें। मात्र—४ रत्ती। अनुपान—पिप्पली चूर्ण और मधु।

उपयोग—राजयक्ष्मा तथा जीर्ण ज्वर में।

मूर्च्छान्तक—रस सिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक, स्वर्ण भस्म, शिलाजीत, लोह भस्म, सब समान भाग लेकर, शतावरी, विदारी के स्वरस से सात भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—ब्राह्मी रस या जटामासी क्वाथ।

उपयोग—बार-बार मूर्च्छा आने, रक्तचाप के बढ़ने तथा चित्त-भ्रम में उपयोगी है।

मेहमुद्गर रस—रसौत, विड़ नमक, देवदारु; गोखरू, वेलगिरी की मज्जा, अनार की छाल, चिरायता, पिप्पली मूल, त्रिकटु, त्रिफला, निशोथ, प्रत्येक १ तोला, लोह भस्म सब के बराबर, गुग्गुलु ४ तोला, मिलाकर घृत से बटी बनायें। मात्रा—४ रत्ती।

उपयोग—प्रोस्टेट के बढ़ने पर मूत्रकृच्छ्र की अवस्था में उपयोगी है।

मृगाङ्क रस—पारद १ तोला, स्वर्ण भस्म १ तोला; मुक्ता भस्म २ तोला, गन्धक २ तोला; सुहागा २ मासा इनको एकत्र करके कांजी से मर्दन करके गोला बनायें। इसको सुखाकर भूषा में बन्द करके लवण यंत्र में ४ प्रहर तक पाक करें। शीतल होने पर निकाल लें। मात्रा–१ से २ रत्ती। अनुपान–पिप्पली चूर्ण या काली मिर्च २ रत्ती और मधु।

उपयोग—यक्ष्मा रोग में रक्त आने पर तथा जीर्ण ज्वर में।

मृगाङ्क (स्वल्प)—रस सिन्दूर, स्वर्ण भस्म दोनों सम भाग करें, मात्रा १/२ से १ रत्ती, अनुपान–पिप्पली चूर्ण और मधु।

उपयोग– क्षय, जीर्ण ज्वर, में विशेष लाभ करता है।

योगेन्द्र रस–रस सिन्दूर १ तोला, स्वर्ण, लोह, अभ्रक, मुक्ता भस्म, वंग भस्म, प्रत्येक ६–६ मासा, इनको घीक्वार के रस से मर्दन करके धान्यराशी में तीन दिन रखें। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान–त्रिफला क्वाथ।

उपयोग—प्रमेह, अपस्मार, रक्तचाप का बढ़ना, उन्माद, मूर्च्छा में उपयोगी।

यकृत् प्लीहारि लोह—पारा, गन्धक, लोह, अभ्रक प्रत्येक १ तोला, ताम्र

भस्म २ तोला; मनःशिला, हल्दी, जयपाल; सुहागा, शिलाजीत प्रत्येक एक-एक तोला, इनको दन्तीमूल; निशोथ, चित्रक, सम्भालु-त्रिकूट, आद्रक, भांगरे के रस से अलग-अलग भावना दें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—प्लीहा वृद्धि, यकृत् वृद्धि, उदर रोग में।

यकृदरि लोह—लोह भस्म ४ तोले, अभ्रक भस्म, ४ तोले, ताम्र भस्म २ तोले, नीम्बू की जड़ की छाल ८ तोले, मृगचर्म भस्म ८ तोले, इनको जल से मर्दन करें। मात्रा–२ से ४ रत्ती।

उपयोग—प्लीहोदर, उदर रोग तथा हलीमक में।

निर्देश—निम्बू के जड़ की छाल के स्थान पर गलगल के छिलके का चूर्ण मिलाकर काम ले सकते हैं।

यक्ष्मारि लौह—स्वर्णमाक्षिक भस्म, विडंग, शिलाजंतु, हरड़ का चूर्ण प्रत्येक १ तोला, लोह भस्म ४ तोला, लेकर मधु से या घीक्वार से रगड़ लें। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान–घृत और मधु।

उपयोग—यक्ष्मा रोग, जीर्ण ज्वर, पाण्डु में उत्तम है।

योगराज रस—त्रिफला मिलित ३ भाग, त्रिकटु ३ भाग, चित्रक मूल १ भाग, वायविडंग १ भाग, शिलाजीत ५ भाग, रोप्य माक्षिक भस्म ५ भाग, स्वर्ण माक्षिक भस्म ५ भाग, लोह भस्म ५ भाग, खांड ८ भाग, इनको बारीक करके मधु से मिलायें। मात्रा–४ रत्ती।

उपयोग—पाण्डु, कामला, हलीमक तथा प्रमेह में लाभकारी है।

निर्देश—लोह भस्म के स्थान पर मण्डूर भस्म पूर्ण मात्रा में, या दोनों को आधा-आधा मिला कर बनाने से अच्छा रहता है।

रक्तपित्त कुलकण्डिन (रक्त पित्त कुठार)–पारा, गन्धक, प्रवाल, सुवर्णमाक्षिक, नाग, वंग इनकी भस्में परस्पर समान भाग लेकर, श्वेत चन्दन, कमल, मालती फूल, अडूसे के पत्ते, धनिया, गज पीपल, शतावर, सेमल की जड़, वट की जटा, गिलोय इनमें जो मिले—उसके रस से भावना (तीन-तीन) दें। मात्रा—१ मासा। अनुपान–अडूसा का स्वरस और मधु।

उपयोग—रक्तस्राव, दाह तथा तृषा में।

रक्तपित्तान्तक—अभ्रक, मुण्ड लौह भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, पारद, हरिताल, गन्धक प्रत्येक सम भाग, इनको मुलहेठी, मुनक्का, गिलोय रस से एक-एक भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान–शर्करा और मधु।

उपयोग—रक्तपित्त रोग में।

रजः प्रवर्त्तनी वटी—एलुवा, हींग, सुहागा, इनको समभाग लेकर घीक्वार के रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—गरम जल, (इसमें कुछ निर्माणवर्त्ती कासीस मिलाते हैं)।

उपयोग—आर्त्तवरोध, रजः कृच्छ्रता में।

रत्नगिरी रस—शुद्ध पारद, अभ्रक, स्वर्ण, ताम्र, चाँदी, स्वर्ण माक्षिक भस्म एक-एक तोला, गन्धक १२ तोला, इनको भांगरे के रस में मर्दन करके, पर्पटी विधि से केले के पत्र पर पर्पटी बना लें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—मधु और पिप्पली।

उपयोग—जीर्ण ज्वर, यक्ष्मा, श्वास, कास में।

रत्नेश्वरो रस—हीरक भस्म, वैक्रान्त, अभ्रक, रससिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक, रजत, मुक्ता, स्वर्ण भस्म इनको सम परिमाण लेकर ईख, शतावर, विदारी स्वरस से भावना दें। मात्रा–१ रत्ती। अनुपान–त्रिफला जल।

उपयोग—स्नायु रोग (नर्व रोग), संन्यास (कोमा) अवस्था में विशेष लाभ करता है।

रसराज—पारा ४ तोला, अभ्रक १ तोला, स्वर्ण ६ मासा, इनको घीक्वार के रस से मर्दन करे। इसमें लोह, रजत, वंग, असगन्ध, लौंग, जावित्री, क्षीरकाकोली ये सब ४–४ मासे मिला कर मकोय के रस से २–३ दिन मर्दन करें। मात्रा–४ रत्ती। अनुपान–शक्कर मिला दूध।

उपयोग—खींचतान-नसों में खींचावट, वात व्याधि में, उपयोगी है, शुक्रवर्धक है।

रस पर्पटी—हिंगुलोत्थ पारद अथवा पूर्ण शुद्ध पारद लेकर उससे द्विगुण गन्धक लेकर कज्जली बनायें। कज्जली को घृत लगे लोह पात्र में पिघला कर गोबर पर बिछायें केले के हरे कोमल पत्र (जो पत्ता अभी लिपटा होता है–खुला नहीं होता) उस पर पतला बिछा दें। इसके ऊपर तुरन्त दूसरा केले का पत्ता रख कर हथेली से दबा दें। शीतल होने पर ले लें। मात्रा–१ रत्ती से प्रारम्भ करके ८ रत्ती तक बढ़ायें।

उपयोग—ग्रहणी (कोलायटिस) में, तथा अजीर्ण, अतिसार में।

निर्देश—इसके लिये पारद हिंगुलोत्थ तथा भृङ्गराज के रस में शोधित गन्धक लेना उत्तम है।

रस सिन्दूर—पारद–४ तोला, गन्धक ४ तोला लेकर कज्जली करें, इसको वटाङ्कुरों से तीन भावना दें। फिर वालुका यंत्र में इसका पाक कर लें। शीशी के गले में लगी लाल रंग की औषध रस सिन्दूर है।

निर्देश—इसी विधि से पारद से दुगनी, तिगुनी, चारगुणी, छै गुणी गन्धक

जारित करने से द्विगुण त्रिगुण, षड्गुण, चतुर्गुण रस सिन्दूर बनता है। कोई-कोई इसमें नौशादर १ तोला मिलाते हैं। इससे रंग में लाली अधिक आती है।[1]

रसेन्द्र चूर्ण—रस सिन्दूर ८ तोला, वंशलोचन, मुक्ता, स्वर्ण, प्रत्येक आधा तोला, अफीम ६ मासा। मात्रा—२ से ४ रत्ती। अनुपान–दूध।

उपयोग—पुरातन अतिसार, ग्रहणी में।

निर्देश—अफीम को पानी में घोल कर उससे भावना देनी चाहिए।

रामबाण रस—पारा, मीठा विष, लौंग, गन्धक प्रत्येक १ तोला; काली मिर्च २ तोला, जायफल ६ मासा, इमली के रस से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान–गरम जल।

उपयोग—अजीर्ण, अग्निमान्द्य में।

राजमृगांक—रस सिन्दूर ३ भाग स्वर्ण भस्म १ भाग, ताम्र भस्म १ भाग, मन:शिला, हरताल, गन्धक, इनको एकत्र मिलाकर उत्तम कौड़ियों में बन्द कर दें। कौड़ियों के मुख पर बकरी के दूध में पीसा सुहागा लगा कर बन्द कर दें। पुटपाक विधि से कौड़ियों को मृत्पात्र में रख कर गज पुट दें। शीतल होने पर निकाल कर मर्दन करें। मात्रा १ रत्ती। अनुपान–मधु और घृत।

उपयोग—राजयक्ष्मा में तथा जीर्ण ज्वर में।

निर्देश—कुछ ग्रन्थों में ताम्र भस्म के स्थान पर क्षार भस्म–चांदी की भस्म का उल्लेख है, परन्तु उत्तम ताम्र भस्म बरतना है।

रोहितक लौह—रोहितक छाल, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद (वायविडंग, मोथा, चित्रक) में से प्रत्येक समभाग लेकर सब के बराबर लोह भस्म मिलायें। मात्रा –२ रत्ती।

उपयोग—प्लीहा रोग तथा शोथ में।

लक्ष्मी विलास रस—(नारदीय)—कृष्णभ्र भस्म—४ तोला, कज्जली २ तोला, कर्पूर, जावित्री, जायफल, २ तोला प्रत्येक; विधारा बीज; धतूर बीज, भंगा बीज; विदारी कन्द, शतावरी, नागवला, अतिवला, गोखरू, हिज्जलबीज प्रत्येक १ तोला–पान के रस से मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान–आर्द्रक रस या पान का रस और मधु।

---

१. भागो रसस्य त्रय एव भागा गन्धस्य माषः पवनाशनस्य। इस पाठ में पारा १ कर्ष, गन्धक ३ कर्ष, नौसादर १ मासा है। रसयोग सागर में पवनाशन का अर्थ सीसक किया है। परन्तु रससिन्दूर विधान में नौशादर ही उचित लगता है।

उपयोग—प्रतिश्याय; अक्षिशोथ, ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों में।

निर्देश—नागबला के स्थान पर बला या अतिबला और हिज्जल बीज के स्थान पर वेतस के बीज उपयोग में लाने चाहिये।

महालक्ष्मी विलास—लोह, अभ्रक, विष-वछनाग, नागरमोथा, त्रिफला, त्रिकटु, धत्तूर बीज, विधारा बीज, इन्द्र जौ, गोखरू, बेड़ा गोखरू, पिप्पलीमूल सब समभाग लेकर धतूरे के रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—आर्द्रक रस और मधु।

उपयोग—ज्वर प्रतिश्याय, इन्फ्लुएन्जा, नाक से पानी आने में, कफजन्य ऊर्ध्व-जत्रु के सब रोगों में उपयोगी है।

लाई चूर्ण (नायिका चूर्ण)—शुद्ध गन्धक १ तोला, पारा ८ मासा, त्रिकटु ३ तोला, पाँचों नमक ८–८ मासे, भुनी भाँग सब के बराबर मिलायें। मात्रा—४ मासे। अनुपान-काँजी।

उपयोग—मन्दाग्नि तथा अतिसार में।

(२) पाँचों नमक (सैन्धव, साम्भर, सेचल, विड़, उद्भिद) १–१ तोला, त्रिकटु ३ तोला, गन्धक १ मासा; पारा ४ मासे; भुनी भाँग ४ तोले लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—हल्का मद्य या काँजी।

उपयोग—अग्निवर्धक, ग्रहणी, अतिसार में लाभदायक है।

लघ्वानन्द रस—पारद, गन्धक, लोह, अभ्रक, विष—समान भाग, मरिच ८ भाग, सुहागा ४ भाग लेकर भृङ्गराज के रस से सात भावना देकर अनार के रस के साथ गोली बनायें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—भ्रम, चक्कर आना, स्मृतिनाश में उपयोगी।

लीला विलास—पारद, गन्धक, अभ्रक, ताम्र, लोह, इनको सम परिमाण में लेकर आँवला और बहेड़े के रस से तीन दिन मर्दन करें। फिर भाँगरे के रस से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—अम्लपित्त, आमाशय प्रदेश का विदाह; वमन, शूल नष्ट होता है।

लोकनाथ रस—पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, इनकी कज्जली करें, अभ्रक भस्म १ तोला, लोह भस्म २ तोला, ताम्र २ तोला, कौड़ी भस्म ४ तोला, इसको पान के रस से मर्दन करके लघु पुट दें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—यकृत्-प्लीहावृद्धि में शोथ में।

लोकनाथ (वृहत्)—पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, कज्जली बनायें, अभ्रक १ तोला, इनको घीक्वार से मर्दन करें, इसमें २ तोला ताम्र, २ तोला लोह मिलायें।

कौड़ी भस्म ९ तोला मिलाकर मकोय के रस से मर्दन करके गोला बनायें। लघु पुट दें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—प्लीहावृद्धि में तथा शोथ में।

लोह रसायन—मूसली, त्रिफला, खदिरकाष्ट, अडूसा, निशोथ, मुण्डी, निर्गुण्डी, चित्रक, सेहण्ड की जड़ तथा पोटली में बंधा गुग्गुलु १ सेर, जल १ मन २४ सेर, शेष १६ सेर, इसमें खांड ६४ तोले और पहला गुग्गुलु मिलायें। इसको ताम्र पत्र में ३ सेर ४ छटांक घी में डाल दें। जब सब एक लेह के रूप में बन जाये, तब इसमें लोह भस्म ९६ तोले मिलायें। जब पूर्ण अवलेह बन जाये तब उतार कर ठण्डा करें। इसमें शहद १२ छटाँक, शिलाजीत १६ तोला; छोटी इलायची ४ तोला, दालचीनी ४ तोले, वायविडंग १६ तोले, काली मिर्च १६ तोले, त्रिफला प्रत्येक १६ तोला, कासीस भस्म १६ तोले, मिलाकर चिकने पात्र में रख दें। मात्रा–१ मासा।

उपयोग—स्थूलतानाशक, मेदो वृद्धि कम करता है। रसायन वल्य है।

निर्देश—लोह भस्म को पहले घी में मिलाकर ताम्र पात्र में मिला लें। बाद में क्वाथ, खाण्ड डाल कर अवलेह के रूप में पाक करें।

लोह पर्पटी—पारद २ तोला, गन्धक २ तोला लेकर कज्जली करें। इसमें २ तोला लोह भस्म मिला कर पर्पटी विधि से पाक कर लें। मात्रा—१ रत्ती से प्रारम्भ करके ८ रत्ती तक।

उपयोग—पुरातन संग्रहणी, अतीसार तथा पाण्डु में।

वंगाष्टक—पारा, गन्धक, लोह, चाँदी, खर्पर, अभ्रक, ताम्र सब एक-एक भाग और सबके बराबर वंग भस्म लेकर इनको मिलाकर (घीक्वार के रस से मर्दन करके) गोला बनाकर गजपुट में आँच देवें मात्रा–२ रत्ती, **अनुपान**–मधु के साथ, हल्दी का रस या आँवले का स्वरस साथ में पियें।

उपयोग—सब प्रकार के प्रमेहों में उपयोगी है।

वंगेश्वर रस—वंग भस्म, लोह भस्म, अभ्रक, नागकेशर प्रत्येक एक-एक तोला; इनको घीक्वार के रस से मर्दन करें। सात भावना दें। मात्रा–१ से २ रत्ती। अनुपान–मधु के साथ।

उपयोग—प्रमेह, शुक्र तरलता तथा स्वप्नदोष में।

वंगेश्वर रस (वृहत्)—पारद, गन्धक, लोह, अभ्रक, स्वर्ण, वंग, मुक्ता और स्वर्ण माक्षिक, इनको सम परिणाम में मिलाकर घीक्वार के रस में मर्दन करें। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान–हल्दी का रस और मधु।

उपयोग—प्रमेह में, ओजोक्षय में, वीर्यस्राव में।

वसन्त कुसुमाकर—स्वर्ण २ तोला, रजत २ तोला, वंग-नाग-लोह भस्म ३–३ तोला, अभ्रक, प्रवाल, मुक्ता ४–४ तोला, इनको गो दूध, ऊख का रस, अडूसा, लाख रस, खस, केले का रस, केले का फूल, इन सात द्रव्यों से सात-सात भावना देवें, पीछे कमल पुष्प, मालती पुष्प से एक-एक भावना दें। अन्त में कस्तूरी १ तोला, केशर १ तोला, पीसकर मिलायें। मात्रा—१ से २ रत्ती। अनुपान—मधु।

उपयोग—वल्य, रसायन, मधुमेह रोग तथा मनोदैन्य में।[1]

वसन्ततिलक रस—लोह, वंग, स्वर्णमाक्षिक, सुवर्ण, अभ्रक, प्रवाल, चांदी, मुक्ता, जायफल, जावित्री, इनको समान भाग लेकर इसमें सम भाग चतुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर) मिलायें। इसको त्रिफला क्वाथ से भावना दें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—विसूचिका, अपस्मार, प्रमेह।

वातकुलान्तक—कस्तूरी, मनःशिला, नागकेशर, बहेड़ा, पारद, गन्धक, जायफल, इलायची, लौंग, प्रत्येक १ तोला लेकर जल से पीस लें। मात्रा–१/२ से १ रत्ती।

उपयोग—अपस्मार, मूर्च्छा, बार बार आने में।

वात गजांकुश—रस सिन्दूर, लोह, स्वर्णमाक्षिक, गन्धक, हरताल, हरड़, काकड़ाशृंगी, मीठा विष, त्रिकटु, अग्निमन्थ, सुहागा, इनको समभाग लेकर निर्गुण्डी, गोरखमुण्डी के रस से भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—पिप्पली चूर्ण और जिगणी क्वाथ पीये।

उपयोग—वातव्याधि में देना उपयोगी है।

वरुणाद्य लोह—वरुणा छाल २ तोला, आँवला १ तोला, धावड़ी के फूल और हरड़ ३–३ मासे, पृश्निपर्णी, लोह, अभ्रक, १–१ मासा मिलायें। इसे ४ मासे की मात्रा में व्यवहार में लायें।

उपयोग—मूत्राघात, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र में।

वात चिन्तामणि (वृहत्) स्वर्ण ३ भाग, रजत २ भाग, अभ्रक २ भाग, लोह ५ भाग, मूँगा भस्म ७ भाग, मोती ३ भाग, रस सिन्दूर ७ भाग, इनको घीक्वार के रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—वातरोग, उन्माद में।

---

१. रसामृत के पाठ में—रस सिन्दूर, ४ तोला और मिलाया है, इसको कमलश्वेत, चन्दन श्वेत, चमेली पुष्प, वासा स्वरस, हरिद्रास्वरस, शतावरी क्वाथ कदली स्वरस से भावना देना लिखा है। पीछे केसर २ भाग और मिलायें।

निर्देश—त्रैलोक्य चिन्तामणि नाम से भी इसका उल्लेख मिलता है।

वसन्त मालती (स्वर्ण)—स्वर्ण १ भाग, मुक्ता २, हिंगुल ३, काली मिर्च ४, खर्प्पर भस्म ८ भाग, लेकर मक्खन के साथ मर्दन करें। बाद में निम्बू रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—पिप्पली चूर्ण और मधु।

उपयोग—जीर्णज्वर और यक्ष्मा में।

निर्देश—मक्खन—दही जमाकर बनाया नवनीत लेना चाहिए। दूध से निकला क्षीर सर्पि या क्रीम से नहीं। मक्खन इतना डालें कि मर्दन में स्निग्धता आ जाये। वजन बढ़ाने के लिये न डालें। निम्बू का रस इतना डालें कि यह चिकणता निकल जाये। अन्यथा गोलियों के ऊपर-सफेद चिकनापन आता है। निम्बू रस को नितार कर व्यवहार में लायें।

वात विध्वंसन रस—पारद १, अभ्रक २, कांस्य ३, स्वर्ण माक्षिक ४, गन्धक ५, हरताल ६, इनको क्रमशः एक-एक भाग बढ़ाकर लें। इसको एरण्ड तैल से मर्दन करें। बाद में गोलाकार करें। फिर तिलों को निम्बू रस से पीसकर इनका लेप गोले पर कर द। सूख जाने पर इसे वालुका यंत्र में रखकर १२ घन्टे तक पकायें। शीतल होने पर निकाल लें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—श्वास, कास, गुल्म, आनाह, उदावर्त्त, उदर रोग में।

विजय पर्पटी—भांगरे के रस में शोधित गन्धक ८ तोला, पारद ४ तोला, रजत-भस्म २ तोला, स्वर्ण भस्म १ तोला, वैक्रान्त १/२ तोला, मुक्ता भस्म १/२ तोला लेकर इनसे पर्पटी विधि से पर्पटी बनायें। मात्रा—१/२ से २ रत्ती।

उपयोग—ग्रहणी, पुरातन आँत्रशोथ में तथा आँत्रव्रणों में।

विद्याधर रस—मैनशिला, हरिताल, स्वर्ण माक्षिक, गन्धक, पारा, ताम्र भस्म सब समान भाग लेकर पिप्पली क्वाथ और सेहुण्ड के दूध से एक-एक दिन मर्दन करें। मात्रा—४ रत्ती से ८ रत्ती। अनुपान—गोमूत्र।

उपयोग—गुल्म तथा उदावर्त्त में।

विद्याराभ्र—विडंग, त्रिफला, मुस्ता, गिलोय, दन्ती, निशोथ, चित्रक, त्रिकुट, प्रत्येक एक-एक तोला, मण्डूर १६ तोला, अभ्रक भस्म ४ तोला, पारा १ तोला, गन्धक १ तोला लें। इसको घी और मधु से मर्दन करें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—गाय का दूध।

उपयोग—अम्लपित्त; यक्ष्मा, अजीर्ण में।

विश्वेश्वर रस—स्वर्ण, अभ्रक, लोह, वंग, पारा, गन्धक, वैक्रान्त, ये सब एक-एक

तोला लेकर मिलायें। इसको कर्पूर जल से भली प्रकार भावना दें। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती।

उपयोग—हृदयरोग, फेफड़ों तथा अल्प प्राणता में।

विषम ज्वरान्तक लोह्—पारा २ तोला, गन्धक २ तोला, ताम्र भस्म १ तोला, स्वर्ण माक्षिक १ तोला, लोह भस्म ६ तोला। इनको जयन्ती पत्र रस, तालमखाना, वासापत्र, आर्द्रक और पान के रस की अलग-अलग भावना दें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—पुरातन ज्वर में, अग्निमान्द्य रहने पर तथा निर्बलता में।

विषम ज्वरान्तक लोह (पुटपक्व)—पारद १ तोला तथा अन्धक १ तोला, इनका पर्पटी विधि से पाक करें। इसमें स्वर्ण भस्म २४ रत्ती, लोह भस्म २ तोला, ताम्र २ मासा, अभ्रक २ मासा, वंग ६ मासा, प्रवाल भस्म ६ मासा, मुक्ता भस्म, शंख, शुक्ति ये प्रत्येक ३–३ मासा, मिलाकर, मोती के सीप में रखकर पुटपाक विधि से पकायें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—पुरातन-जीर्णज्वर, ग्रहणी, यक्ष्मा तथा पाण्डु में।

निर्देश—सब द्रव्यों को मिलाकर जल या घीक्वार से मर्दन करके गोला बनाकर शुष्क कर लें। इसको मोती-सीप में (सीप में जहाँ मुक्ता बैठती है—उसमें) रख कर पुटपाक विधि से पकायें। जब गन्धक का धुआँ आने लगे, तब समझें कि पाक हो गया। फिर इसे बारीक कर लें।

वृद्धि वाधिका वटी—पारा, गन्धक, लौह, वंग, ताम्र, कांस्य, हरताल, तुत्थ, शंख, कौड़ी भस्म, त्रिफला, त्रिकुट, चव्य, वायविडंग, विधारा बीज, कचूर, पिप्पली मूल, पाठा, हऊबेर, वच, इलायची, देवदारु, पांचों नमक, प्रत्येक द्रव्य समपरिमाण में लेकर हरड़ के क्वाथ से मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—गोमूत्र या जल।

उपयोग—श्लीपद, वृद्धि रोग में।

वेताल रस—पारद, गन्धक, मीठा विष, मरिच, सम भाग लेकर जल से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—सामान्य ज्वर तथा मूर्च्छा में।

निर्देश—रसेन्द्रसार संग्रह के अनुसार इसमें हरताल भी समभाग में मिलाते हैं।

विडंग लोह—पारा, गन्धक, मरिच, जायफल, लवंग, सोंठ, हरताल, पिप्पली, वंग भस्म, प्रत्येक वस्तु १–१ भाग, सब के बराबर लोह भस्म, और सब के बराबर इसमें विडंग का चूर्ण मिलायें। मात्रा—२ रत्ती से ८ रत्ती।

उपयोग—उदरस्थ कृमि तथा पाण्डुता होने पर।

शंखोदर रस—शंख भस्म ४ तोला, अफीम, जायफल, टंकण एक-एक तोला, सबको पीस लें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—मक्खन के साथ दें।

उपयोग—अतिसार में।

शंख वटी—यवक्षार, सर्जक्षार, पारद, गन्धक, सैन्धव, सेचल, त्रिकुट, मीठा विष प्रत्येक १ तोला; इमली क्षार, शंख भस्म ४-४ तोले, इनको निम्बू रस से भावना दें और फिर लोह भस्म १ तोला; हींग १ तोला, वंग भस्म १ तोला मिलायें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—अजीर्ण, अग्निमान्द्य, आनाह में।

शंख द्रावक रस—मदार की जड़, सेहुण्ड की जड़, ईमली की छाल, तिलनाल, अमलतास की छाल, चित्रकमूल, अपामार्ग, इनकी भस्म को सम भाग लेकर जल में घोल कर वस्त्र में छान लें। इस क्षार जल को अग्नि पर गरम करें। जब जल शुष्क हो जाये तब यह क्षार ४ तोले, यवक्षार ४ तोले, सर्जक्षार ४ तोले, काशीश ४ तोले, शोरा ४ तोले, पाँचों नमक प्रत्येक ८ तोला, लेकर इनको काँच-कुप्पी में विजौर के रस से गीला करके सात दिन तक रक्खें। बाद में इसमें शंख चूर्ण ८ तोले मिलाकर वारुणी यंत्र से इसे चुआ लें। मात्रा—२ से ५ बूँदें।

उपयोग—प्लीहा तथा यकृत वृद्धि में।

शत मूल्यादि लौह—शतावरी, खांड, धनिया, नागकेसर, लाल चन्दन, त्रिकटु, त्रिफला, विडंग, मोथा, चित्रक, काले तिल प्रत्येक द्रव्य १–१ तोला लेकर फिर सब के बराबर लोह भस्म मिलायें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—दाह, ज्वर, वमन तथा रक्तपित्त में उपयोगी है।

शम्बूकादि गुटिका—शम्बूक (घोंघा) भस्म १ भाग, त्रिकटु ३ भाग, पाँचों नमक ५ भाग, इनको मिलाकर कलम्बक के रस से पीस लें। मात्रा—८ से १२ रत्ती।

उपयोग—शूल—परिणाम शूलनाशक है।

शिरः शूलाद्रिवज्रुरस—पारद १ तोला, गन्धक १ तोला, लोह भस्म १ तोला, ताम्र भस्म १ तोला, गुद्द गुणांक ४ तोला, त्रिफला चूर्ण, २ तोला, कूठ, मुलैहठी, पिप्पली, सोंठ, गोखरू, वायविडंग, दशमूल प्रत्येक द्रव्य ३ मासा, इनको दशमूल क्वाथ में भावना दें। मात्रा–४ रत्ती। अनुपान—मधु के साथ।

उपयोग—शिरोरोगा, शिर दर्द में—जो दर्द सदा होता है।

शिलाजत्वादि वटी (सर्वतोभद्रा वटी)—स्वर्ण भस्म, रजत भस्म, लोह भस्म,

अभ्रक, शिलाजीत, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक, इनको समभाग लेकर वरुण क्वाथ से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—वरुण क्वाथ और मधु।

उपयोग—वृक्क शूल—मूत्र में एल्व्यूमिन आने में विशेष उपयोगी है।

शिलाजत्वादि लोह—शिलाजीत, स्वर्ण माक्षिक, त्रिकटु, लोह भस्म, इनको सम भाग लेकर मधु से मिला लें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—दूध।

उपयोग—फेफड़ों से या नाक से रक्त आने में अथवा अति रक्तस्राव होने में (प्रदर में-अर्श में) यह उपयोगी है।

निर्देश—इसमें लोह भस्म सब औषधियों के बराबर भी मिलाते हैं।

शीतांकुश रस।—शुद्ध तूतिया, सोहागा, पारा, गन्धक, खर्पर भस्म, मीठा विष, हरताल, सब द्रव्य समभाग लेकर करेले के रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—शर्करा, भूना जीरा,।

उपयोग—मलेरिया ज्वर के भिन्न-भिन्न रूपों में उपयोगी है।

शोथकालानल रस—चित्रक, इन्द्र जौ, गज पिप्पली, सैन्धा नमक, पिप्पली, लौंग, जायफल, सुहागा, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, गन्धक, पारद प्रत्येक १ तोला लेकर जल से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—तालमखाने का रस।

उपयोग—इससे सब प्रकार की शोथ, प्लीहा, यकृत वृद्धि तथा ग्रहणी नष्ट होती है।

शूलगज केसरी—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, इनकी कज्जली बनायें। इनके बराबर ताम्र पत्र लेकर उसका सम्पुट बनायें। **ऊपर और नीचे नमक रख कर इस सम्पुट** को इसी मिट्टी के पात्रों में रख कर गजपुट दें। मात्रा—१/२ रत्ती। अनुपान—मधु और पान के रस से—पीछे से हींग, सोंठ, जीरा, वच, काली मिर्च, इनका चूर्ण ३ से ६ रत्ती जल से पियें।

उपयोग—यकृत, प्लीहा वृद्धि में उपयोगी है।

निर्देश—ताम्रपत्र बारीक लेकर सम्पुट बनायें। ये इस विधि से जल जाते हैं। इनकी भस्म बनती है। उसे भी साथ में मिला देना चाहिये।

श्लीपद गज केशरी—त्रिकटु, मीठा विष, अजवायन, पारद, गन्धक, चित्रक, मनःशिला, सुहागा, शुद्धजयपाल, इनको सम परिमाण लेकर भांगरा, गोखरू, जम्बीर, अद्रक के रस से पृथक्-पृथक् भावना दें। मात्रा—१ से ३ रत्ती। अनुपान—गरम जल।

उपयोग—श्लीपद रोग में—वृद्धि में।

श्वास कुठार रस—पारद, गन्धक, मीठा विष, सुहागा, मनःशिला, सोंठ, पिप्पली

प्रत्येक १ भाग,काली मिर्च २ भाग, इनको जल से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—आर्द्रक रस और मधु।

उपयोग—श्वास में तथा कफ सुखाने के लिये उपयोगी है। मूर्च्छा में इस रस का नस्य भी दिया जाता है।

श्वास चिन्तामणि—लोह भस्म २ तोला, गन्धक १ तोला, अभ्रक १ तोला, पारद ६ मासा, स्वर्णमाक्षिक ६ मासा, मुक्ता भस्म ३ मासा, स्वर्ण भस्म ३ मासा, इनको कटेरी के रस, अर्द्रक रस, बकरी का दूध तथा मुलेहठी के क्वाथ से भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—बहेड़े का चूर्ण और मधु।

उपयोग—श्वास, कास में, यक्ष्मा या निर्बल व्यक्ति के श्वास, कास में लाभकारी है।

श्वास कास चिन्तामणि—पारद, गन्धक, स्वर्ण भस्म प्रत्येक द्रव्य समभाग, १–१ तोला, मुक्ता भस्म ६ मासा, गन्धक २ तोला, अभ्रक २ तोला, लोह भस्म ४ तोला, इसको कटेरी, बकरी का दूध, मुलेहठी, पान के रस से सात-सात भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—पिप्पली चूर्ण और मधु।

उपयोग—श्वास और कास रोग में।

शृंगाराभ्र—अभ्रक १६ तोले, कर्पूर, जावित्री, सुगन्धवाला, गजपिप्पली, तेजपत्र, लौंग, जटामांसी, (बाल छड़), तालीश पत्र, दालचीनी, नागकेसर, कूठ, धाय के फूल, प्रत्येक ६ मासा, हरड़, आँवला, बहेड़ा, सोंठ, मरिच, पिप्पली—प्रत्येक ३ मासा, छोटी इलायची, जायफल, गन्धक, प्रत्येक १ तोला, पारद १/२ तोला, इनको मिलाकर जल से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—कास, फेफड़ों की निर्बलता तथा अल्प प्राणता में उपयोगी है।

निर्देश—इसमें यदि स्वर्णभस्म या लोह भस्म मिला दें तो सार्वभौम बनता है। स्वर्ण भस्म का परिमाण भिन्न-भिन्न है—३ मासे से १ तोला तक मिलाते हैं।[1]

शंखचूड़ रस—पारा, गन्धक, सुवर्ण भस्म, १–१ भाग, वैक्रान्त भस्म ३ भाग, शंख भस्म ३० भाग लेकर मर्दन करे। मात्रा—४ मासा, अनुपान—मधु के साथ दें।

उपयोग—हिक्का तथा श्वास में उपयोगी।

शशिशेखर रस—लोह, अभ्रक, रस सिन्दूर, सम भाग लेकर घीक्वार के रस से मर्दन करें। मात्रा–१ रत्ती।

---

१. **शृंगाराभ्रके स्वर्णं लौह वा यदि दीयते। तदायं सर्व रोगाणां सार्वभौमो न संशयः॥**
—भैषज्य रत्नावली, कास रोग

उपयोग—आंत्रशूल में लाभकारी है। आंत्र व्रणों में घीक्वार के रस से दें।

शीतमञ्जी रस—पारद, खपरिया, हरताल, तुत्थ भस्म, सुहागा, गन्धक, सब सम भाग लेकर करेले के रस से मर्दन करें। इसको ताम्र पात्र के अन्दर लेप करें, लेप दो अंगुल-जौ के बराबर मोटा करें। फिर इसका मुख बन्द करके बालुका यंत्र में पकायें। वालुका यंत्र पर रक्खे धानों की जब खील बन जाये, तब आग देना बन्द कर दें। ठण्डा होने पर जले ताम्र पात्र के साथ इसको ले लें—पीस लें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—काली मिर्च के चूर्ण और मधु से।

उपयोग—ज्वरनाशक है।

निर्देश—इसमें ताम्र कच्चा रहने से वमन होता है। इसे सावधानी से बरतें। अच्छा हो कि इसमें ताम्र भस्म पारद से चौथाई मिला लें।

शीतल पर्पटी—शोरा ४ तोला, गन्धक ८ रत्ती, लेकर, पहले शोरे को कड़ाही में पिघलायें। पिघलने पर इसको नीचे उतार कर गन्धक डाल कर लोहे के डंडे से अच्छी प्रकार मर्दन कर दें। मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती। अनुपान—पानी के साथ दें।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्र रोग में उपयोगी है।

श्वासारिलोह (महा)—लोह भस्म, २ तोला, अभ्रक भस्म ६ मासे, खाण्ड २ तोला, मधु २ तोले, त्रिफला, मुलेहठी, द्राक्षा, पिप्पली, बेर की मज्जा-गुठली, वंशलोचन, तालीशपत्र, वायविडंग, इलायची, पुष्कर मूल, नागकेशर प्रत्येक ६-६ मासे इनको खरल में लोहे के डण्डे से रगड़ें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—मधु के साथ।

उपयोग—श्वास, कास तथा रक्तपित्त में भी बरतते हैं।

श्वेत कुष्ठारि रस—पारा, गन्धक, त्रिफला, भाँगरा, वाकुची, भिलावा, काले तिल, निमौली, इनको सम भाग लेकर भांगरे के रस से २१ बार भावना दें। मात्रा—४ रत्ती। अनुपान—मधु और घृत। मधु २ मासा तक धीरे धीरे बढ़ायें।

उपयोग—श्वित्र रोग नाशक है।

संग्रह ग्रहणीकपाट रस—मुक्ता, सुवर्ण, पारद, गन्धक, सुहागा, अभ्रक, कौड़ी, विष-प्रत्येक सम भाग, सब के बराबर शंख की भस्म मिलाकर अतीस के क्वाथ से भावना दें। इसका एक पिण्ड बनाकर वस्त्र से लपेट कर भाण्ड पुट में पाक करे।[1] इससे निकाल

---

१. **भाण्डपुट—भाण्ड को तुषों से भरकर उसमें गोला रखकर ४ घंटे आँच दें। जब कपड़ा जल जाये अधजला हो जाये तब आग बन्द कर दें। मृदु अग्नि देना ही अभिप्रेत है।**

कर इसको लोह पात्र में डालकर धतूरा, चित्रक और मूसली के रस से भावना दें। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान—जीरा और मधु।

उपयोग—पुरातन ग्रहणी रोग में तथा आंत्रव्रणों में।

सन्निपात भैरव—हरताल, गन्धक, पारद, मीठा विष, मैनसिल, टंकण–ये एक-एक भाग और सब के बराबर हिंगुल मिलाकर, चित्रक, जम्बीर, आर्द्रक रस से तीन-तीन भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—आर्द्रक रस या गरम पानी।

उपयोग—उदावर्त्त के साथ ज्वर, आनाह में।

सप्तामृत लौह—मुलैहठी, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला) एक-एक भाग, लोह भस्म ४ भाग, इनको घी और मधु से मिलाकर खायें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान–गाय का दूध।

उपयोग—आँख के रोगों तथा अम्लपित्त में।

सप्तामृत रस—पारा, सुवर्ण, वंग, लोह, शिलाजीत, ताम्र, अभ्रक प्रत्येक वस्तु एक-एक भाग, त्रिकटु, इलायची, जायफल, लवंग, शीतल चीनी, त्रिफला—सब द्रव्य ४–४ भाग लेकर इनका चूर्ण मिलायें। इसे ८ रत्ती मात्रा में मधु से खायें।

उपयोग—क्षय रोग में उपयोगी है।

सर्व ज्वरहर लौह—लोहभस्म ८ तोला, पारद २ तोला, गन्धक २ तोला, त्रिफला त्रिकटु विडंग, मुस्ता, गजपिप्पली, पिप्पलीमूल, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रक प्रत्येक १ तोला लेकर आर्द्रक रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—आर्द्रक रस।

उपयोग—विषम ज्वर-प्लीहा तथा बढ़े ज्वरों में उपयोगी है।

सर्वज्वर हर लौह (वृहत्)—पारद, गन्धक, ताम्र, अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, स्वर्ण, चाँदी, हरताल, प्रत्येक १–१ तोला, लोह भस्म ४ तोला, इनको करेला, दशमूल, पित्त-पापड़ा, त्रिफला, गिलोय स्वरस, पान का रस, मकोय, निर्गुण्डी का रस, पुनर्नवा, आर्द्रक, के रस से पृथक्-पृथक् सात-सात भावना दें। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान—पिप्पली और गुड़।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वरों, पुरातन ज्वर तथा मन्द ज्वर में लाभप्रद है।

सर्वांग सुन्दर रस—पारा, गन्धक १–१ भाग, सुहागा २ भाग, मोती, प्रवाल, शंख भस्म १–१ भाग, स्वर्ण १/२ भाग, इनको निम्बू रस से मर्दन करें। बाद में लघु पुट देकर, इसमें स्वर्ण से आधा (१/४ भाग) लोह भस्म तथा हिंगुल १/८ भाग मिलायें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान–पिप्पली और मधु।

उपयोग—राजयक्ष्मा, जीर्ण ज्वर तथा वात रोगों में उपयोगी है।

सूत शेखर रस—पारा, स्वर्ण, सुहागा, मीठा विष, त्रिकटु, धत्तूर बीज, गन्धक,

ताम्र भस्म, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, शंख भस्म, बेलगिरी, चोरक, इनको समभाग में मिलायें। इसे भांगरे के रस से भावना दें। मात्रा–१ से २ रत्ती। अनुपान–मधु और घी।

उपयोग—अम्लपित्त, वमन तथा शूल में।

सर्वतो भद्रावटी—सुवर्ण, रजत, अभ्रक, लोह, शिलाजीत, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक समभाग लेकर वरुण क्वाथ से २ दिन मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—वरुण क्वाथ।

उपयोग—वृक्कशूल तथा अश्मरी में उपयोगी है।

सर्वतोभद्र रस—अभ्रक, २ तोला, गन्धक १ तोला, पारा ६ मासा, कर्पूर, केसर, जटामांसी, तेजपात, लवंग, जातीफल, जावित्री, इलायची, हस्ति पिप्पली, कूठ, तालीशपत्र, धातकी फूल, दालचीनी, मोथा, हरड़, मरिच, सोंठ, बहेड़ा, पिप्पली, आँवला-प्रत्येक ३–३ मासा मिलायें। पान के रस से गोली बनायें। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान–पान का रस और मधु।

उपयोग—पुरातन ज्वर, जीर्ण ज्वर, पाण्डु तथा कामला में।

सर्वतोभद्र लोह्—लोह भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, ८ तोला प्रत्येक, पारद २ तोला, गन्धक ४ तोला, स्वर्ण माक्षिक २ तोला, मैनसिल २ तोला, शिलाजीत ३ तोला, गूगुल २ तोला, वायविडंग, भिलावा, चित्रक, श्वेत आक की जड़, हस्तिकर्ण पलाश की छाल, मूसली, पुनर्नवा, मोथा, गिलोय, नागबला, पंवाड़ के बीज, गोरखमुण्डी, भांगरा, शतावरी, विधारा, त्रिफला, त्रिकटु–प्रत्येक ४ मासा मिलायें। घी और मधु से मर्दन करें। मात्रा—४ रत्ती।

उपयोग—अम्लपित्त, परिणाम शूल, में उपयोगी है।

सितामण्डूर—गोमूत्र में निर्वापित् मण्डूर ८ तोला, खांड ४० तोला, पुराना घी ६४ तोला, गाय का दूध १ सेर १० छटाँक, इनको कड़ाही में पकायें। जब जलीयांश कम हो जाये, तब नीचे उतार लें। इसमें त्रिकटु, मुलेहठी, इलायची, दुरालभा, वायविडंग, त्रिफला, कूठ, लौंग, प्रत्येक २ तोला मिलायें। ठण्डा होने पर १६ तोला मधु मिलायें। मात्रा–२ मासा।

उपयोग—अम्लपित्त तथा आनाह में।

सर्पिगुड़—बलामूल, बिदारीकन्द, लघुपंच मूल, कटेरी, गोखरू, पुनर्नवा, पांचोक्षीरी वृक्ष के पत्ते–८–८ तोले लेकर आठगुणे जल में क्वाथ करें। चौथाई रहने पर छान कर इसमें गाय दूध १२८ तोला, गाय घृत ६४ तोला, विदारीकन्द का रस, बकरे का मांसरस–६४–६४ तोला और जीवनीय गण के द्रव्यों का कल्क १–१ तोला

मिलाकर घृत सिद्ध करें। छानकर ठण्डा होने पर इसमें मिश्री १२८ तोला, भूना हुआ गेहूँ का आटा, वंशलोचन, सिंघाड़ा, मधु—प्रत्येक १६–१६ तोला मिलाकर लड्डू बाँध लें। मात्रा—१ मासे से ४ मासा।

उपयोग—राजयक्ष्मा तथा प्रतिलोम क्षय में बहुत लाभकारी है। शुक्र बढ़ाता है।

सिद्ध प्राणेश्वर रस—गन्धक ४ भाग, पारद ४ भाग, अभ्रक ४ भाग, सर्जक्षार, यक्षक्षार, पांचों नमक, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्र जौ, श्वेत जीरा, काला जीरा, चित्रक, अजवायन, हींग, सौयाविडंग—प्रत्येक १ भाग लेकर जल से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—गरम जल।

उपयोग—अतिसार तथा ग्रहणी में।

सुधाकर रस—रस सिन्दूर, अभ्रक, सुवर्ण, मुक्ता भस्म, इनको समभाग लेकर त्रिफला क्वाथ और शतावर के रस से सात-सात भावना दें। मात्रा—१/२ से १ रत्ती। अनुपान—चीनी और शहद।

उपयोग—तीव्रदाह प्रमेह तथा वातरक्त में।

सुधानिधि रस—पारा, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक, लोह भस्म, इनको सम भाग लेकर त्रिफला के क्वाथ से मर्दन करें। फिर भूसा में रखकर भूधर यंत्र में पुट दें। मात्रा—१ रत्ती। त्रिफला क्वाथ के अनुपान से। बाद में रात्रि में लोह पात्र में गरम किया दूध दें।

उपयोग—रक्तपित्त रोग में।

निर्देश—भूधर यंत्र के लिए तुषाग्नि से पुट दें। पुट बहुत हल्का देना चाहिए।

सूतिका विनोद रस—पारा, गन्धक, तुत्थ भस्म इनको सम भाग लेकर तीन दिन जम्बीरी निम्बू रस से मर्दन करें। मात्रा—४ रत्ती। अनुपान—त्रिकटु और मधु।

उपयोग—गर्भवती के शूल, विष्टम्भ, अजीर्ण तथा ज्वर में।

सूतिकारि रस—पारद, गन्धक, अभ्रक भस्म १–१ तोला, ताम्र भस्म १॥ तोला मण्डूकपर्णी के रस से ५–७ भावना दें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—त्रिकटु और मधु।

उपयोग—गर्भवती के अजीर्ण, विष्टम्भ तथा शूल में।

सोमनाथ रस—लोह भस्म २ तोले, पारद, गन्धक, छोटी इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, जामुन की छाल, खस, गोखरू, विडंग, जीरा, पाठा, आँवला, अनार की छाल, टंकण, चन्दन, गुग्गुलु, लोध, साल, अर्जुन, रसौत, प्रत्येक १ तोला; इनको बकरी के दूध से मर्दन कर बटी बनायें। मात्रा—५ रत्ती से १० रत्ती। अनुपान—आमलकी रस और मधु।

उपयोग—प्रदर, बहुमूत्र तथा सोमरोग में।

स्वर्ण पर्पटी—शुद्ध पारा ८ तोला, सुवर्ण भस्म १ तोला, इनको खरल में मर्दन करें। गन्धक ८ तोला मिलाकर कज्जली बनाकर पर्पटी विधान से पर्पटी बना लें। मात्रा—४ रत्ती।

उपयोग—राजयक्ष्मा, पुरातन ग्रहणी तथा आँत्रव्रणों में।

निर्देश—भस्म के स्थान पर यदि वर्क का उपयोग हो तो, इनको अच्छी प्रकार मर्दन करना चाहिए। कुछ लोग मर्दन करके निम्बू के रस से मर्दन करके पानी से धोते हैं। जैसे स्वर्णवंग में। परन्तु सामान्यतः इससे कोई लाभ नहीं। भस्म का उपयोग उत्तम है।

स्वर्ण वंग—वंग भस्म १० तोला लेकर पिघला लें। फिर इसके बराबर पारा डालकर तुरन्त मर्दन करें। पारद के बराबर गन्धक मिलाकर कज्जली करें। गन्धक के समान नवसादर का चूर्ण मिलाय। फिर सम्पूर्ण को वालुका यंत्र में पाक करें। मात्रा—१ से २ रत्ती।

उपयोग—गोनोरिया, मूत्रकृच्छ्र, तथा वीर्यवृद्धि के लिये उपयोगी है।

निर्देश—पारद और वंग की पिष्टी बनाने के बाद थोड़ा-सा सैन्धा नमक मिलाकर अच्छी प्रकार मर्दन करके पानी से धो देना चाहिए। ऐसा तब तक करें, जब तक पानी से कालिमा न निकल जाये। फिर गन्धक मिलायें।

स्वर्ण सिन्दूर—पारद ८ तोला, गन्धक ८ तोला, स्वर्णपत्र २ तोला, इनकी कज्जली करके वटांकुर और घीक्वार से पृथक् भावना दें। फिर वालुका यंत्र विधि से पकायें। मात्रा १/८ रत्ती से १/२ रत्ती।

उपयोग—वृष्य, शुक्रवर्धक, रसायन है।

निर्देश—इसमें तल में बची स्वर्ण भस्म भी इसमें पीछे से मिलाते हैं।

सर्वेश्वर रस—स्वर्ण, रौप्य, मोती, शिलाजतु, लोह, अभ्रक, सुवर्णमाक्षिक, मुलेहठी, पिप्पली, मरिच, सोंठ, सब सम भाग लेकर कज्जली के समान बना लें। फिर भांगरे के रस और भांग के रस से एक-एक दिन मर्दन करें। मात्रा—१ से २ रत्ती।

उपयोग—प्रमेह तथा मधुमेह में उपयोगी है।

सिद्धामृत—फिटकरी ३ भाग, स्वर्ण गेरू १ भाग, इनको चूर्ण कर लें। मात्रा—८ रत्ती। अनुपान—गाय का दूध।

उपयोग—शिर में चक्कर आने, अम्लपित्त तथा पित्तजन्य उपद्रवों में।

सुवर्णभूपति रस—पारा, गन्धक १–१ भाग, ताम्र भस्म २ भाग, अभ्रक, लोह, कान्त लोह, सुवर्ण, रजत वछनाग एक-एक भाग; हंसराज के रस से मर्दन करें।

इसको बालुका यंत्र में पाक करें। मात्रा –४ रत्ती। अनुपान—पिप्पली और आर्द्रक रस।

उपयोग—यक्ष्मा, वात व्याधि तथा प्रमेह में।

हिंगुलेश्वर रस—हिंगुल, वत्सनाभ, पिप्पली, इनको समभाग लेकर पानी में मर्दन करें। मात्रा—१/२ से १ रत्ती। अनुपान—आर्द्रक रस और मधु।

उपयोग—वातज्वर, अंगों में दर्द तथा मलेरिया में।

हेमगर्भ पोटली रस—पारद १ भाग, सुवर्ण भस्म २ भाग, मुक्ता भस्म ४ भाग, शंख भस्म ६ भाग, गन्धक ३ भाग, कौड़ी भस्म ३ भाग, सुहागा १/४ भाग, इनको निम्बू के रस में मर्दन करके; मूषा में ३० उपलों की (लघुपुट) दें। मात्रा–१ से २ रत्ती। अनुपान—घृत-मधु।[1]

उपयोग—ग्रहणी की पुरातनावस्था, यक्ष्मा रोग, अतिसार तथा अग्निमान्द्य की दशा में।

हुताशन रस—गन्धक, पारद, सुहागा, प्रत्येक १ तोला, मीठा विष ३ तोला; काली मिर्च ८ तोले, इनको जम्बीरी निम्बू के रस से मर्दन करें। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान—आर्द्रक रस।

उपयोग—शूल, अरुचि, गुल्म में। आमाजीर्ण में।

हृदयार्णव रस—पारा, ताम्र, गन्धक, इनको सम भाग लेकर त्रिफला क्वाथ, मकोय के रस से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—अर्जुन क्वाथ।

उपयोग—हृदय रोग में।

हेमनाथ रस—पारा, गन्धक, स्वर्ण, स्वर्णमाक्षिक, प्रत्येक, १ तोला, लोहभस्म, कर्पूर, शृंग भस्म, वंग भस्म, प्रत्येक १/२ तोला, इसको अफीम के जल से, केले के फूल के रस से, गूलर के रस से पृथक् पृथक् सात भावना दें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—प्रमेह, बहुमूत्र रोग, सोमरोग तथा क्षय में।

क्षेत्रपाल रस—हिंगुल, विष, ताम्र, लोह, हरताल, सुहागा, जीरा, अफीम ये सब समभाग लेकर—पानी या मकोय अर्क में गोली बनायें। मात्रा–१/४ से १/२ रत्ती।

उपयोग—शोथ, शोथ के साथ ज्वर, जीर्णज्वर तथा अतिसार में उपयोगी है।

स्मृति सागर रस—पारा, गन्धक, हरताल, मैनसिला, स्वर्ण माक्षिक, ताम्र—सब

---

१. हिरण्यगर्भ पोटली रस—पारद १ तोला, स्वर्ण २ तोला, मुक्ता ४ तोला, कांस्य ६ तोला, गन्धक ३ तोला, कौड़ी भस्म ३ तोला, सुहागा की खील ३ मासा मिला कर निम्बू के रस से मर्दन करके ३० उपलों से लघु पुट दें। मात्रा—४ रत्ती।

सम भाग लेकर वचा क्वाथ से २१ बार भावना दें। बाद में ब्राह्मी रस से, और मालवंगनी के बीजों के तेल का एक भावना दें। मात्रा—४ रत्ती।

उपयोग—अपस्मार तथा दीर्घकालीन बीमारी के पीछे बुद्धि बढ़ाने में।

हेमाभ्र रससिन्दूर—रससिन्दूर, अभ्रक, सुवर्ण भस्म, एक-एक भाग, इनको एक-दो दिन मर्दन करें। इसे आर्द्रक या पान के रस से मर्दन करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनायें।

उपयोग—क्षय रोग, तथा पाण्डु में उपयोगी है।

हेमामृत रस—पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सुवर्ण वर्क १/४ भाग, रजत और वंगभस्म १–१ भाग मिला कर अर्जुन क्वाथ से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान-घी और मधु।

उपयोग—सब प्रकार के हृदय रोगों में।

ताप्यादि लौह—स्वर्णमाक्षिक, अभ्रक, त्रिकटु, तुत्थ भस्म, शिलाजीत, लोह भस्म, अंकोल मूल, मण्डूर, सुहागा भूना, सैन्धव इनको सम भाग लेकर भांगरे के रस से एक दो दिन मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—शहद और दूध।

उपयोग—पाण्डु, कामला तथा शोथ में।

मण्डूर वटक—मण्डूर भस्म–६४ तोला लेकर आठ गुणे गोमूत्र में पकावें। जब पाक गाढ़ा हो जाये तब इसमें चविका, सोंठ, यवक्षार पिप्पली, पिप्पली मूल, प्रत्येक का ८ तोला चूर्ण मिला कर गुटिका बनायें।

उपयोग—परिणाम शूल में उपयोगी है।

अपूर्व मालिनी वसन्त—वैक्रान्त, अभ्रक, ताम्र, स्वर्णमाक्षिक, रजत, वंग, प्रवाल, रस सिन्दूर, लोह, टंकण, शंख भस्म प्रत्येक द्रव्य सम भाग लेकर इनको खस, शतावरी, हल्दी के रस से पृथक्-पृथक् सात भावना दें। इसमें कस्तूरी, कर्पूर एक-एक भाग मिलायें। मात्रा—दो रत्ती। अनुपान—मधु और पिप्पली चूर्ण।

उपयोग—प्रमेह रोग, जीर्ण ज्वर तथा अनुलोमजन्य क्षय रोग में।

जवाहर मोहरा पिष्टी—माणिक्य पिष्टी, पन्ना पिष्टी, नीलम, मुक्ता, संगयशब पिष्टी प्रत्येक दो तोला, कहरुआ पिष्टी, ४ तोला, चांदी के वर्क २ तोला, सोने के वर्क १ तोला, दरियाई नारियल चूर्ण ४ तोला, कटा आवरेशम २ तोला; मृगशृङ्ग भस्म ४ तोला, हस्तिदन्त चूर्ण २ तोला, जदवार खताई चूर्ण २ तोला; जहरमोहरा खताई पिष्टी २ तोला, कस्तूरी १ तोला, अम्बर २ तोला, लेकर गुलाब जल में चन्दनादि अर्क से रगड़ कर बारीक करें। मात्रा–१/४ रत्ती।

उपयोग—हृदय दौर्बल्य तथा हृदय की धड़कन में।

सर्वज्वरहरलौह—चित्रक, हरीतकी, विभीतक, आमलकी, शुण्ठी, पिप्पली, मरिच, मुस्ता, विडंग, गजपिप्पली, खस, देवदारु, चिरायता, सुगन्धवाला, कंटकारी, शाम्भाञ्जन बीज, मुलेहठी, इन्द्रयव प्रत्येक द्रव्य १ तोला, सबके बराबर लोह भस्म लेकर मिलायें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान –मधु।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वरों तथा प्लीहा बढ़े होने में।

सिद्ध मकरध्वज—स्वर्ण ४ तोला; पारद ८ तोला, गन्धक १६ तोला, इनको वालुका यंत्र में पाक करें। मात्रा १/२ से २ रत्ती।

उपयोग—वृष्य, शक्तिवर्धक तथा हृदय के लिये उपयोगी है।

प्रमेह चिन्तामणि—रस सिन्दूर, अभ्रक, वंग, स्वर्ण, लोह, मुक्ता, प्रवाल, स्वर्ण-माक्षिक सब द्रव्य सम भाग लेकर घृत कुमारी रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान —मधु के साथ।

उपयोग—गोनोरिया तथा प्रमेह में उपयोगी है।

शक्रवल्लभ रस–पारद, गन्धक, लोह, रोप्य, स्वर्ण, स्वर्णमाक्षिक इनमें प्रत्येक द्रव्य ६ मासा, वंशलोचन दो तोला, भांग के बीज ८ तोला, इनको भांग के क्वाथ या रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—मधु।

उपयोग—वीर्यस्तम्भक तथा शुक्रतारल्यनाशक।

कामिनी विद्रावण रस—अकरकरा, सोंठ, पीपल लौंग, केसर, जायफल, जावित्री, लाल चन्दन, प्रत्येक वस्तु २ तोला, हिंगुल, गन्धक प्रत्येक ६ मासा, अफीम ८ तोला, जल से मर्दन करें। मात्रा–३ रत्ती।

उपयोग—वीर्यस्तम्भक तथा शुक्रतारल्यनाशक।

अभ्र पर्पटी—अभ्रक भस्म, तांम्र भस्म और गन्धक—सब को बराबर लेकर पर्पटी बनायें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—जिह्वा के रोगों, तथा निर्बलता में विशेषकर यकृत दोष से उत्पन्न पाण्डु में।

अजीर्ण कण्टक रस—पारा, वछनाग, गन्धक प्रत्येक द्रव्य एक-एक भाग, मिर्च ३ भाग लेकर कटेरी के स्वरस या क्वाथ से २१ बार भावना दें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—हैजे में—बड़ी इलायची के अर्क से तथा शूल में पिप्पली चूर्ण से दें।

अंत्रशाथान्तक रस—कान्त लोह भस्म, सीसक भस्म ये दोनों एक-एक भाग, अभ्रक, सोना, ताम्बा, लोह, खर्पर ये प्रत्येक कान्त लोह भस्म से १/२ भाग लेकर घीक्वार रस से भावना देकर तैयार करें। मात्रा—३ रत्ती।

उपयोग—आंत्र शोथ, फेफड़े की सूजन तथा जीर्ण ज्वर में उपयोगी है।

निर्देश—घीक्वार के साथ , सहजन की छाल, चमार दूधी, (चर्म कषा), गिलोय, शतावरी, त्रिफला, बिदारी, असगन्ध, मूसली इनके रस या क्वाथ की कई भावना देते हैं।

ताम्र पर्पटी—ताम्र भस्म, शुद्ध पारा ३–३ भाग, शुद्ध गन्धक ६ भाग, शुद्ध वछनाग–१ भाग लेकर कज्जली बनाकर पर्पटी कल्प से पर्पटी बनायें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—पाण्डु, शूल तथा प्रमेह में।

कल्लारि रस—पारद ३ भाग, गन्धक ५ भाग, वछनाग ३ भाग, पीपल १० भाग, लौंग ४ भाग, धतूरे के बीज ३ भाग, सुहागा ३ भाग, जायफल ५ भाग, मिर्च ५ भाग, अकरकरा ३ भाग लें। इनको करीर, आर्द्रक और सम्भालु के पत्तों से ३–३ भावना दें। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान—अद्रक का रस या तुलसी का रस और मधु।

उपयोग—ज्वर, मलेरिया में।

कास कर्त्तरी रस—रस सिन्दूर १ भाग, पीपल २ भाग, हरड़ ३ भाग, बहेड़ा ४ भाग, वासा पुष्प या मूली की छाल ५ भाग, भारंगी मूल ६ भाग, कत्था सबके बराबर लेकर बब्बूल की छाल के क्वाथ से २१ भावना दें। मात्रा—२ से ४ रत्ती। अनुपान–मधु के साथ।

उपयोग—कास, श्वास तथा हिक्का में।

कृमि कुठार रस—पारा, गन्धक, वायविडंग, हींग, इन्द्र जौ, वच, कमीला, करंजकी बीज की मज्जा; ढाक के बीज, अनार की छाल, सुपारी, डीकामाली, लहसुन, सेंचल नमक, अजवायन का सत–ये वस्तुएँ सब बराबर लेकर घीक्वार के रस की ३ भावना दें। मात्रा–३ रत्ती। अनुपान—नागरमोथे का क्वाथ।[1]

उपयोग—कृमि नाशक है।

ज्वर संहार (लाल गुड़ा)—नीम की छाल, सोंठ, मरिच, पिप्पली-कूठ, मोथा, सुहागा, सरसों पीली, इन्द्र जौ, लाल चन्दन, काली जीरी, कुटकी, अतीस, सब समभाग और सब के बराबर रससिन्दूर लें। इनको सम्भालु, तुलसी, अद्रक रस की एक-एक भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान–शहद।

उपयोग—ज्वरों में, विशेषकर टाईफाईड, मलेरिया, निमोनिया में उत्तम है।

तिक्ताद्य लोह—कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत चन्दन, पित्तपापड़ा, नागर-

---

१. यह पाठ रसामृत का है। इसमें पुराने पाठ से परिवर्त्तन है। लाभकारी समझ कर दिया गया है।

मोथा, पाठा मूल, पीपल, देवदारु, पटोल पत्र, त्रायमाण, मूर्वा, इन्द्र जौ, चिरायता ये सब समान भाग, इनके चूर्ण के बराबर लोह भस्म मिला कर भांगरे के रस की तीन भावना दें। मात्रा—२ से ४ रत्ती। अनुपान—मधु ३ मासा, घृत ३ मासा।

उपयोग—प्लीहा का बढ़ना, ज्वर, जीर्ण ज्वर, तथा अग्निमान्द्य में।

जवाहर मोहरा—माणिक्य पिष्टी, पन्ना, नीलम, मुक्ता, इन सबकी पिष्टी २–२ तोला, संगेयशब और कहरुआ की पिष्टी ४–४ तोला, चाँदी और सोने के वरक एक-एक तोला, दरियाई नारियल ४ तोला, कतरा हुआ आबरेशम २ तोला, मृगशृङ्ग भस्म ४ तोला, हाथी दाँत का चूर्ण २ तोला, जदवार खताई का चूर्ण २ तोला, जहरमोहरा खताई की पिष्टी २ तोला, कस्तूरी १ तोला, अम्बर १ तोला लेकर गुलाब अर्क में घोटें। मात्रा—१–१ रत्ती। अनुपान—मधु तथा दूध की मलाई।

उपयोग—हृद् दौर्बल्य, हृदय की धड़कन तथा मस्तिष्क की निर्बलता में।

निर्माण विधि—इसको अच्छा न घिसने वाले खरल में बनाना चाहिए। पिष्टियों को साथ डालकर, सोने और चाँदी के वरक एक-एक करके डाल कर मर्दन करें। फिर इसमें अर्क गुलाब, एवं अर्क वेदमुश्क मिला कर सब वस्तुएँ डालकर रगड़ें। आठवें दिन कस्तूरी, और अम्बर मिलाकर अर्क केवड़ा या वेदमुश्क अर्क से एक दिन मर्दन करें। एक-एक रत्ती की गोली बनायें।

पित्तान्तक रस—जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीश पत्र, चन्दन श्वेत, सुवर्ण माक्षिक भस्म, प्रवाल भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, कर्पूर सब एक-एक भाग, चाँदी की भस्म सबके बराबर लेकर धनिये के क्वाथ से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—चन्दन का शीत, कषाय।

उपयोग—पित्तजन्य शूल, कामला, अम्लपित्त, वमन तथा भ्रम में उपयोगी है।

भार्गोत्तर रस—पारद १ तोला, गन्धक २ तोला, पिप्पली ३ तोला, हरड़ ४, बहेड़ा ५, अड़सा ६, भारंगा ७, मुलेहठी ८ भाग लेकर बबूल छाल के क्वाथ से २१ बार भावना दें। मात्रा—२ से ४ रत्ती। अनुपान-मधु।

उपयोग—खांसी तथा श्वास में।

रसराज रस—रस सिन्दूर ४ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, सुवर्ण भस्म, मुक्ता पिष्टी, प्रवाल भस्म या पिष्टी, लोह भस्म, रौप्य भस्म, वंग भस्म, असगन्ध, लौंग, जावित्री, जायफल, काकोली, तगर, प्रत्येक आधा तोला लेकर ग्वारपाठा और मकोय के रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—शहद-दूध।

उपयोग—पक्षाघात, अर्दित, अपतन्त्रक तथा आक्षेपक रोगों में उत्तम है।

सर्वतोभद्र रस—अभ्रक २ तोला, गन्धक १ तोला, पारा १/२ तोला, कपूर, केसर, जटामांसी, तेजपात, लौंग, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, पिप्पली, कूठ, तालीश पत्र, धाय के फूल, दालचीनी, नागरमोथा, हरड़, मिर्च, सोंठ, बहेड़ा, पिप्पली, आँवला, प्रत्येक ३–३ तोला लें। पान के रस से मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—नारियल का पानी या ठण्डा जल।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वरों, मसूरिका, खसरे में विशेष उपयोगी है। अजीर्ण, आम दोष के लिये भी लाभप्रद है।

हेमगर्भ पोटली रस—पारद ४ भाग, गन्धक २ भाग, सुवर्ण १ भाग, ताम्र ३ भाग, घीक्वार के रस से सात दिन मर्दन करके शंकु के आकार की गोली बना, सुखा कर, पोटली विधि से पाक करें।

उपयोग—अति स्वेद आने पर, नाड़ी क्षीण होने पर, शरीर ठण्डा होने पर इसको अदरख या पान के रस में घिसकर चटायें।

निर्माण विधि—रेशम या नाईलोन के वस्त्र पर शुद्ध गन्धक का चूर्ण बिछाकर उसमें गोली को कस कर बाँध दें। फिर मिट्टी के पात्र में गन्धक लेकर उसमें इस पोटली को रखकर गन्धक को दोलायंत्र विधि (**Water Bath**) से पिघलायें। जब गन्धक का द्रव आसमानी रंग का हो जाये, तब पोटली को बाहर निकाल, ठण्डी करके, कपड़ा उतारकर, ऊपर लगी गन्धक को चाकू से खुरच दें।

रक्तपित्तहर रस—मोती, प्रवाल, मोती की सीप, शंख, कच्ची लाख, शुद्ध सोना, गेरू, गोदन्ती, खून खराबा और रस सिन्दूर–इनका चूर्ण समभाग लेकर, दूब, लाल कमल, पेठे (कुष्माण्ड) के रस की तीन तीन भावना दें। मात्रा—४ रत्ती।

उपयोग—रक्तपित्त को दूर करती है।

मधुमेह नाशिनी वटीका—त्रिवंग भस्म ४ तोला, गुड़मार पत्ती का चूर्ण १२ तोला, नीम की पत्ती का चूर्ण १२ तोला, शिलाजीत २४ तोला, इनको एक साथ कूटकर करेले का रस मिलाकर इनकी ३–३ रत्ती की गोली बनायें। अनुपान—आँवला या हल्दी का रस।

उपयोग—मधुमेह में।

निर्देश—इसमें १ तोला स्वर्ण भस्म मिलाने से उत्तम योग बनता है।

रत्नगिरी रस—पारद, अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, ताम्र, चांदी, स्वर्ण भस्म—प्रत्येक १–१ तोला, गन्धक १२ तोला लेकर, भांगरे के रस में पीस लें। फिर पर्पटी की भाँति केले के पत्र पर पाक कर लें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान–मधु और पिप्पली से।

उपयोग—पुराने ज्वर, क्षय, पाण्डुरोग तथा शोथयुक्त पाण्डु में।

शम्भूनाथ रस—विष ८ तोला, पारा ८ तोला, गन्धक ८ तोला, मरिच ८ तोला, अफीम १७ तोला ये सब वस्तुयें पानी या आदी रस से मर्दन करें। मात्रा —१ रत्ती।

उपयोग—ज्वर में सन्धि या अंगों में दर्द, प्रलाप, तन्द्रा, निद्राधिक्य हो तो इसका उपयोग उत्तम है।

अगर कस्तूरी—अगरु १ तोला, कस्तूरी १ तोला, स्वर्ण सिन्दूर १ तोला, रुद्राक्ष १ तोला, कर्पूर १ तोला, अभ्रक १ तोला, लोह भस्म १ तोला, लाल चन्दन १ तोला, इनको जल से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—पित्तज्वर, पित्तकफ ज्वर तथा वातकफ ज्वर में उत्तम।

अघोर नृसिंह रस—ताम्र १ तोला, लोह २ तोला, वंग ३ तोला, अभ्रक ४ तोला, स्वर्णमाक्षिक १ तोला, पारद १ तोला, गन्धक १ तोला, मनःशिला १ तोला, कृष्ण सर्प विष ४ तोला, त्रिकटु मिलित ४ तोला, कुचला २२ तोला, विष ८८ तोला लेकर इनको जल से मर्दन करके रोहित मछली, भैंस, मोर, सुअर के पित्त और पीछे से लाल चीते के क्वाथ से सात-सात भावना दें। मात्रा—१/४ रत्ती।

उपयोग—सन्निपात ज्वर में रोगी को ज्ञान न होने पर मूर्च्छा में।

वृहत् कस्तूरी भैरव—कस्तूरी, कर्पूर, ताम्र, धातकी पुष्प, रौप्य, कौंच के बीज, स्वर्ण, मुक्ता, प्रवाल, लोह, जावित्री, पाठा, विडंग, मोथा, सोंठ, जायफल, हरताल, अभ्रक, हिंगुल ये सब द्रव्य समभाग लेकर आक के रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती, अनुपान—आदी का रस।

उपयोग—सन्निपात की अवस्था में।

प्राणेश्वर रस—पारा, गन्धक, अभ्रक, सुहागे की खील, सौंफ, अजवायन, जीरा प्रत्येक ४ तोला, यवक्षार, हींग, विड्लवण, सेंचल, साम्भर, सैन्धव; रुचकलवण, विडंग, इन्द्र जौ, राल, लाल चीता—ये प्रत्येक २ तोला मिलाकर जल से गोली बनायें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—ज्वरातिसार, अतीसार तथा मल पतला आने में।

त्रैलोक्य चिन्तामणि—हीरक भस्म १ तोला, स्वर्ण, मुक्ता, लोह एक-एक तोला, मुक्ता ४ तोला, स्वर्ण सिन्दूर ४ तोला, इनको घीक्वार के रस से मर्दन करें। मात्रा-२ रत्ती। अनुपान—आर्द्रक रस और मधु।

उपयोग—सन्निपात ज्वर में वायु का प्रकोप तथा वायु के साथ कफ का योग होने पर दें।

निर्देश—हीरक के भस्म के स्थान पर पीली कौड़ी की भस्म या वैक्रान्त भस्म मिलाते हैं।

सार्वभौम रस—पारद, गन्धक, हिंगुल, रौप्य, धतूर बीज, हिज्जली बीज, भाँग के बीज, सुहागे की खील, दालचीनी, गेरू, दन्तीबीज, स्वर्णमाक्षिक, विधारा बीज, पिप्पली, कस्तूरी, ये सब द्रव्य सम भाग लेकर लाल चीता की मूल और आर्द्रक रस से ७–७ भावना दें। मात्रा—३ रत्ती।

उपयोग—वात श्लेष्म या सन्निपात ज्वर में, मध्यम ज्वर में, हल्का हल्का ज्वर रहने में दें।

शूलहरण योग—हरड़, सोंठ, पिप्पली, मरिच, कुचला शुद्ध, हींग, सैन्धवलण और शुद्ध गन्धक ये सब द्रव्य समान भाग लें। जल से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—यकृत और प्लीहा के स्थान पर वेदना होने पर एवं अग्निमान्द्य, ज्वर होने पर दें।

शशिशेखर रस—लोह, अभ्रक, रस सिन्दूर, सम भाग लेकर घीक्वार से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—आंत्रवृद्धि रोग में वायु की अधिकता होने पर इसको बरतें। मल-बन्ध होने पर त्रिफला क्वाथ से दें।

कृमिकालानल रस—विडंग १६ तोला, विष ८ तोला, लोह ४ तोला, पारद २ तोला, गन्धक २ तोला, इनको बकरी के दूध से मर्दन करें और छाया में सुखायें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—कोष्ठ में कृमि होने पर तथा उनके कारण पाण्डुता अथवा कामला रहने पर।

चन्द्रकान्ति रस—अफीम, लोह, अभ्रक, ये तीनों सम भाग और सबके बराबर रससिन्दूर मिलायें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—दूध।

उपयोग—शोथ के साथ अतिसार होने पर दें।

दुग्ध वटी—विष १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लौह ५ रत्ती, अभ्रक ६ रत्ती, इनको गाय के दूध से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—दूध—नमक और जल का त्याग कर दें।

उपयोग—शोथ के साथ में अतिसार, ग्रहणी एवं अल्प ज्वर रहने पर दें।

कांचनाभ्र रस—स्वर्ण, स्वर्ण सिन्दूर, मुक्ता, लोह, अभ्रक, प्रवाल, हरीतकी, रौप्य, कस्तूरी, और मनःशिला—प्रत्येक द्रव्य सम भाग लेकर जल से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती।

वृहत् कांचनाभ्र रस—स्वर्ण, स्वर्ण सिन्दूर, मुक्ता, लोह, अभ्रक, प्रवाल, वैक्रान्त,

रौप्य, ताम्र, वंग, कस्तूरी, लंवंग, जावित्री, एलवालुक–प्रत्येक द्रव्य २ तोला लेकर घृत-कुमारी, बकरी का दूध, और भाँगरे के रस से एक एक भावना दें। मात्रा—४ रत्ती।

उपयोग—यक्ष्मा, शोष रोग में रोगी के अति कृश होने पर साथ में वीर्यक्षय, श्वास, कास के लक्षण होने पर इसका उपयोग करें।

विन्ध्यवासी योग—सोंठ, पीपल, मरिच, शतावरी, हरड़-बहेड़ा, आँवला, वला, अतिवला, प्रत्येक द्रव्य १ तोला; लोह ९ तोला, लेकर घी और मधु के साथ गोली बनायें। मात्रा—१ मासा।

उपयोग—यक्ष्मा, उरःक्षत, व्यायाम शोष में रोगी में रक्त और दुर्गन्ध मिला कफ आने पर देना चाहिए।

नित्योदय रस—पारद, गन्धक की समभाग कज्जली ४ तोला, लेकर इसको विल्व, अग्निमन्थ, श्योनाक, गम्भारी, पाटला, अतिवला, मोथा, पुनर्नवा, आमलकी, कटेरी, वासा, विदारी और शतावरी के रस की (अभाव में क्वाथ की) भावना देवें इसमें स्वर्ण, रौप्य, स्वर्णमाक्षिक, प्रत्येक ३–३ मासा, अभ्रक ८ तोला, कर्पूर ४ तोला, जायफल, जावित्री, जटामांसी, तालीशपत्र, इलायची, लौंग, प्रत्येक का चूर्ण—एक एक तोला मिलाकर वासा पत्र रस से, विदारी रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान–वासापत्र रस और मधु।

उपयोग—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक कास जब पुरातन हो जाये, साथ में ज्वर, प्रमेह के लक्षण होने पर इसको दें।

जातिफल रस—पारद, अभ्रक, गन्धक, रससिन्दूर, जातिफल, इन्द्रयव, धतूरा बीज, सुहागा की खील, सोंठ, मरिच, पिप्पली, मोथा, आम की गुठली, अनार का छिलका, प्रत्येक का चूर्ण १ भाग। वेलगिरि का चूर्ण २ भाग लेकर भांग के पत्रों के क्वाथ से मर्दन करें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—आमातिसार की मध्यमावस्था में तथा मल परिपक्व होने पर दें। प्रवाहिका में भी दें।

विजयपर्पटी—गन्धक को भृङ्गराज रस में शोधन करें। यह गन्धक ८ तोला, पारद ४ तोला, लेकर इसमें चांदी भस्म २ तोला, स्वर्ण १ तोला, वैक्रान्त १/२ तोला, मुक्ता १/४ तोला मिलाकर कज्जली करके, पीछे पर्पटी-नियम से पर्पटी बनायें। मात्रा–१ रत्ती क्रम से दें। अनुपान–दूध।

उपयोग—यक्ष्मा, शोष रोग, प्रवल अतिसार होने पर तथा हाथ-पैर में शोथ होने पर।

अमृतार्णव रस—पारद, गन्धक, लोह, सोहागे की खील, शठी (कचूर), धनिया,

नेत्रवाला, मोथा, पाढल, जीरा, अतीस—प्रत्येक १ तोला लेकर बकरी के दूध से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—धनिया और जीरा चूर्ण।

उपयोग—अतिसार तथा ज्वरातिसार में।

महाराजनृपतिवल्लभ—कान्त लोह भस्म ३ तोला, अभ्रक, ताम्र भस्म, रौप्य, स्वर्ण माक्षिक प्रत्येक २ तोला, स्वर्ण, मुक्ता, सुहागा, काकड़ाशृंगी, गजपिप्पली, दन्तीमूल, मरिच, तेजपत्र, अजवायन, नेत्रवाला, सोंठ, धनिया, सैन्धव, कर्पूर, विडंग, चित्रक, विष—प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण १ तोला; निशोथ चूर्ण २ तोला, लौंग, जावित्री, जायफल, दालचीनी प्रत्येक का चूर्ण ८ तोला, लेकर समस्त चूर्ण से आधा विड्लवण और विड्लवण सहित सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर छोटी इलायची का चूर्ण मिलायें। इसको बकरी के दूध से ७ बार, निम्बू रस से ७ भावना दें। मात्रा—१० रत्ती।

उपयोग—यक्ष्मा रोग में अतिसार हो, या अतिसार से रोगी कृश हो रहा हो और मल आमयुक्त हो तब दें।

वात गजेन्द्र सिंह—अभ्रक, लोह, पारद, गन्धक, ताम्र, सीसा, सोहागे की खील, विष, सैन्धव, लवंग, हींग, जायफल—प्रत्येक द्रव्य दो तोला, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, हरड़, आँवला, बहेड़ा, जीरा—प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, सबको मिलाकर घी-क्वार के रस से मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—कब्ज होने पर हरीतकी चूर्ण और सैन्धव।

उपयोग—संग्रह ग्रहणी रोग, या वात, कफजन्य ग्रहणी होने पर शरीर में वेदना हो तब दें।

हुताशन रस—पारद, गन्धक, सुहागा, प्रत्येक का चूर्ण १ भाग, विष ३ भाग, मरिच ८ भाग; सबका चूर्ण लेकर जम्बीरी निम्बू रस से १ दिन मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—भोजन देर में पचने तथा पेट में वायु संचय होने पर बरतें।

भास्कर रस—विष, गन्धक, पारद, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, पीपल, मरिच, सुहागा, जीरा, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, लोह, अभ्रक, कौड़ी भस्म प्रत्येक का चूर्ण २ तोला, सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर लौंग का चूर्ण, सम्पूर्ण चूर्ण को जम्बीरी निम्बू रस से ७ भावना दें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—आमाजीर्ण; विदग्धाजीर्ण, अग्निमान्द्य में, मल पतला आने पर उपयोग करें।

अम्ल पित्तान्तक रस—रससिन्दूर, अभ्रक, लोह, सब द्रव्य समभाग लेकर सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर हरीतकी चूर्ण लें। जल से मर्दन करें। मात्रा–५ रत्ती।

उपयोग—अम्लपित्त रोग में शरीर में दाह, कुक्षिशूल, वमन होने पर बरतें।

श्लेष्म शैलेन्द्र रस—पारद, गन्धक, अभ्रक, सोंठ, पिप्पली, मरिच, जीरा, काला जीरा, शठी काकड़ाश्रृंगी, अजवायन, कूठ, हींग, सैन्धव, यवक्षार, सुहागा, गजपिप्पली, जावित्री, लोह, दुरालभा, लौंग, धत्तूर बीज, जयपाल बीज, कट् फल, चित्रक मूल, चव्य, वच, सब द्रव्य सम भाग लें, इसमें विल्व छाल, पाठा छाल, चित्रक मूल, दन्ती मूल, सहजन छाल, वासक पत्र, सम्भालु पत्र, गम्भारी, धतूरा मूल, कृष्ण जीरक का क्वाथ, पिप्पल मूल, कन्टकारी मूल, आर्द्रक रस इनकी सात भावना दें। मात्रा–२ रत्ती। **अनुपान**–सम्भालु का पत्र रस और मधु (रोगी को अतिसार हो तो जयपाल निकाल दें)।

उपयोग—ज्वर पुरातन हो, शरीर में कफ प्रधान हो तो इसको बरतें।

श्वास भैरव रस—पारद, गन्धक, विष, सोंठ, पिप्पली, चव्य और चित्रक सब द्रव्य एक एक भाग, मरिच दो भाग लेकर आदी के रस से मर्दन करें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—कफजन्य स्वरभंग या मेदजन्य स्वरभंग में कफ की रुकावट होने पर बरतें।

वात निसूदन रस—स्वर्ण, रौप्य, अभ्र, लोह, रस सिन्दूर, कस्तूरी, स्वर्ण माक्षिक, कांस्य, सीसक, हरताल, वंग, हरीतकी, काकड़ाश्रृंगी, वच, धनिया, कट्फल, विष, कर्पूर, सोंठ, पिप्पली, मरिच, जायफल, जावित्री, लौंग, प्रवाल, मोती और सैन्धव–प्रत्येक वस्तु एक-एक भाग, स्वर्ण सिन्दूर ४ भाग, लेकर सबको भाँग के रस में मर्दन करें। मात्रा–४ रत्ती।

उपयोग—पक्षाघात, सर्वांगगत वायु, कुब्जता, धनुस्तम्भ आदि रोगों में उपयोगी।

वात गजेन्द्र सिंह—अभ्र, लोह, रस, गन्धक, ताम्र, सीसा, सोहागा, विष, सैन्धव लवण, लौंग, हींग, और जायफल–प्रत्येक वस्तु का चूर्ण २ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची, हरड़, आँवला, बहेड़ा और जीरा–प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, लेकर घृतकुमारी रस से मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती।

उपयोग—संग्रहणी रोग में वात-कफ की प्रधानता होने पर या शुद्ध वाताहत पक्षाघात में उपयोगी है।

नित्यानन्द रस—पारद, गन्धक, ताम्र, कांस्य, वंग, हरताल, तूतिया भस्म, शंख, कौड़ी भस्म, त्रिफला, त्रिकटु, विड्ग, विड़लवण, सेचल, रुचक लवण, साम्भर लवण, पिप्पली मूल, धनिया, वच, कचूर, पाठा, देवदारु, इलायची, विधारा बीज, निशोथ, चित्रक, दन्तीमूल, प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर हरड़ के क्वाथ से मर्दन करें। मात्रा–५ रत्ती। अनुपान–जल।

उपयोग—सब प्रकार के श्लीपद रोग तथा अर्बुद में उपयोगी है।

कालपूर्ण चन्द्र रस—लोह, वंग, अभ्रक, रस सिन्दूर प्रत्येक १ तोला; अफीम ३ मासा। अफीम को पानी में घोलकर उससे मर्दन करें। मात्रा–१ रत्ती। अनुपान–गूलर चूर्ण या केले के फूल का क्वाथ।

उपयोग—बहुमूत्रता तथा मधुमेह में उपयोगी है।

हेमनाथ रस—पारद, गन्धक, स्वर्ण, स्वर्णमाक्षिक–प्रत्येक वस्तु १ तोला, लोह, कर्पूर, प्रवाल, वंग प्रत्येक वस्तु ६ मासा, अफीम का शत कषाय, केले के फूल का रस, गूलर का रस–सम भाग मिलाकर भावना दें। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान–गूलर रस।

उपयोग—बहुमूत्रता, शुक्र स्राव, मधुमेह तथा सोम रोग में उपयोगी है।

चन्द्रकान्ति रस—रस, गन्धक, अभ्र, रौप्य, हरिताल, कांस्य, लोह, खस, स्वर्णमाक्षिक, स्वर्ण, प्रत्येक वस्तु समभाग, सबके बराबर वंग, सबको मिलाकर आम की छाल का क्वाथ, आँवले का रस, कुलत्थी का क्वाथ, लाजवन्ती रस, वटांकुर रस और सिम्बल की मूल के रस से ३–३ भावना दें। बाद में जायफल, लौंग, मोथा, दालचीनी, इलायची, जावित्री, प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण पारद के समान मिलायें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—आँवले का रस या शतावरी रस।

उपयोग—यक्ष्मा, व्यवायशोष, क्षय रोग, शुक्र क्षय, तथा मूत्र में ज्वाला होने पर उपयोगी है।

तालकेश्वर रस—हरताल शुद्ध, पारद, गन्धक, लोह, अभ्रक, वंग–इन सब द्रव्यों का सम भाग लेकर मधु से मिलायें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—सोम रोग में उपयोगी है।

तारकेश्वर रस—रस सिन्दूर, अभ्रक, गन्धक, सम भाग लें, मधु के साथ मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—मूत्राधिक्य में उपयोगी है।

मेह कुलान्तक—वंग, अभ्र, पारद, गन्धक, चिरायता, पिप्पली मूल, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, सोंठ, मरिच, पिप्पली, निशोथ, रसौंत, विडंग, मूर्वा, बेलगिरी, गोखरू, अनारदाना प्रत्येक वस्तु १ तोला, विशुद्ध शिलाजीत ८ तोला, लेकर वनकापास मूल के रस से मर्दन करें। मात्रा—३ रत्ती।

उपयोग—सब प्रकार के मेह रोगों में मूत्र में दाह, धातुस्राव में, मूत्र में गदलापन होने में उपयोगी है।

नष्टपुष्पान्तक रस—पारद, गन्धक, प्रत्येक ८ तोला लेकर कज्जली करें; पीछे लोह, वंग, सुहागा, रौप्य, अभ्रक, और ताम्रभस्म प्रत्येक ८ तोला मिलायें, गिलोय,

त्रिफला, दन्तीमूल, हारसिंगार के पत्तों, कण्टकारी, देवदारु, सैन्धव लवण, कूठ, वृहती, मकोय, पित्तपापड़ा, तालीश पत्र, वेत्राणु, गोखरू, वासक छाल, और बहेड़ा इनके रस या क्वाथ से ३–३ भावना दें। बाद में जीवन्ती, मुलेहठी, दन्ती मूल, लवंग, वंशलोचन, रास्ना, गोखरू, प्रत्येक का चूर्ण ६–६ मासा मिलायें, और फिर जयन्ती पत्र रस से मर्दन करें। मात्रा–५ रत्ती। अनुपान–तण्डुलोदक।

उपयोग—आर्त्तव दृष्टि, ऋतु न आने पर तथा प्रदर में उपयोग करें।

सिद्ध मकरध्वज—पारा ८ तोला, स्वर्ण पत्र ४ तोला, गन्धक १६ तोला लेकर–कज्जली बनाकर रक्तकार्पास फूल का रस, घृतकुमारी रस से भावना देकर बालुका यंत्र में पाक करें। इस मकरध्वज को पुनः द्विगुण मर्दन से मर्दन करके पुनः कार्पासी पुष्प और घृतकुमारी रस से मर्दन करें और फिर पाक करें। ऐसा करने से मकध्वज तैयार होता है।

निर्देश—कोई-कोई निर्माणकर्त्ता प्रथम बार ही पाक करते हैं। पुनः दूसरी बार करने की जरूरत नहीं समझते, क्योंकि इसमें स्वर्ण की मात्रा अधिक रहने से ही सिद्ध है।

षड्गन वलिजारित मकरध्वज—एक हाँडी में रेती भरकर उसके ऊपर एक दूसरा मिट्टी का शराव रखकर इसमें ८ तोला गन्धक रखकर पिघलावें। जब गन्धक पिघल जाये तब इसमें ८ तोला पारा डालकर मिलायें। जब धूम निकलना बन्द हो जाये तब पुनः गन्धक ८ तोला डालें। इस प्रकार ४८ तोला गन्धक जीर्ण कर लें। शोधित पारा ८ तोला, स्वर्ण पत्र १ तोला, गन्धक ८ तोला, मिलाकर कज्जली करके बालुका यंत्र में पाक करें।

निर्देश—कुछ निर्माण कर्त्ता इस विधि में परिवर्त्तन करके गन्धक का अलग जारण न करके कज्जली में ही पारद से ६ गुना गन्धक मिलाते हैं। फिर बालुका यंत्र में पाक करते हैं।

चन्द्रोदय—स्वर्ण सिन्दूर ८ तोला, कर्पूर ८ तोला, जायफल, जावित्री, लौंग, प्रत्येक ८ तोला, कस्तूरी ६ मासा, इन सब को पान के रस से मर्दन करें। मात्रा–२ रत्ती। अनुपान–पान का रस और मधु।

उपयोग—प्रतिदिन काम में आने वाली औषध, रसायन, बाजीकरण है।

चूर्ण

चूर्णों को बनाने में सब वस्तुओं को–काष्ठ औषधियों को, बारीक कूटना चाहिए। इनको सामान्यतः ८० या १०० मैश की छलनी से छानना चाहिए। भस्में यदि हों तो बाद में मिलायें। केशर, कस्तूरी, कर्पूर आदि बाद में मिलाना चाहिए।

पुष्यानुग चूर्ण—पाठा, जामुन की गुठली, आम्रास्थि मज्जा, पाषाण भेद, रसौंत, अम्वष्टकी (जल जमनी) मोचरस (सिम्बल का गोंद), मंजीठ, कमल केशर, केशर, अतीस, मोथा, वेलगिरी, लोध, गेरू, श्योनाक, इन्द्र जौ, शारिवा, धाय के फूल, मुलेहठी तथा अर्जुन छाल को सम भाग लेकर चूर्ण करें। मात्रा–१ मासा। अनुपान–मधु के साथ, ऊपर से चावलों का पानी।

उपयोग—अतिरक्तस्राव, स्त्रियों के रक्त प्रदर तथा रक्तातिसार में।

चन्दनादि चूर्ण—लाल चन्दन, जटामांसी, लोध, खस, कमलकेसर, नाग केसर, वेलगिरी, नागरमोथा, शर्करा, ह्रीवेर, पाठा, इन्द्र जौ, कुरेज़ की छाल, सोंठ, अतीस, धाय के फूल, रसौत, आम की गुठली की मज्जा, जामुन की गुठली की मज्जा, मोचरस, नीला कमल, लज्जालु, छोटी इलायची तथा अनार फल की छालें, इन २४ द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्ण करें। मात्रा–१ से ४ मासे। अनुपान–मधु, पीछे से तण्डुलोदक दें।

उपयोग—सब प्रकार के प्रदर, रक्तातिसार तथा रक्तार्श में उपयोगी है।

अविपत्तिकर चूर्ण—त्रिकटु, त्रिफला, मुस्ता, विड़, विडंग, इलायची छोटी, तेजपत्र–इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। सब के बराबर लौंग का चूर्ण मिलायें। सब से दुगना निशोथ (काली त्रिवृत्त) का चूर्ण मिलायें। अब सब के बराबर इसमें खांड मिलायें। मात्रा–१ से ४ मासा। अनुपान–गरम करके ठण्डा किया दूध, या शर्बत।

उपयोग—अम्लपित्त, मलबन्ध तथा मूत्रावरोध में।

पंच सकार चूर्ण—सोंठ, हरड़, पिप्पली, त्रिवृत (श्वेत), सौवर्चल लवण, इनको समान भाग लेकर चूर्ण कर लें।[1] मात्रा –१ से ४ मासा।

उपयोग—मलबन्ध में।

निर्देश—यह पाठ योग रत्नाकर का है, परन्तु सामान्यतः पिप्पली के स्थान पर सनाय एवं त्रिवृत के स्थान पर छोटी हरड़–शिवा मिलाते हैं।

लवण भास्कर चूर्ण—सामुद्रलवण ८ तोला, सौवर्चल ५ तोला, बिड्लवण २ तोला, सैन्धव, धनिया, पिप्पली, काला जीरा, तेजपत्र, नागकेसर, तालीश पत्र, अम्लवेतस प्रत्येक वस्तु दो तोला, मरिच १ तोला, श्वेत जीरा १ तोला, सोंठ १ तोला, अनारदाना २ तोला, दालचीनी ६ मासा, इलायची ६ मासा, इन सबको चूर्ण करें। मात्रा–१ से ३ मासा। अनुपान–गरम पानी या छाछ।

उपयोग—अजीर्ण, अग्निमान्द्य तथा अरोचक में।

---

१. षट्सकार चूर्ण—सनाय ४ तोला, छोटी हरड़ २ तोला, सैन्धव, सौवर्चल, सोंठ, सोंफ प्रत्येक १ तोला मिलाकर चूर्ण करें।

हिंग्वाष्टक चूर्ण—सोंठ, मरिच, पिप्पली, अजवायन, सैन्धव, श्वेत जीरा, काला जीरा, घी में शोधी हींग–प्रत्येक द्रव्य १ तोला लेकर मिलायें। मात्रा–१ से ३ मासा।

उपयोग—आनाह, विबन्ध, पेट फूलने तथा भूख न लगने में।

सितोपलादि चूर्ण—मिश्री १६ तोला, वंशलोचन ८ तोला, पिप्पली ४ तोला, इलायची छोटी २ तोला; दालचीनी १ तोला सबका चूर्ण करें। मात्रा—१ से २ मासा।

उपयोग—कास तथा उरःक्षत में मधु से दें।

तालीशादि चूर्ण—तालीशपत्र १ तोला, मरिच २ तोला, सोंठ ३ तोला, पिप्पली ४ तोला, वंशलोचन ५ तोला, इलायची ६ मासा, दालचीनी ६ मासा, शर्करा ३२ तोला मिलायें।

उपयोग—कास, श्वास, स्वरभंग में।

त्रिफला चूर्ण—हरीतकी बहेड़ा, आँवला–सब समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा—१ से ४ मासा। अनुपान—गरम पानी, शहद, बिना मीठे का दूध।

उपयोग—आनाह, विबन्ध, तथा मलबन्ध में।

कृष्ण बीजादि चूर्ण—भूना काला दाना ८ तोला, सनाय ४ तोला, सोंठ २ तोला, सौंफ १ तोला, गुलाब के फूल २ तोला, शर्करा ८ तोला। मात्रा–१ से ३ मासा। अनुपान–पानी से।

उपयोग—मलबन्ध, आनाह तथा उदावर्त्त में।

यष्ट्यादि चूर्ण—मुलेहठी १ तोला, सनाय १ तोला, सौंफ १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला–दारु हल्दी १ भाग, शर्करा ७ तोला। मात्रा–१ से ३ मासा। अनुपान –पानी से।

यवानी खाण्डव चूर्ण—अजवायन ४ भाग, अनारदाना, सोंठ, तिन्तीडीक, अम्लवेतस, खट्टा बेर, प्रत्येक ४ भाग, मरिच २॥ भाग, पिप्पली १० भाग, दालचीनी २ भाग; काला नमक २ भाग, धनिया, श्वेत जीरा प्रत्येक २ भाग, शर्करा ६४ भाग मिलायें।

उपयोग—अग्निमान्द्य में, अरुचि में उपयोगी है।

वैश्वानर चूर्ण—सैन्धव २ भाग, अजवायन, सोंठ ५–५ भाग, हरड़ १२ भाग लेकर चूर्ण करें।

उपयोग—आमवात, वात का अनुलोमन करता है—गरम पानी से ३ मासा दें।

सुदर्शन चूर्ण—त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कटेरी, बड़ी कटेरी, कचूर, त्रिकटु, पिप्पली मूल, मूर्वामूल, गिलोय ६ मासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, मोथा, त्रायमाणा, गन्धवाला, नीम की छाल, पोहकर मूल, मुलहठी, कूडा की छाल, अजवायन, इन्द्र जौ, भारंगी, सहजन की छाल, फिटकरी, वच, दालचीनी, पद्माख, खस, चन्दन, अतीस, बलामूल,

शालपर्णी, पृश्नपर्णी, वायविडंग, तगर, चित्रक, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, जीवका, ऋषभक, लौंग, वंशलोचन, पुण्डरीक काष्ठ काकोली, तेजपत्र, तालीसपत्र जावित्री, प्रत्येक का चूर्ण एक-एक भाग और सारे चूर्ण का आधा चिरायते का चूर्ण मिलायें। मात्रा–१ मासा।

उपयोग—पुराने ज्वर में बहुत उपयोगी है।

पलाशबीजादि चूर्ण—पलाशबीज, इन्द्र जौ, वायविडंग, चिरायता—सम भाग लें। मात्रा—१ मासा। अनुपान–छाछ या गुड़ से।

उपयोग—पेट के कृमियों को निकालता है।

कट्फलादि चूर्ण—कट्फल, कत्तृण, भारंगी, मोथा, धनिया, वच, हरड़, सोंठ, पित्तपापड़ा, काकड़ाश्रृंगी, देवदारु–सब एक-एक भाग लेकर चूर्ण करें। मात्रा–१ से ३ मासा। अनुपान—गरम पानी या मधु से।

उपयोग—कास में उत्तम है।

भृंगराज रसायन चूर्ण—भाँगरा १ भाग, तिल १/२ भाग, आँवला १/२ भाग, शर्करा २ भाग मिलायें। मात्रा–२ मासा। अनुपान–दूध से।

उपयोग—रसायन, धातुओं को बल देता है।

गंगाधर चूर्ण—मोथा, इन्द्र जौ, लोध, बिल्व, मोचरस, धाय के फूल, सब बराबर भाग लें। मात्रा १ से ३ मासा। अनुपान–पानी या मधु।

उपयोग—अतिसार, रक्तातिसार में उपयोगी, स्तम्भक है।

कपित्थाष्टक चूर्ण—कैथ कच्चा, ८ भाग, शर्करा ६ भाग, अनारदाना ३ भाग, इमली, बेलगिरि, धाय के फूल, अजवायन, पिप्पली, प्रत्येक ३–३ भाग, मरिच, जीरक, धनिया, पिप्पली मूल, नेत्रवाला, सेचल लवण, अजवायन, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, चित्रक मूल; सोंठ प्रत्येक १ भाग लेकर चूर्ण करें। मात्रा–१ मासा से ३ मासा। अनुपान–पानी या छाछ से।

उपयोग—अग्निमान्द्य, अतिसार तथा प्रवाहिका में।

लवंगादि चूर्ण—लवंग, शुद्ध कर्पूर, इलायची, दालचीनी, नागकेशर, जातिफल, खस, सोंठ, काला जीरा, काला अगरु, वंशलोचन, जटामांसी, नीलोत्पल, पिप्पली, चन्दन श्वेत, तगर, सुगन्धवाला, कंकोल, प्रत्येक वस्तु एक-एक भाग, शर्करा ९ भाग मिलायें। मात्रा—१ मासा।

उपयोग—अरोचक तथा अतिसार में—आनाह में।

जातिफलादि चूर्ण—जायफल, लौंग, इलायची, तेजपत्र, दालचीनी, नागकेसर, कपूर, चन्दन श्वेत, तिल, वंशलोचन, तगर, आँवला, तालीशपत्र, पिप्पली, हरड़,

कलौंजी, चित्रक मूल, सोंठ, विडंग, मरिच, प्रत्येक द्रव्य एक-एक भाग, भाँग (घी में सेकी) १० भाग और शर्करा ३० भाग लेकर मिलायें। मात्रा–१ मासा। अनुपान—पानी या छाछ से।

उपयोग—संग्रहणी, अतिसार, तथा जीर्ण अतिसार में उत्तम है।

एलादि चूर्ण—इलायची, प्रियंगु, मोथा, बेर की गुठली की मींगी; पिप्पली, श्वेत चन्दन, लाजा, लवंग, नागकेसर एक-एक भाग मिलायें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—मधु से चटायें।

उपयोग—अरुचि तथा अग्निमान्द्य में लाभप्रद है।

पटोलादि चूर्ण—पटोल मूल १ भाग, त्रिफला १ भाग, हरिद्रा, विडंग, प्रत्येक द्रव्य १–१ भाग, नीलनी बीज ३ भाग, निशोथ ४ भाग। मात्रा–१ मासा। अनुपान–पानी से दें।

उपयोग—उदर रोग में, ज्वर के पीछे, प्लीहा-यकृत, काम कम करते हों तब दें।

कृष्ण बीजादि चूर्ण—भूना हुआ काला दाना ८ भाग, सनाय ४ भाग, सोंठ २ भाग, सौंफ १ भाग, गुलाब के फूल २ भाग, शर्करा ८ भाग। मात्रा–२ से ३ मासा।

उपयोग—आनाह, विबन्ध, तथा विरेचक है।

यस्त्यादि चूर्ण—मुलेहठी १ भाग, सनाय १ भाग, सौंफ १ भाग, गन्धक १ भाग, दारुहरिद्रा, १ भाग, शर्करा ७ भाग।

उपयोग—मलबन्ध, विबन्ध में उपयोगी है।

शतपुष्पादि चूर्ण—सौंफ, वायविडंग, सैन्धा नमक, काली मिर्च–सम भाग लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा–८ रत्ती। अनुपान —गरम पानी से दें।

उपयोग—आमवात में उपयोगी है।

गोक्षुरादि चूर्ण—गोखरू, ईख की जड़, शतावर, मूसली, कौंच, नागबला, बला सब समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा–२ मासा। अनुपान—दूध के साथ।

उपयोग—प्रमेह तथा शुक्रतरलता में।

सर्पगन्धा चूर्ण—सर्पगन्धा १ तोला, अजवायन, खुरामानी २ तोला, रस सिन्दूर १ मासा मिलाकर चूर्ण करें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—पानी से।

उपयोग—रक्तचाप के बढ़ने, अनिद्रा तथा चित्तविक्षेप में।

अलम्बुषाद्य चूर्ण—मुण्डी, गोखरू, गिलोय, विधारामूल, पिप्पली, निशोथ, मोथा, बरणा की छाल, पुनर्नवा, हरड़, आँवला बहेड़ा, सोंठ–इनको सम भाग लेकर चूर्ण बना लें। मात्रा–३ मासा, गरम पानी या मस्तु (दही का पानी)।

उपयोग—आमवात में।

अलम्बुषाद्य चूर्ण—मुण्डी १ भाग, गोखरू २ भाग, हरड़ ३ भाग, बहेड़ा ४ भाग, आँवला ५ भाग, सोंठ ६ भाग, गिलोय ७ भाग, निशोथ २८ भाग मिलाकर चूर्ण बनायें।

अजमोदादि चूर्ण—अजवाइन, गिलोय, सोंठ, गिलोय, त्रिफला, निशोथ, नौसादर, गोखरू, काली निशोथ, दारु हल्दी—इनको सम भाग में लेकर चूर्ण करें। मात्रा—१ मासा।

उपयोग—ओजोमेद, मलबन्ध के कारण बच्चों, युवाओं में-प्रोस्टेट का चिकना रस-सा मूत्रमार्ग से आने पर लाभ करता है।

अश्वगन्धादि चूर्ण—असगन्ध, विधारामूल, सम भाग लेकर, इनके बराबर शर्करा मिलायें। मात्रा—३ मासा। अनुपान—दूध के साथ।

उपयोग—वृष्य है, शुक्रवर्धक, रक्तचाप के कम होने में उपयोगी है।

कालक चूर्ण—गृह धूम, यवक्षार, पाठा, त्रिकटु, रसौंत, तेजबल, त्रिफला, अगर, चित्रक, इनको सम भाग लेकर चूर्ण करलें। मधु में मिलाकर गले में लगायें।

उपयोग—टौंसिल के बढ़ने या पकने पर।

पीतक चूर्ण—मैनसिल, यवक्षार, हरताल, सैन्धा नमक, दारु हल्दी की छाल, इनके चूर्ण को मधु से मिलाकर थोड़ा घी मिलायें। इसे मुख रोग तथा दाँतों के रोग में बरतें।

उपयोग—मसूड़ों पर मलने से पायरिया तथा पूय आना कम होता है।

गंगाधर चूर्ण—(वृहत्) मोथा, सोनापाठा, (अरलु) की छाल, सोंठ, धाय के फूल, वेलगिरी, मोचरस, पाठा, इन्द्र जौ, कुटज की छाल, लोध, नेत्रवाला, आम की गुठली, अतीस, लाजवन्ती—इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा—२ मासा। अनुपान—चावल के पानी से।

उपयोग—प्रवाहिका तथा अतिसार में।

त्रिकट्वादि चूर्ण—सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा आँवला, चव्य, बड़ की छाल, कट्फल, इनका चूर्ण सम भाग लेकर मद्य या त्रिफला के क्वाथ से दें। मात्रा—२ से ४ मासा।

उपयोग—गुल्म तथा पेट में वायु रुकने पर।

वचादि चूर्ण—वच, हरड़, चित्रक, जौखार, पिप्पली, अतीस, और कूठ सम भाग लेकर इनको चूर्ण करें। मात्रा—२ से ४ मासा। अनुपान—गरम जल से।

उपयोग—गुल्म में, वायु के रुकने में, आनाह में।

त्रिवृतादि चूर्ण—निशोथ, कचूर, वला, रास्ना, सोंठ, हरड़, पुष्कर मूल इनको समभाग लेकर चूर्ण करें। मात्रा—१ मासा से ३ मासा। अनुपान–गरम पानी या मद्य।

उपयोग—हृदय पीड़ा तथा श्वासावरोध में।

दशन संस्कार चूर्ण—सोंठ, हरड़, मोथा, कत्था, कर्पूर, सुपारी (अन्तर्धूम दग्ध) मरिच लौंग, दालचीनी, इनके चूर्ण को सम भाग लेकर मिलायें, सबके बराबर खटिका का चूर्ण मिलायें।

उपयोग—दाँतों पर–मसूड़ों पर मलने के लिये मंजन रूप में बरतें।

दाड़िभाष्टन चूर्ण—वंशलोचन २ तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, प्रत्येक ४–४ तोला, अजवायन, धनिया, कालाजीरा, पिप्पली मूल, मरिच, पिप्पली, सोंठ, प्रत्येक ८ तोला, अनारदाना ६४ तोला, खांड ३४ तोला लेकर मिलायें। मात्रा—१ से ३ मासा।

उपयोग—वातपैत्तिक, या पैत्तिक, अतिसार में उपयोगी है।

नारसिंह चूर्ण—शतावरी चूर्ण २ सेर, गोखरू २ सेर, वराहीकन्द २॥ सेर, गिलोय २ सेर ८ छटाँक, लाल चन्दन ३ सेर ३ छटांक, चित्रक १ सेर, तिल १ सेर ९ छटाँक, त्रिकटु मिलित ६४ तोला, खांड ७ सेर, शहद ३॥ सेर, घी १ सेर १२ छटाँक, विदारी कन्द का चूर्ण १ सेर ९ छटांक, इनको मिलाकर एक पात्र में रख लें। मात्रा— १/४ से १/२ तोला।

उपयोग—वृष्य, रतिशक्तिवर्धक तथा रसायन है।

निर्देश—खांड तक वस्तुओं को मिला लें। घी और मधु अनुपान में बरतें।[1]

नाराच चूर्ण—खांड ८ तोले, निशोथ ८ तोले, पिप्पली २ तोले, इनको मिलायें। मात्रा १/४ से १/२ तोला। अनुपान—मधु में मिलाकर दें।

उपयोग—मलबन्ध, उदावर्त्त तथा आनाह में उपयोगी है।

हिंग्वादि चूर्ण—भूनी हींग १ तोला, वच २ तोला, कूठ ४ तोला, सज्जीखार ८ तोला, विड़ लवण १६ तोला, पीसकर चूर्ण बनायें। मात्रा—२ मासा। अनुपान—गरम जल से।

उपयोग—आनाह, उदावर्त्त, विसूचिका तथा हृदय रोग में।

निम्बादि चूर्ण—नीम की छाल, गिलोय, हरड़, आँवला, प्रत्येक चूर्ण ४–४ तोला,

---

१. चूर्णों में खांड न मिलाया जाये तो अच्छा; पत्रक पर (बोतल पर चिपके कागज पर) निर्देश दे दिया जाये कि चूर्ण के बराबर, आधी, या जितनी अभीष्ट हो उतनी खांड मिला कर दें–मिला ले। इसमें चूर्ण पैक होने पर जल्दी बिगड़ते नहीं।

सोमराजी (कालीजीरी), ४ तोला, सोंठ, वायविडंग, पंवाड़ (चक्रामर्द), पिप्पली, अजवायन, वच, कुटकी, कत्था, सैन्धा नमक, यवक्षार, श्वेतजीरा, हल्दी, दारुहल्दी, मोथा, देवदारु, कूठ, प्रत्येक का चूर्ण २ तोला लेकर मिलायें। मात्रा—१२ रत्ती से ४ मासा। अनुपान–गिलोय का क्वाथ।

उपयोग—वातरक्त, कोठ, उदर्द तथा कण्डू में।

न्यग्रोधादि चूर्ण—वड़, गूलर, पीपल, अरलू, अमलतास, विजयसार, इनकी छालें, आम्र की गुठली की मज्जा, जामुन की गुठली, कैथ, चिरौंजी, अर्जुन की छाल, धावन की छाल, मुलैहठी, महुवे के फूल, लोध, वरणा की छाल, फरहद की छाल, पटोल, मेढ़ाश्रृंगी, दन्ती मूल, चित्रक, अरहर की जड़, करंज, त्रिफला, इन्द्र जौ, भिलावा इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा—१ मासे से ३ मासा। अनुपान—त्रिफला क्वाथ।

उपयोग—बहुमूत्र तथा प्रमेह विड़कों में, उपयोगी है।

पंचकोल चूर्ण—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, सम भाग लेकर चूर्ण कर लें।

उपयोग—वात, कफ को शान्त करता है। इसकी मात्रा १० मासा है। इसे गरम पानी से बरतें।

पथ्यादि चूर्ण—हरड़, सोंठ, अजवायन, इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा—३ मासा। अनुपात—छाछ या गरम पानी से दें।

उपयोग—आमवात, शोथ तथा अग्निमान्द्य में।

बाल चतुर्भद्रिका—मोथा, पिप्पली, अतीस, काकड़ाश्रृंगी, इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा—६ से ८ रत्ती। **अनुपान**—मधु के साथ दें।

उपयोग—बच्चों के ज्वर, अतिसार, श्वास तथा कास में उपयोगी है।

विल्वादि चूर्ण—वेलगिरी, मोथा, इलायची, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, अजवायन, अजमोदा, निशोथ, चित्रक, विड़ नमक, असगन्ध, वलामूल, पिप्पली, वंशलोचन, शिलाजीत— इनके चूर्ण को सम भाग में मिलायें। मात्रा–१ से २ मासा। अनुपान—बिना चीनी का दूध।[1]

उपयोग—मस्तिष्क की निर्बलता, अनिद्रा तथा रक्तचाप के बढ़ने पर उपयोगी है।

---

१. लाल चन्दन के स्थान पर भिलावा शुद्ध मिलाते हैं। शुद्ध भिलावा अधिक वृष्य है।

यमान्यादि चूर्ण—अजवायन, हींग, सैन्धा नमक, यवक्षार, सेचल नमक, हरड़ इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा–१ मासा से ३ मासा। सुरा या तक्र के साथ।

उपयोग—गुल्म, आनाह तथा उदावर्त्त में।

नारायण चूर्ण—अजवायन, हऊबेर, धनिया, त्रिफला, कालाजीरा, कालीजीरी, पिप्पली मूल, अजमोदा, कचूर, वच, सोया, जीरा, त्रिकटु, स्वर्ण क्षीरी (सत्यानाशी), चित्रक, यवक्षार, सर्जक्षार, पोहकर मूल, कूठ, पांचों नमक, वायविडंग, प्रत्येक एक-एक भाग, दन्ती मूल ३ भाग, निशोथ २ भाग, इन्द्रायण की जड़ २ भाग, सातला ४ भाग, लेकर चूर्ण करें। मात्रा—१ मासा से ३ मासा। अनुपान—तक्र के साथ।

उपयोग—उदर रोग, प्लीहा तथा यकृत वृद्धि में उत्तम है।

लवंग चतुःसम—जायफल, लौंग, जीरा, सुहागा, इनका चूर्ण मधु और खाण्ड से १/४ से १ मासा तक देना चाहिये।

उपयोग—बच्चों के अतिसार, विबन्ध तथा गुल्म में।

शिवाक्षार पाचन चूर्ण—त्रिकटु, अजमोद, सैन्धव, जीरा श्वेत, जीरा काला, हींग ये वस्तुएँ समान भाग–सर्जक्षार, इसमें एक तोले के पीछे एक मासा मिलायें। मात्रा–३ मासा।

उपयोग—अपचन, अजीर्ण तथा खट्टी डकार आने में।

शृंग्यादि चूर्ण—काकड़ा शृंगी, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला, कटेरी, भांर्गी, पोहकर मूल, पाँचों नमक सम भाग लेकर गरम पानी से लें। मात्रा–६ रत्ती से १२ रत्ती।

उपयोग—कास, श्वास, हिक्का में उत्तम है।

समशर्कर चूर्ण—छोटी इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग, तेजपात ३ भाग, नागकेसर ४ भाग, मिर्च ५ भाग, पिप्पली ६ भाग, सोंठ ७ भाग, सारे चूर्ण के बराबर खांड मिलायें। मात्रा– १ से २ मासा। अनुपान—गरम पानी या शहद से।

उपयोग—मन्दाग्नि, कास, अरुचि तथा श्वास में।

सारस्वत चूर्ण—कूठ, असगन्ध, सैन्धा नमक, अजवायन, जीरा, काला जीरा, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, पाठा, शंखपुष्पी प्रत्येक १ तोला, वच ११ तोला, लेकर चूर्ण करें। इसको ब्राह्मी के रस से तीन बार भावित करे। मात्रा—१ मासा। अनुपान—मधु और घृत से दें।

उपयोग—उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा तथा भ्रम में उपयोगी है।

सामुद्राद्य चूर्ण—सामुद्र लवण, काला नमक, सैन्धव लवण, यवक्षार, अजवायन, अजमोदा, पिप्पली, चित्रक, सोंठ, हींग, विड़ नमक, इनको समान भाग में मिलायें। इसको घी में मिलाकर भोजन से पूर्व (१/२ घन्टा पूर्व) खायें। मात्रा–१ मासा।

उपयोग—अजीर्ण, गुल्म, उदररोग, ग्रहणी में ।[1]

एलादिचूर्ण—छोटी इलायची चूर्ण–१ तोला; दालचीनी २ तोला, नागकेसर चूर्ण ३ तोला, मरिच ४ तोला, सुहागे की खील ५ तोला, पिप्पली चूर्ण ६ तोला, चीनी २१ तोला मिलायें। मात्रा–१ मासा।

उपयोग—शुष्क कास, जब कफ बाहर न आये तब दें ।[1]

शंखादि चूर्ण—शंख भस्म, विट्लवण, सैन्धव, साम्भर, सौवर्चल, रुचक लवण, सुहागा, जायफल, सौंफ, अजवायन, हींग, सोंठ, पिप्पली, मरिच, प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला मिलायें। मात्रा–१ मासा। अनुपान–गुनगुना जल या छाछ।

उपयोग—यकृत-प्लीहा बढ़ने पर वेदना तथा अग्निमान्द्य होने पर दें।

अगस्त्य चूर्ण—सोंठ, मरिच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला, मोथा, विडंग, बड़ी इलायची, तेजपत्र, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, लवंग चूर्ण १० तोला, निशोथ चूर्ण, ४० तोला, चीनी ६० तोला, मिलायें—मात्रा—६ मासा।

उपयोग—अम्लपित्त रोग में मलबन्ध रहने, साथ में वमन, हाथ-पैर में जलन तथा वेदना होने पर।

विजय चूर्ण—सोंठ, मरिच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला, दालचीनी, तेज पत्र, इलायची, वच, हींग, पाठा, यवक्षार, हल्दी, दारुहल्दी, चव्य, कुटकी, इन्द्र जौ, लालचीता, सौंफ, सैन्धव, विट्लवण, साम्भर, सेंचल, रुचक, पिप्पली मूल, बेलगिरि और अजवायन, प्रत्येक द्रव्य सम भाग लें। मात्रा–६ मासा। अनुपान–जल।

उपयोग—वातिक अर्श में, अग्निमान्द्य एवं दर्द होने पर इसको बरतें।

वैश्वानर चूर्ण—सैन्धव लवण २ भाग, अजवायन ५ भाग, सोंठ ५ भाग, हरड़ १२ भाग, लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा–४ मासे से ६ मासा। अनुपान–छाछ।

उपयोग—वातिक या वात श्लैष्मिक अर्श रोग में कटि, पीठ में दर्द होने पर, मलबन्ध होने पर उपयोगी है।

शूलहरण योग—हरीतकी, सोंठ, पिप्पली, मरिच, कुचला, हींग, सैन्धव और शुद्ध गन्धक ये सब द्रव्य सम भाग लेकर जल से मर्दन करें। मात्रा–३ रत्ती।

उपयोग—यकृत-प्लीहा में वेदना होने पर तथा अग्निमान्द्य रहने पर उपयोगी है।

---

१. **सामुद्राद्य चूर्ण—दूसरा भी है उसमें सामुद्र, सैन्धव नमक, यवक्षार, सर्जक्षार, सौवर्चल, रोमक लवण, विड़ नमक, दन्तीमूल, लोह भस्म, मण्डूर भस्म, निशोथ, सूरण, इनका चूर्ण सम भाग में मिलाया जाता है। मात्रा ८ से १६ रत्ती; अर्श में, शूलमें उपयोगी है।**

कल्याण चूर्ण—पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मरिच, हरड़, आँवला, बहेड़ा, विट्लवण, सैन्धक लवण, विडंग, करंज, अजवायन, धनिया और जीरा, प्रत्येक द्रव्य १ भाग और पिप्पली चूर्ण २ भाग मिलायें। मात्रा—६ मासा। अनुपान–उष्ण जल।

उपयोग—श्लैष्मिक उन्माद या वातिक उन्माद की प्रथमावस्था में उपयोगी है।

अजमोदादि चूर्ण—अजवायन, मरिच, पिप्पली, विडंग, देवदारु, चित्रक, सौंफ, सैन्धव, और पिप्पली मूल–प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण ८ तोला, सोंठ का चूर्ण ८० तोला, विधारा बीज ८० तोला; हरड़ का चूर्ण ५० तोला। सब को मिलायें। मात्रा–३ मासे से ६ मासा। अनुपान—गरम जल।

उपयोग—वातव्याधि में, हृदय पीड़ा, वस्तिगत वायु में, कटिशूल में उपयोगी है।

निम्बादि चूर्ण—नीम छाल, गिलोय, हरड़, आँवला, बावची, प्रत्येक का चूर्ण ८ तोला, सोंठ, विडंग, पिप्पली, अजवायन, वच, जीरा, कुटकी, खैर की छाल, सैन्धव लवण, यवक्षार, मोथा, देवदारु, कूठ, पनवाड़ प्रत्येक का चूर्ण २ तोला, मिलायें। मात्रा—३ मासा से ६ मासा। **अनुपान—**गरम पानी से।

उपयोग—वातिक, श्लैष्मिक, वातरक्त शूल में उपयोगी है।

पुष्करादि चूर्ण—कूठ (या पुष्कर मूल), जम्बीरी निम्बू की जड़, सोंठ, कचूर, हरड़ प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण सम भाग लेकर मिलायें। मात्रा–३ मासे से ६ मासा। अनुपान–दूध, काँजी, या घृत से दें।

उपयोग—वातज हृदय रोग या हृदय में असह्य वेदना होने पर बरतें।

चन्दनादि चूर्ण—लाल चन्दन, सिम्बल की मूल, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, हल्दी, दारुहल्दी, अनन्त मूल, काली सारिवा, मोथा, खस, मुलेहठी, आँवला, सनाय, वंशलोचन, भांर्गी, देवदारु, हरड़, और शोधित तूतिया भस्म, प्रत्येक द्रव्य १ भाग, और सबके बराबर लोह भस्म मिलायें। मात्रा—६ रत्ती से २ मासा। अनुपान–त्रिफला जल।

उपयोग—विषाक्त मेह रोग तथा गोनोरिया में उपयोगी है।

दशन संस्कार चूर्ण—सोंठ, हरड़, मोथा, कर्पूर, खैर, सुपारी की भस्म, मरिच, लौंग, दालचीनी, प्रत्येक का चूर्ण समान भाग और सबके बराबर खड़िया का चूर्ण मिलायें।

उपयोग—कृमिदन्त, तथा दाँत के दर्द में उपयोगी है।

शतपुष्पादि चूर्ण—सौंफ, सोंठ, सफेद जीरा, हरड़, पोस्त का डोडा समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। इनको थोड़े से घी में सेंक लें। मात्रा—३ मासा। अनुपान–छाछ या दही के साथ दें।

उपयोग—अतिसार तथा पेट में ऐंठन में उत्तम है।

शुक्रस्तम्भकर चूर्ण—पोस्त ५ तोले, सोंठ १/४तोले, मिश्री ५ तोले, दालचीनी १ तोला लेकर चूर्ण बना लें। मात्रा—३ मासा। अनुपान–दूध या जल।

उपयोग—शुक्र स्तम्भन करता है।

अवलेह

सुपारी पाक (पूग खण्ड)—सुपारी दक्खिनी का चूर्ण १ सेर ९ छटाँक ३ तोला, दूध १२ सेर १२ छटाँक ४ तोला, खांड १० सेर, घी १ सेर ९ छटाँक ४ तोला, इनका पाक करें। इसमें दालचीनी, इलायची छोटी, तेजपात, नागकेसर, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, लौंग, लाल चन्दन, वालछड़, तालीश पत्र, कमल बीज, नीलोत्पल, वंशलोचन सिघाड़ा, जीरा, विदारीकन्द, गोखरू, शतावर का रस, मालती फूल, आँवला–प्रत्येक २ तोला मिलायें। कर्पूर ४ तोले डालें। मात्रा–१/२ से १ तोला।

उपयोग—शूल, स्त्रियों के प्रदर तथा कमर के दर्द में उपयोगी है।

सौभाग्य शुण्ठी—सोंठ का चूर्ण ६४ तोला, दूध ६ सेर ६ छटाँक में पकायें, इसको ६४ तोला घी में भूनें, पीछे से खांड ३ सेर की चासनी बनाकर, इसमें सोंठ का भुना चूर्ण एवं कसेरू, सिघाड़ा, कमलगट्टा, मोथा, जीरा, कालाजीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, छैलछरीला, नागकेसर, तेजपात, दालचीनी, धाय के फूल, कचूर, छोटी इलायची, सोया, धनिया, गजपिप्पली, काली मिर्च, शतावर, प्रत्येक ४ तोला, लोह भस्म ४ तोला, अभ्रक भस्म ४ तोला मिलायें। मात्रा—आधे तोले से २ तोला।

उपयोग—सूतिका रोग तथा ग्रहणी में।

कुटजावलेह—कुटज छाल ५ सेर, पानी १२ सेर १२ छटाँक ४ तोला, शेष ३ सेर १ छटाँक १ तोला, गुड़ १½ सेर, रसौंत ४ तोला, मोचरस, त्रिकटु, त्रिफला, लज्जालु, चित्रक, पाठा, विल्वगिरी, इन्द्रजौ, वच, भल्लातक, अतीस, विडंग, सुगन्धवाला, प्रत्येक ४ तोला, घृत १६ तोला, मधु १ तोला मिलायें। मात्रा–१ तोला।

उपयोग—रक्तस्राव, रक्तार्श तथा रक्तातिसार में।[1]

कुष्माण्ड खण्ड (कुष्माण्डावलेह)—अच्छे पके कुष्माण्ड के बीज और छिलके निकाल कर थोड़े से पानी में इसे स्विन्न कर लें, स्विल करके पानी को रख लें, कुष्माण्ड के टुकड़े करके धूप में सुखा लें। जब पानी सूख जाये तब इनको (१० सेर को) ३ सेर ३ छटाँक १ तोला घी में भून लें। अब पेठे के दस सेर रस में १० सेर खांड मिलाकर पाक करें। पाक नजदीक आने में—पिप्पली, १६ तोला, सोंठ १६ तोला, जीरा १६ तोला, दालचीनी, तेजपात, मरिच, धनिया प्रत्येक ८ तोला मिलायें, मधु १२८ तोला मिलायें। मात्रा—१ तोले से २ तोला।

---

१. इसमें खूनखराबा यदि दो तोला मिलाया जाये तो अच्छा लाभ करता है।

उपयोग—छाती से रक्त आने तथा नासा या गले से ऊर्ध्वगामी रक्तस्राव में उपयोगी है ।

अश्वगन्धादिलेह—अश्वगन्धा चूर्ण—४८ तोला, विदारी चूर्ण , शारिवा चूर्ण (चौफ चीनी का चूर्ण लेना उत्तम है), जीरक, मुलेहठी, प्रत्येक ४८ तोला, घी १ सेर ८ छटाँक, चीनी ६ सेर, द्राक्षा ४० तोला, इलायची चूर्ण—८ तोला , शहद ३ सेर मिला कर रख दें ।

उपयोग—शुक्रवर्धक तथा वृष्य ।

वासावलेह—अडूसे का रस या क्वाथ ३ सेर ४ छटाँक, खांड ६४ तोले, घी १६ तोला, मिलाकर पाक करे । जब गाढ़ा हो जाये तब पिप्पली १६ तोला मिलायें । ठण्डा होने पर मधु ६४ तोला मिलायें ।

उपयोग—क्षय रोग में रक्त आने पर, कास तथा छाती की निर्बलता में ।

च्यवनप्राशावलेह—विल्व, अरणी, श्योनाक, गम्भारी, पाटला, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, वला, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, पिप्पली, गोखरू, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, काकड़ा श्रृंगी, भूम्याम्लकी , द्राक्षा, जीवन्ती, पुष्कर मूल, अगरु, हरड़, गिलोय, ऋद्धि-वृद्धि (अभाव में विदारी कन्द), कचूर, मोथा, मेदा-महामेदा (अभाव में शतावरी) , छोटी इलायची, कमल, लाल चन्दन, विदारीकन्द, वासामूल, काकोली-क्षीर काकोली (अभाव में असगन्ध), काकनासिका, प्रत्येक द्रव्य ८ तोला, जल २०४८ तोला, आँवला गिनती में ५००, (लगभग ६¼सेर) ; लेकर सिद्ध करें । जब पानी आधा रह जाये, तब छान लें । आँवलों की अलग पिट्ठी बनायें । इस पिट्ठी को घी ४८ तोला और तैल तिल ४८ तोले में भून लें । क्वाथ में खांड ५ सेर मिलाकर पाक करें । उसमें यह भूना आँवला मिलाकर अवलेह बनायें । बाद में इसमें वंशलोचन—३२ तोला, पिप्पली, दालचीनी, इलायची छोटी, तेजपत्र, नागकेशर का चूर्ण प्रत्येक १६ तोला और मधु ४८ तोला मिलायें ।

उपयोग—रसायन, क्षय, शोष तथा कास-श्वास में उपयोगी है ।

निर्देश—क्वाथ करते समय आँवले को पोटली में ढीला बाँध कर डाल देना चाहिये । जब क्वाथ हो जाये, तब आँवलों को निकाल कर इनकी गुठली निकाल लें । फिर इनको तार की चलनी पर या कपड़े में मलकर या सिल पर बारीक पीसकर पिट्ठी बना लें—रेशा मर जाये, रेशा न रहे । इसको घी और तैल में भूनना चाहिये । दक्षिण में तिल तैल के स्थान पर नारियल के तैल का व्यवहार भूनने में होता है । इसमें कोई हानि नहीं ।

अमृत भल्लातक—भिलावा ६ सेर ६ छटाँक लेकर नरम ईंट के चूरे के साथ

कूट कर जल से धोयें। इसे सुखा लें। इसको बारीक कूट कर २५ सेर १० छटाँक जल में पकायें। जल ६ सेर ६ छटांक शेष रह जाये तब इसको छान लें। फिर इसको ६ सेर ६ छटाँक दूध के साथ पकायें। चौथाई रहने पर छान लें। फिर ६ सेर ६ छटाँक घी के साथ पकायें। जब सिद्ध हो जाये तब खांड ३ सेर ३ छटाँक भली प्रकार मिला दें। मात्रा–२ मासा। **अनुपान**—दूध से।

उपयोग—रसायन, वातरक्त तथा कुष्ठ में उपयोगी है।

निर्देश—ईंट के साथ कूट कर भिलावे को पानी में उबाल कर धोकर शुष्क कर लेना चाहिये। फिर इनको ६ सेर ६ छटाँक दूध में पकाना चाहिये। वहाँ से निकाल कर जब दूध चौथाई रह जाये, तब घी में भूनना चाहिये। प्रायः दूध में नहीं पकाते। यह शोधन विधि ही है। यदि भिलावा शुद्ध हो जाये तब सीधा घी में भूनना चाहिये। इसको सिद्ध करके १० दिन पीछे काम में लाना चाहिये, जिससे घी भिलावे के साथ भली प्रकार मिल जाये।

अगस्त्य हरीतकी—दशमूल के दस द्रव्य मिलित, कौंच के बीज, शंख पुष्पी, कचूर, बला, गज पिप्पली, अपामार्ग, पिप्पली मूल, चित्रक, भारंगी, प्रत्येक १६ तोला, पोटली में बँधे जौ ६ सेर ६ छटाँक, पोटली में बँधी हरड़ गिनती में १००, लेकर इनको १ मन २५ सेर जल में पाक करें। जब जौ गल जाये (क्वाथ चौथाई रह जाये) तब छान लें, हरड़ों को गोद ले, और चीर कर गुठली निकाल लें। घी ६४ तोला, तिल तैल ६४ तोला लेकर दोनों में हरड़ों को भून लें। हरड़ों को क्वाथ १६ सेर और गुड़ १० सेर लेकर पाक करें। गाढ़ा होने पर इसमें पिप्पली चूर्ण ३२ तोला, मधु ६४ तोला मिला कर रख दें। मात्रा—१ तोला तथा हरड़ १ साथ में लें।

उपयोग—क्षय, कास तथा श्वास में उपयोगी है।

व्याघ्री हतीतकी—जड़, फूल, पत्ते सहित छोटी कटेरी १० सेर, पोटली में बँधी हरड़ संख्या में एक सौ (१००); जल १ मन १२ सेर लेकर क्वाथ करें। जल जब १२ सेर १३ छटाँक रह जाये तो उतार लें। हरड़ों को चीर कर गुठली निकाल कर, छने क्वाथ में १० सेर गुड़ डालकर, तथा गुठलीरहित हरड़ें मिलाकर पाक करें। जब गाढ़ा हो जाये तब नीचे उतार कर ठण्डा होने पर त्रिकटु मिलित १६ तोला, चतुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर) मिलित ८ तोला मिलायें और मधु ४८ तोला डालें। मात्रा–४ मासा।

उपयोग—कास, श्वास, क्षय कास, तथा प्रतिश्याय में।

निर्देश—आजकल हरड़ की चूर्ण पाक में मिलाते हैं, अथवा क्वाथ से हरड़

को निकाल कर शिला पर बारीक चटनी के समान बना कर मिला देते हैं। व्यवहार की दृष्टि से यह सरल है।

आर्द्रक खण्ड—अच्छी प्रकार पिसा आर्द्रक ३ सेर ३ छटाँक, गाय का घृत ६४ तोला, दूध ६ सेर ६ छटाँक, खांड ३ सेर ४ छटाँक, प्रक्षेपार्थ, पिप्पली, पिप्पलीमूल, मिर्च, सोंठ, चित्रक, वायविडंग, मोथा, नागकेसर, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, कचूर, प्रत्येक ८ तोला, मिला कर पाक करें। मात्रा—आधा तोला।

उपयोग—शीतपित्त, उदर्द, कोठ, कण्डू, कास, श्वास में लाभ करता है।

हरिद्रा खण्ड—हल्दी ६४ तोला, गाय का घी ४८ तोला; गाय का दूध १२ सेर १२ छटाँक, खांड ५ सेर लेकर पाक करें। पाक के नजदीक आने पर दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, वायविडंग, निशोथ, त्रिफला, नागकेसर, त्रिफला, मोथा, लोह भस्म प्रत्येक ८ तोला चूर्ण रूप में भली प्रकार से मिला दें। मात्रा—आधा तोला। अनुपान—दूध से दें।

उपयोग—शीत पित्त, उदर्द, कण्डू, विस्फोट तथा कोठ में।

निर्देश—हल्दी इसमें कच्ची—जो पकाई न गई हो, अद्रक जैसी होती है, वह लेनी उत्तम है।

कन्टकार्यावलेह—कटेरी का पंचांग—५ सेर, जल १२ सेर १२ छटांक में पकायें, चौथाई रहने पर छान लें। इसमें गिलोय, चव्य, चीता, मोथा, काकड़ाश्रृंगी, सोंठ, मरिच, पिप्पली, धमासा, भारंगी, रास्ना, कचूर का कपड़छान किया चूर्ण ४–४ तोला, खांड १ सेर, घी और सरसों का तेल ३२–३२ तोला मिलाकर पाक करें। जब अवलेह बन जाये तब उतार कर ठण्डा होने पर, मधु ३२ तोला, वंशलोचन, पिप्पली चूर्ण—१६–१६ तोला मिला दें। मात्रा—२ से ३ तोला।

उपयोग—हिक्का, कास तथा श्वास में उपयोगी है।

कुटजलेह (अर्श)—कूड़े की छाल १० सेर, पानी १ मन १२ सेर, जल में पकायें, जब क्वाथ ६ सेर ६ छटाँक रह जाये तब इसको छान लें। इसमें गुड़ ३ सेर, घी ६४ तोला, मिलाकर फिर पाक करें। जब पाक नजदीक आये, तब भिलावा, वायविडंग, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला, रसौंत, चित्रक, इन्द्र जौ, वच, अतीस, बेलगिरी प्रत्येक वस्तु ८ तोला मिला दें। उतार कर ठण्डा होने पर इसमें ६४ तोला मधु मिला दें। मात्रा—आधा तोला।

उपयोग—अर्श (रक्तार्श), रक्तातिसार तथा ग्रहणी में उपयोगी है।

कुशावलेह—कुश, काश, खस, गन्ना, खगड़ (तृण विशेष—अभाव दाभ-दर्भ) इनकी जड़, प्रत्येक १ सेर, जल १ मन १२ सेर लेकर क्वाथ करें। चतुर्थांश रहने पर (६ सेर ६ छटाँक) इसमें खांड १ सेर १० छटाँक मिलाकर पाक करें। जब लेह के समान

गाढ़ा हो जाये तब उतार कर मुलहठी, ककड़ी के बीज, पेठा बीज, खीरे के बीज, वंशलोचन, आँवला, तेजपत्र दालचीनी, इलायची, नागकेसर, वरण की छाल, गिलोय, प्रियंगु, प्रत्येक दो-दो तोला प्रक्षेप दें। मात्रा —१/२ तोले से १ तोला।

उपयोग—प्रमेह, गोनोरिया, अश्मरी तथा मूत्राघात में लाभ करता है।

चित्रक हरीतकी—चित्रकमूल ५ सेर, जल ४० सेर, शेष १० सेर, आँवले का रस या क्वाथ १० सेर, गिलोय का रस या क्वाथ १० सेर, दशमूल मिलित का क्वाथ १० सेर, गुड़ १० सेर मिलाकर सबका एक साथ पाक करें। पाक करते समय हरड़ का चूर्ण ६ सेर ६ छटाँक इसमें मिला दें। पाक सिद्ध होने पर सोंठ, पिप्पली, मिर्च, दालचीनी, तेजपात, इलायची प्रत्येक का चूर्ण १६ तोला, यवक्षार ४ तोला मिलायें। दूसरे दिन शहद १ सेर १० छटांक मिलायें। मात्रा—१/२ से २ तोला।

उपयोग—पीनस, प्रतिश्याय, उदावर्त्त, गुल्म, कास में।

भार्गीण्ड—भार्गी १० सेर, दशमूल-मिलित १० सेर, पोटली में बँधी हरड़ १०० संख्या में (१ सेर १० छटाँक), २ मन १३ सेर जल में पाक करें। जल शेष २३ सेर रह जाये तब हरड़ की पोटली से हरड़ें निकाल कर गुठली निकाल दें। क्वाथ में ये हरड़ें और पुराना गुड़ १० सेर मिलाकर पाक करें। जब पाक गाढ़ा हो जाये तब त्रिकटु, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, प्रत्येक का चूर्ण ८ तोला; जवाखार ४ तोला मिलायें। ठण्डा होने पर मधु ४८ तोला मिलायें। मात्रा—१ से २ तोला, साथ में एक हरड़।

उपयोग—कास, श्वास तथा उदावर्त्त में।

निर्देश—हरड़ को सिल पर पीस कर मिलाना अच्छा रहता है।

मदनानन्द मोदक—स्वर्ण सिन्दूर, लोह, अभ्रक, वंग भस्म, बेंत के बीज, चोपचीनी, सेंभल की जड़, धमासा, केसर, जीरा, जायफल, लौंग, समुद्र शोष, त्रिकटु, वंशलोचन, या तिकुर, प्रत्येक ४–४ मासा, जावित्री, शतावर, द्राक्षा, वला, काकड़ाश्रृंगी, इलायची, कौंच के बीज, कूठ, नागरमोथा, क्षीर विदारी, भूई आँवला, नागकेसर, जटामांसी, कपूर, शीतल चीनी, गोखरू, प्रत्येक द्रव्य २–२ तोला, इन सब से आधी भुनी भांग और सब से दुगनी शर्करा लेकर पानी में तीन तार की चासनी बनाकर ऊपर की वस्तुयें इसमें मिला दें। मात्रा ४ मासा अनुपान—दूध के साथ।[1]

उपयोग—ग्रहणी, वीर्यस्तम्भक तथा मधुमेह में उपयोगी है।

हरीतकी खण्ड—हरड़, बहेड़ा, आँवला, मोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र,

---

१. वंशलोचन आजकल बनावटी आ रहा है। उसके स्थान पर तिकुर का उपयोग करना उत्तम है। यह प्राकृतिक वस्तु है।

नागकेसर, अजवायन, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, धनियाँ, सौंफ, सोया, लौंग, प्रत्येक का चूर्ण २ तोला, निशोथ, सनाय प्रत्येक १६ तोला, हरड़ ६४ तोला, खांड ३ सेर ४ छटांक लेकर यथाविधि पाक करें। मात्रा—१/२ तोला अनुपान—गरम पानी या दूध।

उपयोग—आनाह, अर्श तथा विबन्ध में।

निर्देश—खांड की चासनी बनाकर वस्तुओं का चूर्ण मिलायें।

वानरी गुटिका—कौंच के बीज १ सेर, दूध ४ सेर लेकर औटाय—जब दूध गाढ़ा हो जाये तब बीजों को निकाल कर पीस लें (अच्छा यह है कि कौंच फली में से कच्चे बीज निकाल कर ही पकायें—ये घुल जायेंगे); इनको घी में भून लें। फिर २ सेर खांड की चासनी बनाकर उनमें इन पीसे कौंच बीज के वटक डाल दें। जब ये रस पी लें तब अगले दिन शहद में डाल दें।

उपयोग—रतिवर्धक तथा शुक्रवर्धक।

निर्देश—आजकल वटक के स्थान पर पाक ही बनाया जाता है।

बादाम पाक—छिलके रहित बादाम की गिरी ६४ तोला, इसको चारगुणे दूध में पकाये; मावा होने पर घी और शक्कर ४ सेर मिलाकर चासनी बनायें। चासनी बनने पर जावित्री—जायफल, त्रिकटु, लौंग, चतुर्जात (त्वक्, एला, तेजपात, नागकेसर) त्रिफला, क्षीरकाकोली, विदारी, कपूर, चन्दन, कस्तूरी, केसर, जटामांसी, शीतलचीनी, अकरकरा, समुद्रशोष, गोखरू, असगन्ध, सौंफ, कौंच के बीज, मूसली, वंग, अभ्रक, लोह भस्म, हिंगुल प्रत्येक १–१ कर्ष (१–१ तोला) घी में भूनी भांग १६ तोला मिलाय। मात्रा—१ तोला। अनुपान—दूध के साथ।

उपयोग—बलवर्धक, रतिवर्धक, तथा कान्तिदायक।

निर्देश—कुछ लोग इसमें अफीम भी मिला लेते हैं, परन्तु सामान्यतः भस्में तथा रस वस्तुएँ—हिंगुल, अफीम आदि नहीं मिलाते। इन वस्तुओं को चासनी में मिला कर शुष्क कर लेते हैं जिससे सूखा चूर्ण बनता है। अच्छी प्रकार भूनना चाहिये।

सालम पाक—सालमिश्री का चूर्ण ६४ तोला लेकर १६ सेर दूध में पकायें। अधऔटा दूध होने पर ४ सेर मिश्री डाल कर चासनी बना लें। फिर जावित्री, लौंग, मुलेहठी, २–२ तोला, पिप्पली, पिप्पली मूल, नागकेसर, सौंफ, गोखरू, मरिच, छुआरा, असगन्ध, शतावर, लोह, अभ्रक, वंग, काला और श्वेत जीरा, धनिया, नागरमोथा १–१ तोला; इलायची ३ तोला, अखरोट, मूसली ४–४ तोला; लाल चन्दन ५ मासे, कपूर २ मासे, कस्तूरी ३ मासे, जटामांसी ५ मासे, केशर ६ मासे तज ५ मासे, काला अगर ५ मासे, इन सब का चूर्ण मिलाकर जमा दें। मात्रा १ से ५ तोले

उपयोग—प्रमेह, वात रोग, हृदय की निर्बलता में; वीर्यवर्धक है।

अष्टांगावलेहिका—कट्फल, पोहकर मूल, काकड़ाशृंगी, सोंठ, मरिच, पिप्पली, काला जीरा, धमासा, इनका चूर्ण कर लें। मात्रा–१६ रत्ती। **अनुपान**–मधु से चटायें।

उपयोग—सन्निपात ज्वर में, मूर्च्छा में, हिक्का, श्वास में, कण्ठरोध में।

सौभाग्य शुण्ठी—सोंठ, मरिच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला, भांगरा, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कूठ, अजवायन, लोह, अभ्रक, काकड़ाशृंगी, कट्फल, मोथा, इलायची, जायफल, जटामासी, तेजपत्र, तालीशपत्र, नागकेसर, कचूर, मुलेहठी, लौंग, लाल चन्दन प्रत्येक का चूर्ण सम भाग, सारे चूर्ण के बराबर सोंठ का चूर्ण, सोंठ तथा दूसरे सारे चूर्ण के बराबर चीनी और इन सबसे चारगुणा गाय का दूध लें। पहले गाय के दूध में चीनी मिलाकर पाक करें। फिर शेष वस्तुओं का चूर्ण मिलाकर पाक करें। मात्रा—६ मासे से १ तोला।

उपयोग—स्त्रियों की निर्बलता, सूतिकाजन्य निर्बलता में पाचन क्रिया दूषित होने पर, अम्लपित्त तथा अग्निमान्द्य में वेदना रहने पर।

सुकुमार मोदक–पिप्पली, पिप्पलीमूल, सोंठ, मरिच, हरड़, आँवला, चित्रक, अभ्रक, गिलोय, कुटकी; प्रत्येक का चूर्ण २ तोला, दन्तीमूल चूर्ण ६ तोला, निशोथ चूर्ण १६ तोला, चीनी २४ तोला लेकर पाक विधि से पाक करें। बाद में मधु मिलाकर मोदक बाँधे। मात्रा—३ मासा।

उपयोग—विष्टब्धाजीर्ण में, मलबन्ध होने पर, आध्मान, आनाह में दें।

त्रिवृताद्य मोदक—निशोथ, दन्तीमूल, पिप्पली मूल, पिप्पली, चित्रक, प्रत्येक का चूर्ण ८ तोला, गिलोय ४० तोला, सोंठ का चूर्ण ४० तोला; चीनी २४० तोला; इनका पाक करके मोदक बनायें। मात्रा—६ मासे से १ तोला।

उपयोग—अजीर्ण में, मलबद्धता होने पर, आनाह तथा उदरध्मान में प्रयोग करें।

शूरण मोदक—(वटक)—मरिच २ तोला, सोंठ ४ तोला, लाल चित्रक ८ तोला, शूरण १६ तोला, पुरातन गुड़ सब के बराबर अर्थात् ३० तोला, इन सब को मिला कर मोदक का पाक कर। मात्रा—३ मासा से ६ मासा।

उपयोग—वातिक, श्लैष्मिक अर्श, में मलबन्ध तथा वेदना होने तथा अग्निमान्द्य होने पर बरतें।

बाहुशाल गुड़—निशोथमूल, चव्य, दन्तीमूल, गोखरू, चित्रक, कचूर, इन्द्रायण, मोथा, सोंठ, विडंग, हरीतकी प्रत्येक द्रव्य ८ तोला, शोधित भिलावा ६४ तोला, विधारा बीज, ४८ तोला; शूरण १२८ तोला, जल १२८ सेर; शेष ३२ तोला, इसमें गुड़ १८४ तोला मिलायें। फिर पाक करें। जब पाक समीप में आ जाये तब निशोथ मूल,

चव्य; शूरण, चित्रक—प्रत्येक का चूर्ण १६ तोला; दालचीनी, इलायची, मण्डूर, गजपिप्पली; प्रत्येक का चूर्ण ४८ तोला, मिलायें। मात्रा—१ तोला। **अनुपान**—पानी के साथ या दूध के साथ

उपयोग—वातिक, पैत्तिक, वात श्लैष्मिक तथा सब प्रकार के पुराने अर्शों में उपयोगी।

दन्ती हरीतकी—पोटली में बँधी हरड़ संख्या में २५; दन्तीमूल २०० तोला, चित्रक २०० तोला, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, इस क्वाथ में पुराना गुड़ २०४ तोला मिलायें। पोटली में बंधी २५ हरड़ें, तिल तैल ३२ तोला में भून लें। इनको गुड़ में मिलाकर पाक करें। पाक के समीप आने पर प्रक्षेप द्रव्य—निशोथ चूर्ण ३२ तोला; पिप्पली चूर्ण ३२ तोला, सोंठ चूर्ण ३२ तोला मिला दें। ठण्डा होने पर मधु ३२ तोला; दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, प्रत्येक का २ तोला चूर्ण मिला दें। मात्रा—१ तोला और हरड़ १ तोला। अनुपान—गरम जल।

उपयोग—वातिक, वातपैत्तिक, वातश्लेष्मिक गुल्म रोग में आनाह, उदावर्त्त होने पर।

निर्देश—इसमें अच्छी जात की बड़ी लम्बी हरड़ लेकर उनका चूर्ण ही तिल तैल में भून कर मिला देते हैं जिससे प्रयोग में सरलता रहे।

कुशावलेह—कुश, कास, खस, काला ऊख, दाभ इनकी मूल प्रत्येक ८० तोला, जल ६४ सेर, शेष ८ सेर; चीनी २ सेर मिलाकर लेह की भाँति पाक करें। जब गाढ़ा हो जाये तब, मुलेहठी, ककड़ी के बीज, कुष्माण्ड के बीज, खीरे के बीज, वंशलोचन, आँवला, तेजपत्र, दालचीनी; इलायची; नागकेसर; वरुण छाल; गिलोय और प्रियंगु—प्रत्येक का चूर्ण २ तोला मिलायें। मात्रा—६ मासे से १ तोला।

उपयोग—सब प्रकार के प्रमेह, गोनोरियाँ तथा मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात में उपयोगी है।

पुष्करावलेह—रसौंत, वंशलोचन (अभाव में तिकुर), काकड़ा श्रृंगी, चित्रकमूल, मुलेहठी, धनिया, तालीश पत्र, जीरा, काला जीरा; निशोथ, वला, दन्तीमूल, सोंठ, पिप्पली, मरिच, प्रत्येक द्रव्य ४ तोला, मधु ३२ तोला, जावित्री, लौंग, काकोली, किसमिश, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर, खजूर, प्रत्येक वस्तु दो तोला मिलायें। इसको चिकने पात्र में रखें। मात्रा—६ मासा। अनुपान—गाय का दूध।

उपयोग—रक्त प्रदर, एवं रजोदोष में, जब अत्यार्त्तव या रक्त स्राव बन्द न हो तो इसको बरतें।

बटी

संजीवनी बटी—विडंग, शुण्ठी, पिप्पली, हरड़, आँवला, बहेड़ा, गिलोय, शुद्ध भिलावा, शुद्ध वत्सनाभ, इनको समान भाग लेकर जल के साथ गोली बनायें। मात्रा—१ से २ रत्ती।

उपयोग—अजीर्ण, विसूचिका, वमन तथा अतिसार में।

लंवगादि बटी—लौंग, मरिच, बहेड़े की छाल, इनको परस्पर समान भाग लेकर, सब के बराबर कत्था मिलायें। इसको बब्बूल की छाल से भावना देकर इसे चूर्ण या गोली के रूप में व्यवहार करें। मात्रा—१ से ३ रत्ती।

उपयोग—कास तथा गले की कर्कशता में चूसने के लिये बरत।

लशुनादि बटी—लशुन, जीरक, गन्धक, सैन्धव, सोंठ, पिप्पली, मरिच, हींग, सब समान भाग लेकर बटी बनायें। मात्रा—२ से ४ रत्ती।

उपयोग—अजीर्ण, अतिसार तथा विसूचिका में।

कोकायन गुटिका—शठी, पुष्कर मूल, दन्ती मूल, चित्रक, आढ़की (अरहर की जड़), सोंठ, वच, प्रत्येक ४ तोला, त्रिवृत्त १२ तोला, हींग और जौखार प्रत्येक ८ तोला, अम्लवेतस ८ तोला, अजवायिन, काला जीरा, मरिच, धनिया प्रत्येक १ तोला, अजमोद, जीरा प्रत्येक २ तोला लेकर विजौरे के रस से सब को भावना दें। मात्रा—२ से ५ रत्ती। अनुपान—गरम पानी, छाछ।

उपयोग—गुल्म रोग तथा पेट के चढ़ने में, उपयोगी है।

खदिरादि बटी—खदिर (कत्था), पुष्कर मूल, काकड़ा शृंगी, कट्फल, भार्गी, हरड़, लवंग, सोंठ, मरिच, पिप्पली, अतीस, कालाजीरा, यवक्षार, गिलोय, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, बहेड़ा, प्रत्येक ४ तोला, खदिर चूर्ण (छाल का चूर्ण) (१३६ तोला इनको दाड़िमी फल के छाल के चूर्ण, कण्टकारी क्वाथ, खदिर क्वाथ, आर्द्रक रस, बबूल पत्र रस, बबूल छाल क्वाथ और वासा रस से सात सात भावना दें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—कास, गले की खारिश, कफ स्राव तथा दाँतों से रक्त आने में इसका चूर्ण मंजन के रूप में उपयोगी है।

गन्धक बटी—पारद, ४ तोला, गन्धक ८ तोला; सोंठ ४ तोला; लवंग ४ तोला, मरिच ४ तोला; सैन्धव १२ तोला, सौवर्चल लवण १२ तोला, चणकक्षार ८ तोला, चिञ्चा क्षार ८ तोला, लेकर पानी से गोली बनायें। मात्रा—२ से ४ रत्ती। अनुपान—जल।

उपयोग—अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य में।

चित्रकादि बटी—चित्रक, पिप्पलीमूल, यवक्षार, सर्जक्षार, पांचों नमक, त्रिकटु, हींग, अजवायन, चव्य, प्रत्येक द्रव्य सम परिमाण लेकर चूर्ण कर लें। इसको बिजौरे के रस या अनार के रस से (खट्टे अनार रस) से मर्दन करें। मात्रा—४ रत्ती।

उपयोग—अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य में।

एलादि बटी—इलायची छोटी, तेजपात, दालचीनी प्रत्येक १ भाग; पिप्पली ४ भाग, मिश्री ८ भाग, मुलेहठी ८ भाग; खर्जूर ८ भाग; मधु के साथ गोली बनाय।

उपयोग—कास तथा स्वरभंग में मुख में चूसने के लिये।

निर्देश—इनका चूर्ण भी मधु के साथ चाटने को दे सकते हैं। चूर्ण में खर्जूर के स्थान पर छुहारा बरतें।

व्योषादि बटी—सोंठ, मरिच, पिप्पली, अम्लवेतस; चव्य, तालीशपत्र; चित्रक, जीरा, तित्तीडीक (सिमागदाना); प्रत्येक १ भाग; दालचीनी, इलायची, तेजपात १/४ भाग, गुड़ २० भाग मिलाकर ४ रत्ती की गोली बनायें।

उपयोग—स्वरभंग, कास तथा श्लेष्मा में।

कुमारिका बटी—मुसब्बर, कासीस, अफीम, वंग भस्म, शीतलचीनी, इनको सम भाग लेकर जल से पीस लें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—जल।

उपयोग—ऋतु के कष्ट से आने, मकल्ल शूल; गर्भाशय के भ्रंश में उपयोगी है।

मरिचादि बटी—मरिच १ भाग, पिप्पली १ भाग, यवक्षार १/२ भाग, अनार का छिलका २ भाग, गुड़ ८ भाग लेकर गोली बनायें। मात्रा—४ रत्ती।

उपयोग—कास (शुष्क) गले में कण्डू तथा प्रतिश्याय में उपयोगी।

हिंग्वादि बटी—शुद्ध हींग, अम्लवेतस, त्रिकटु, अजवायन, सैन्धव, काला नमक, विड्लवण इनको समभाग लेकर बिजौरे के रस से मर्दन करें। मात्रा—४ से ८ रत्ती।

उपयोग—शूल रोग तथा अजीर्ण में।

सप्तपर्ण सत्त्वादि बटी—सप्तपर्ण की रसक्रिया, कुटकी, शुद्ध कपीलु, यवतिक्ता (कालमेघ) की रसक्रिया—सब एक-एक भाग, करंजबीज चार भाग मिलाकर करेले के रस से गोली बनायें। मात्रा—२ से ४ रत्ती।

उपयोग—ज्वर, जीर्ण ज्वर तथा प्लीहा, यकृत बढ़े होने पर दें।

संशमनी बटी—हरी गिलोय को कूटकर (गिलोय अँगूठे जितनी मोटी लें) उसे रात में पानी में भिगो दें। प्रातः पानी में मलकर—पानी को स्थिर पड़ा रहने दें। अगले दिन या शाम को पानी नितार लें। नीचे गिलोय सत्व बचेगा। इस पानी को पका कर घन क्रिया बना लें। इसकी २-२ रत्ती की गोली बना लें।[1]

---

१. बहुत सी फार्मेसी में इसमें थोड़ी लोह भस्म, या लोह भस्म और शिलाजीत आदि

उपयोग—ज्वर में, अम्लपित्त में उपयोगी है।

शूल वज्रिणी बटी—पारद, गन्धक, लोह भस्म, प्रत्येक ४ तोला; सुहागा, हींग, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, सोंठ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, कचूर, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, तालीश पत्र, जायफल, लौंग, अजवायन, जीरा, धनिया प्रत्येक १ तोला; इनको बकरी के दूध में पीस कर गोली बनायें। मात्रा—४ रत्ती। अनुपान—दूध या जल।

उपयोग—पाण्डु, कामला, आमवात, ऊष्टीलावेदना को दूर करती है।

निर्देश—सोंठ दो भाग लेते हैं। इसमें कई पाठों में शुण्ठी के स्थान पर शुल्व (ताम्र भस्म) पाठ होने से ताम्र भी प्रयुक्त होता है। ताम्र वाला योग–कामला पाण्डु में उपयोगी है।

शुक्रमातृका बटी—गोखरू बीज, त्रिफला, तेजपात, इलायची, रसौत, धनिया, चव्य, जीरा, तालीश पत्र, सुहागा, दाड़िमी, प्रत्येक २ तोला, गुग्गुलु १ तोला, पारद, गन्धक, अभ्रक भस्म, लोह भस्म प्रत्येक ४ तोला, इनको मीठे अनार के रस से मर्दन करके बटी बनायें। मात्रा—४ रत्ती। अनुपान—अनार का रस, बकरी का दूध या जल।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह तथा शुक्र दोषों में उपयोगी है।

महाशंख बटी—पिप्पली मूल, चीता मूल, दन्तीमूल, पारद, गन्धक, पिप्पली, यवक्षार, सर्जक्षार, सुहागा, पांचों नमक, काली मिर्च, सोंठ, मीठा विष, अजमोद, गिलोय, हींग, इमलीक्षार, प्रत्येक १ भाग, शंख भस्म २ भाग, इनको अम्लवर्ग से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—खट्टे अनार का रस या निम्बू का रस तथा छाछ।

उपयोग—शूल, अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य में।

प्राणदा गुटिका—सोंठ २४ तोला, मरिच ६ तोला, पिप्पली १६ तोला, चव्य ८ तोला, तालीश पत्र ८ तोला, नागकेसर ४ तोला, पिप्पली मूल १६ तोला, तेजपत्र १ तोला, इलायची, २ तोला, दालचीनी १ तोला, खस २ तोला, गुड़ ३ सेर लेकर गोली बनायें। मात्रा—४ से ६ मासा। अनुपान—मट्ठा या क्षीरसर्पि।

उपयोग—अर्श, गुल्म, शूल तथा वातज अर्श में उपयोगी है।

प्लीहारि वटिका—मुसब्बर, अभ्रक भस्म, शुद्ध कासीस, लहसुन, इनको सम भाग में मिलाकर द्रोण पुष्पी (गोभा) के रस से तीन प्रहर मर्दन करें। मात्रा—२ से ४ रत्ती। अनुपान—पानी या छाछ से।

दूसरे द्रव्य मिलाकर नम्बर १, नम्बर २ के नाम से बेचते हैं। मूल वस्तु गिलोय की घन क्रिया ही आधार रहती है।

उपयोग—प्लीहा रोग तथा शोथ में उपयोगी है ।

दुग्ध बटी—मीठा विष १२ भाग, अफीम १२ भाग, कान्त लोह भस्म ६ मासा, अभ्रक भस्म ६० भाग इनको दूध से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान–दूध।

उपयोग—ग्रहणी, अतिसार तथा रक्तस्राव में ।[1]

ज्ञाती फलादि बटी—जायफल, लौंग, पिप्पली, सैन्धव, सोंठ, धतूरे के बीज, हिंगुल, सुहाँगा, प्रत्येक द्रव्य सम भाग लें। इसको जम्बीरी निम्बू के रस से मर्दन करके २ रत्ती की बटी बनायें ।

उपयोग—ग्रहणी, अतिसार तथा अग्निमान्द्य में बरतें ।

जयाबटी—मीठा विष, त्रिकटु, मुस्ता, हल्दी, नीम के पत्ते, वायविडंग, ये प्रत्येक १–१ भाग, जयन्ती मूल चूर्ण ८ भाग लेकर बकरी के मूत्र से मर्दन करें। मात्रा–२ रत्ती।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वरों (टाईफ़ाइड में विशेषकर) तथा पित्त ज्वर में विशेषतः उपयोगी है ।

चित्रकादि बटी—चित्रकमूल, पिप्पली मूल, जौखार, सर्जक्षार, काला नमक, सैन्धव , विड़लवण, रेह का नमक, समुद्र लवण, सोंठ, मरिच, पीपल, हींग, अजवायन और चव्य,सब द्रव्य सम भाग लेकर निम्बू या जम्बीरी के रस से या दाड़ीमी के रस से पीसें। मात्रा—४ रत्ती।

उपयोग—आमाजीर्ण, ग्रहणी, तथा अतिसार में उपयोगी है ।

गन्धक बटी—पारा ४ तोला, गन्धक ८ तोला, सोंठ, लवंग, मरिच प्रत्येक का चूर्ण ४–४ तोला, सैन्धव और सेचर प्रत्येक १२–१२ तोला , चना खार, ईमली खार, प्रत्येक ८–८ तोला, इनको निम्बू के रस से मर्दन करके ३–३ रत्ती की गोली बनायें ।[2]

उपयोग—अजीर्ण में ।

कर्पूर रस (कर्पूर बटी)—हिंगुल, अफीम, मोथा, इन्द्र जौ, जायफल, कपूर, इनको सम भाग लेकर जल से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—ज्वरातीसार, अतिसार तथा रक्तातिसार में ।

अभयाबटी—हरड़, मिरच, पिप्पली, सुहागा, प्रत्येक सम भाग, सबके बराबर जयपाल लेकर सेहण्ड के दूध से मर्दन करें। मात्रा—१/४ से १ रत्ती। अनुपान—तण्डुलोदक, हरड़ का चूर्ण २ मासा।

---

१. दुग्ध बटी का दूसरा भी पाठ है। उसमें पारा, गन्धक, हिंगुल हैं। इस योग में हिंगुल भी ६ मासा मिला देना उत्तम रहता है।

२. चने का खार न मिले तो चूका या जरिश्क व्यवहार में लाना चाहिए।

उपयोग—उदर रोग तथा आनाह में।

सहकार बटी—आम, निम, खैर, असन इनकी छाल ४००–४०० तोला लेकर १ मन १२ सेर पानी में पकायें। जब चौथाई शेष रह जाये तब इसको छान लें। इसमें श्वेत चन्दन; सुगन्धवाला, लाल चन्दन, गेरू, लौंग, धाय के फूल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, त्रिफला, पठानी लोध, जायफल, अनन्त मूल, हल्दी, त्रिकटु, वट की जटा, मजीठ, विड् नमक, जटामांसी, नागरमोथा, लोह भस्म, शुद्ध कर्पूर—प्रत्येक ४–४ तोला मिलायें। घन बन जाने पर ३ रत्ती की गोली मुख में रखें।

उपयोग—मुख रोग, मुख के छालों, गले की कण्डू तथा खाँसी में उत्तम है।

शिवा गुटिका—शिलाजीत १२८ तोला लेकर इसको त्रिफला क्वाथ, दशमूल, गिलोय; वला, पटोल; मुलेहठी; इनके रस-क्वाथ से तथा गोमूत्र से पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना दें। बाद में गाय के दूध की एक भावना दें। फिर, काकोली, क्षीर काकोली; मेदा, महामेदा; विदारी; क्षीर विदारी, शतावरी; द्राक्षा; ऋद्धि, वृद्धि; ऋषभक, जटामांसी, मुण्डी; श्वेत जीरा; काला जीरा; शालपर्णी, पृश्नपर्णी; रास्ना; पुष्कर मूल; चित्रक; दन्तीमूल; गजपिप्पली; इन्द्र जौ, चव्य, मोथा; कुटकी काकड़ा शृंगी; पाठा, इनमें से जो मिल सके, उनको ८–८ तोला लेकर ३२ सेर जल में क्वाथ करें। जब आधा रह जाये तब इससे भावना दें। फिर सोंठ, पिप्पली, कुटकी, काकड़ाशृंगी, काली मिर्च इनका चूर्ण १६–१६ तोला (मिलित); विदारीकन्द का चूर्ण ८ तोला; तालीश पत्र ३२ तोला; खांड १२८ तोला; गाय का घी ३२ तोला, मधु ६४ तोला, तिल तैल १६ तोला; तवाशीर-तेजपात; दालचीनी, नागकेशर; छोटी इलायची; ये पाँचों मिलित ४ तोला; मिलायें। मात्रा—दो मासा। अनुपान—दूध तथा अनार का रस।

उपयोग—रसायन, मधुमेह के लिए उत्तम है। पाण्डु तथा ग्रहणी में उपयोगी।

ब्राह्मी बटी—तज, जायफल, लौंग मरिच, लोह भस्म, जावित्री, सोंठ, अकरकरा, धनिया, गज पीपल; चित्रक मूल, अजमोद, वच, मीठा कूठ, तुम्बरू, चिरायता, शुद्ध हिंगुल; अगर, असगन्ध, अम्बर, मोती; वंशलोचन, काला जीरा, पिप्पली मूल, विडंग, माणिक्य भस्म, सौंफ, चन्दन, चन्द्रोदय, पोहकर मूल, कस्तुरी, शतावर, कहरवा, नीलम की भस्म, निशोथ, प्रवाल पिष्ठी, अजवायन देशी; खुरासानी अजवायन, संगयशब की पिष्ठी, प्रत्येक वस्तु ४–४ माशे; ब्राह्मी २ तोला, सुवर्ण भस्म ४ मासे मिलाकर ब्राह्मी रस की भावना देकर मधु से गोली बनायें। मात्रा—३ रत्ती। दूध या मलाई से दें।

उपयोग—अपस्मार, उन्माद, प्रलाप तथा अपतंत्रक में।

पानीय भक्त बटी—त्रिवृत्त मूल; मोथा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मरिच, पीपल, चित्रक, प्रत्येक का चूर्ण २ तोला; पारद, गन्धक प्रत्येक ६–६ मासा; लोह, अभ्रक, विडंग प्रत्येक द्रव्य ४ तोला; सबको त्रिफला क्वाथ से भावना देवें। मात्रा–४ रत्ती। अनुपान—तण्डुलोदक।

उपयोग—अम्लपित्त रोग में, उदरशूल, पार्श्वशूल तथा मन्दाग्नि होने पर दें।

आमवातारि बटिका—रस, गन्धक, अभ्रक, लोह; तूतिया भस्म; सोहागा और सैन्धव लवण—ये सब द्रव्य सम भाग लें; सबके बराबर शुद्ध गुग्गुलु और गुग्गुलु का चौथाई निशोथ एवं चित्रक चूर्ण पृथक्-पृथक् लें। घृत में मर्दन करके गोली बनायें। मात्रा—१० रत्ती।

उपयोग—एकांग वात, पक्षाघात, सगर्वा वात, अववाहुक; गृध्रसी, तथा विश्वाची में उपयोगी है।

वैद्यनाथ बटी—हरड़, सोंठ, मरिच, पिप्पली और रस सिन्दूर प्रत्येक १–१ भाग और जयपाल २ भाग लेकर मण्डूकपर्णी, निम्बू एवं लोनी के रस से भावना दें। मात्रा—१ रत्ती।

उपयोग—उदावर्त्त, गुल्म तथा आनाह में उपयोगी है।

शंकरबटी—पारद ४ तोला; गन्धक ८ तोला; लोह ३ तोला; सीसा भस्म २ तोला; इनको एक साथ मिलाकर—मकोय; चित्रक, आर्द्रक; जयन्ती, वासक पत्र; विल्व छाल; अर्जुन छाल इनके रस से क्रमशः ३–३ भावना दें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—गुनगुना जल।

उपयोग—सब प्रकार के हृदय रोग में तथा हृत्पीड़ा में उपयोगी है।

शुक्रमातृका बटी—गोखरू, हरड़, बहेड़ा, आँवला, तेजपात, इलायची; रसौंत; धनिया, चव्य, जीरा; तालीश पत्र; सोहागा; अनारदाना—प्रत्येक वस्तु ४ तोला; विशुद्ध गुग्गुलु—२ तोला; सब को मिलायें। बाद में पारद, गन्धक, अभ्रक, लोह प्रत्येक वस्तु ८ तोला मिलायें; इसको अनार के रस से मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—बकरी का दूध या अनार रस।

उपयोग—सब प्रकार के प्रमेह में उपयोगी,विशेषकर कृश शरीर वालों को।

इन्दुकला बटी—शिलाजीत, लोह; स्वर्ण भस्म—प्रत्येक द्रव्य सम भाग लेकर तुलसी रस से मर्दन करें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—रुद्राक्ष घिसकर उससे दें।

उपयोग—मसूरिका रोग में जब पिड़काएँ पकने लगें और वायु की रुक्षता बढ़े तब व्यवहार में लायें।

लोह और गुग्गुलु

कचनार गुग्गुलु—कचनार की छाल ४० तोले; सोंठ, पिप्पली, मरिच, प्रत्येक ८ तोला, हरड़, बहेड़ा, आँवला ४ तोला; वरणा की छाल २ तोले; तेजपात; इलायची, दालचीनी प्रत्येक आधा तोला; इनका चूर्ण करें। इस चूर्ण के बराबर गुग्गुलु मिलायें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—खैर का क्वाथ या हरड़ का क्वाथ।

उपयोग—गलगण्ड, अपची, अर्बुद तथा भगन्दर में।

सिंहनाद गुग्गुलु—हरड़, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक—३ सेर ३ छटाँक १ तोला; गुग्गुलु ६४ तोली; इनको पोटली में बाँधें; पानी १ मन ३७ सेर में क्वाथ करें। जब पानी १९ सेर ४ छटाँक रह जाये तो छान लें। इसमें गुग्गुलु ६४ तोला कटु तैल के साथ पीसें। बाद में इसमें गुग्गुलु का पाक करें। जब पाक आसन्न हो तो सोंठ, मरिच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला; मुस्ता; विडंग, देवदारु; गिलोय, चित्रक, दन्तीमूल, चव्य, शूरण मानकन्द, पारद, गन्धक, प्रत्येक ४ तोला, विशुद्ध जयपाल १००० (संख्या में) मिलायें। मात्रा २ से ४ रत्ती। अनुपान—गरम जल के साथ।

उपयोग—भगन्दर, आमवात तथा सन्धिवात में।

त्रयोदशांग गुग्गुलु—बब्बूल की छाल; अश्वगन्धा, हऊवेर, गिलोय, शतावर, गोखरू, विधारा; रास्ना, सोया, कचूर, अजवायन, सोंठ, प्रत्येक का चूर्ण १ भाग; गुग्गुलु १२ भाग, घी ६ भाग इनको एक साथ मिलायें। मात्रा—आधा तोला। अनुपान—मद्य, मूंग का यूष।

उपयोग—वातरोग, योनिदोष तथा खञ्ज वात में।

गोक्षुरादि गुग्गुलु—गोखरू ११२ तोला; पानी ८ सेर ३२ तोला; शुद्ध गुग्गुलु २८ तोला; सोंठ, मरिच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला; मुस्ता, प्रत्येक ४ तोला; घृत—जरूरत के अनुसार लेकर, गोखरू का क्वाथ करें। इस क्वाथ में (२ सेर ८ तोला) गुगूल घोल कर शेष द्रव्य मिलायें। घी से गुग्गुलु को नर्म करें। मात्रा—१/२ तोला।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्रता में।

योगराज गुग्गुलु—सोंठ, पिप्पली मूल पिप्पली, चव्य, चित्रक, भूनी हींग, अजमोदा, सरसों, श्वेत जीरा; काला जीरा, रेणुका बीज, इन्द्र जौ, पाठा, विडंग, गज पिप्पली, कुटकी, अतीस; भांर्गी, वच, मूर्वा, प्रत्येक १ भाग; त्रिफला मिलित चूर्ण ४० भाग; गुग्गुलु ६० भाग मिलायें। मात्रा—१ मासा, गरम पानी से। अनुपान—रास्नादि क्वाथ।

उपयोग—वात रोग आनाह तथा उदावर्त्त में।

महायोगराज गुग्गुलु—सोंठ, पिप्पली, चव्य, पिप्पली मूल; चित्रक मूल; हींग, अजवायन; सरसों, श्वेत जीरा, कृष्ण जीरा; रेणुका; इन्द्र जौ, पाठा; विडंग; गर्ज पिप्पली; कुटकी, भांर्गी; वच; मूर्वा, प्रत्येक ३ मासा, त्रिफला मिलित—१० तोला; शुद्ध गन्धक १५ तोला; वंग, रजत, नाग, लोह, अभ्रक, मण्डूर, रस सिन्दूर १५ तोला प्रत्येक मिलायें। मात्रा—२ से ३ रत्ती।

उपयोग—वात रोग, आम वात, गृध्रसी तथा विश्वाची में।[1]

कैशोर गुग्गुलु—गुग्गुलु ६५ तोले, त्रिफला ४ तोला; त्रिकटु १२ तोला, विडंग ४ तोला, निशोथ २ तोला; दन्तीमूल २ तोला; गिलोय ८ तोला; गोघृत ३२ तोला मिलायें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—मूँग का यूष या दूध।

उपयोग—रक्त शोधक तथा विसर्प में।

त्रिफला गुग्गुलु—२ तोला त्रिफला क्वाथ में शुद्ध गुग्गुलु २ मासा मिलाकर व्यवहार में लायें। इसमें—क्लेद, पाक, स्राव, वेदना; वाले व्रण नष्ट होते हैं।

पंचामृत लोह गुग्गुलु—पारद, गन्धक, रजत भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक वस्तु ८ तोला; लोह भस्म १६ तोला, गुग्गुलु शुद्ध ५६ तोला, इनको मिलाकर लोह दण्ड से कूटें। कूटते समय सरसों का तेल नर्म करने के लिये मिलायें। मात्रा—३ रत्ती।

उपयोग—स्नायुरोग-वातनाड़ियों के रोग, (अनिद्रा, चिड़चिड़ापन, लो ब्लड प्रैशर) में लाभ होता है।

रसोनपिण्ड—रसोन की कली १० सेर, तिल ३२ तोला; हींग, कालीमिर्च, पिप्पली, सोंठ, यवक्षार, सर्जक्षार, पाँचों नमक, सोयाबीज, कूठ; पिप्पली मूल, चित्रक, अजवायन, अजमोदा, धनिया प्रत्येक का चूर्ण ८ तोला मिलाकर एक पात्र में रखें। फिर इसमें तिल तैल ६४ तोला, काँजी १ सेर ९ छटाँक मिला दें।

उपयोग—उन्माद, अपस्मार, चित्त विक्षेप, आमवात तथा सन्धिवात में इसका उपयोग किया जाता है।

निर्देश—लहसुन की कलियों को निकाल कर ३ दिन तक तक्र में भिगोयें।

---

१. **योगराज गुग्गुलु में ही वंग, चाँदी, नाग, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, रस सिन्दूर प्रत्येक १६ भाग मिलाने से महायोगराज बन जाता है। इसी का प्रयोग निर्माण में अधिक है।**

फिर उनको गरम पानी से धोकर सील पर पीस लें। उसके साथ में और औषधियों का चूर्ण भी पीसकर पिण्ड बनालें। ३-३ मासे की बटी बनालें। इसको छाछ के साथ या गरम पानी से बरतें। तैल का उपयोग विशेषत: करें। इससे पीछे काँजी या तैल मिलाना नहीं होता।

वातारि गुग्गुलु—एरण्ड तैल, गन्धक, गुग्गुलु, हरड़, बहेड़ा, आँवला, इनको समान मात्रा में लेकर अच्छी प्रकार कूट कर मिला लें। मात्रा–१ मासा। अनुपान—गरम जल से दें।

उपयोग—खंजता, वातरक्त, गृध्रसी, अववाहुक तथा विश्वाची में उपयोगी है।

लोह गुग्गुलु—लोह भस्म ८ तोला, शुद्ध गुग्गुलु २४ तोला; त्रिकटु ४० तोला; त्रिफला चूर्ण ६४ तोला, मिलाकर कूटें। मात्रा–३ मासा। अनुपान–गरम जल या दूध।

उपयोग—शोथ तथा पाण्डु में–रसायन है।

लोह गुटिका—लोहभस्म और त्रिफला ३–३ भाग, गुड़ ८ भाग, गोमूत्र ३२ भाग लेकर गुड़ पाक करें। मात्रा—३ मासा। अनुपान—त्रिफला कषाय या श्रृतकषाय।

उपयोग—पाण्डु, क्षय तथा परिणाम शूल में।

चित्रकादि लोह—चित्रकमूल, सोंठ, वासक छाल, गिलोय का चूर्ण, शालपर्णी, तालपुष्प, अपामार्ग, मान कन्द प्रत्येक का चूर्ण ६ तोला, लोह, अभ्रक, पिप्पली चूर्ण, ताम्र, यवक्षार, विट्लवण, सैन्धव, सौवर्चल, रुचक, साम्भर लवण; प्रत्येक २ तोला; गोमूत्र १६ सेर लेकर मृदु अग्नि से पाक करें। मात्रा—१ मासा से १॥ मासा।

उपयोग—प्लीहा, यकृत वृद्धि में, पाण्डु, हलीमक तथा शोथ में उपयोगी है।

दार्व्यादि लोह—दारुहल्दी, हरड़, आँवला, बहेड़ा, सोंठ, पिप्पली, मरिच, विडंग, इन सब का चूर्ण समभाग और सारे चूर्ण के बराबर लोह भस्म मिलायें। मात्रा–१ रत्ती से ५ रत्ती।

उपयोग—यकृत, प्लीहा वृद्धि, पाण्डुरोग तथा पित्ताधिक्य होने पर।

पंचामृत लोह मण्डूर—मण्डूर २५ तोला, गोमूत्र १०० तोला, पुनर्नवा क्वाथ २०० तोला, लेकर मन्द अग्नि पर पाक करें। जब पाक गाढ़ा हो जाये तो उसमें लोह, ताम्र, गन्धक, अभ्रक, पारद, सोंठ, पिप्पली, मरिच, हरड़, आँवला, बहेड़ा, मोथा, विडंग, चित्रक, चिरायता, देवदारु, हल्दी, दारु हल्दी, कूठ, अजवायन, जीरा, काला जीरा, कचूर, धनिया, चव्य—प्रत्येक का चूर्ण १ तोला मिलायें। ठण्डा होने पर मधु ८ तोला मिलायें। मात्रा–१ मासा।

उपयोग—प्लीहा, यकृत बड़े होने पर, पाण्डु रोग तथा शोथ में उपयोगी है।

त्र्यूषणाद्य लोह—सोंठ, पिप्पली, मरिच, यवक्षार प्रत्येक द्रव्य सम भाग और सबके बराबर लोह भस्म मिलायें। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—मधु।

उपयोग—पाण्डु, कामला तथा शूल परिणामजन्य में।

शर्कराद्य लोह—चीनी, काले तिल, सोंठ, मरिच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला, विड़ंग, मोथा, लाल चित्रक, प्रत्येक द्रव्य-सम भाग एवं सब के बराबर लोह भस्म मिलायें। मात्रा—१ मासा। अनुपान—दूर्वा रस और मधु।

उपयोग—पित्त, वात-पित्त प्रधान या क्षतज कास में रक्त आने पर इसे बरतें।

त्रिफला मण्डूर—हरड़, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, मण्डूर भस्म ३ तोला। मात्रा—३ रत्ती। अनुपान—घृत और मधु।

उपयोग—अम्लपित्त रोग में, उदरशूल होने पर बरतें।

गुडूच्यादि लोह—गिलोय चूर्ण ९ तोला, सोंठ, पिप्पली, मरिच, हरड़, बहेड़ा, आँवला, विडंग मोथा, चित्रक प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, लोह १८ तोला, एक साथ जल से मर्दन करें। मात्रा—५ रत्ती। अनुपान—पटोल का रस और मधु।

उपयोग—अम्लपित्त रोग, हाथ-पैर में जलन तथा निद्रा न आने पर दें।

अमृतादि गुग्गुलु—गिलोय ४ सेर, गुग्गुलु, हरीतकी, आँवला, बहेड़ा, पुनर्नवा प्रत्येक वस्तु २ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। इस क्वाथ को पुन: पाक करें। जब घट्ट होने लगे तब उतार कर उष्ण अवस्था में—दन्तीमूल, चित्रक, पिप्पली, सोंठ, हरड़, आँवला, बहेड़ा, गिलोय, दालचीनी, विडंग—प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण ४ तोला और निशोथ चूर्ण २ तोला मिला दें। मात्रा—६ मासा।

उपयोग—कुपितवायु, रक्तगत वायु, शरीर की विवर्णता तथा वेदना में उपयोगी है।

पथ्यादि गुग्गुलु—हरड़ संख्या में १००, बहेड़ा २००, आँवला ४००, गुग्गुलु २ सेर, जल ६४ सेर, शेष ३२ सेर रहने पर छान लें। इस क्वाथ का पुन: पाक करें जब घट्ट होने लगे तब उतार कर इसमें विडंग, दन्तीमूल, आमलकी, हरड़, बहेड़ा, गिलोय, पिप्पली, निशोथ, सोंठ, मरिच, प्रत्येक का चूर्ण ४ तोला मिलायें। मात्रा—३ मासे से ६ मासा।

उपयोग—क्रोष्टुक शीर्ष, गृध्रसी तथा आमवात में उपयोगी है।

शिवा गुग्गुलु—हरड़, आँवला, बहेड़ा, प्रत्येक वस्तु ३२ तोला, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, इस क्वाथ में एरण्ड तैल १६ तोला; शुद्ध गन्धक ६ तोला, मिलाकर पाक करें। पाक समीप होने पर गुग्गुलु १६ तोला, रास्ना, विडंग, पिप्पली, मरिच, दन्ती, जटामांसी, सोंठ, देवदारु प्रत्येक का चूर्ण १ तोला मिलायें। मात्रा—६ मासा।

उपयोग—क्रोष्टुक शीर्ष, आमवात तथा कटिशूल में उपयोगी है।

रसोनाष्टक—शोधित लहसुन १२ तोला; हींग, जीरा, सैन्धव लवण, सेचल लवण, सोंठ, मरिच, पिप्पली, प्रत्येक का चूर्ण ९–९ मासा, मिलायें। मात्रा–६ मासा।

उपयोग—आर्दत, अपतन्त्रक, अपतानक, पक्षाघात में उपयोगी है।

नवकार्षिक गुग्गुल—हरड़, बहेड़ा, आँवला–प्रत्येक २ तोला, शुद्ध गुग्गुलु–१०, पिप्पली २ तोला, इनको घी से मर्दन करें। मात्रा–२ मासा।

उपयोग—अर्श, शोथ, गुल्म तथा भगन्दर में उपयोगी है।

नयनामृत लोह—सोठ, मरिच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला, काकड़ाशृंगी, कचूर, रास्ना, सोंठ, द्राक्षा, नीलोत्पल, काकोली, मुलैहठी, वला, कटेरी, बड़ी कटेरी, भांगरा लोह भस्म और अभ्रक भस्म, प्रत्येक का चूर्ण ८ तोला; लेकर इसको भांगरा और त्रिफला क्वाथ से अलग-अलग भावना दें। अनुपान–भांगरे का रस और शहद।

उपयोग—आँख के सब रोगों में इसका उपयोग करते हैं। विशेषकर रक्तस्राव या रक्तजन्य अभिष्यन्द या अधिमन्थ में।

गुडूच्यादि लोह—गिलोय ९ तोला, सोंठ, मरिच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला, विडंग, मोथा, चित्रक, प्रत्येक का चूर्ण १ तोला; लोह १८ तोला, सबको मिलायें। मात्रा–४ रत्ती, । अनुपान—पटोल रस और मधु।

उपयोग—अम्लपित्त रोग में हाथ-पैर में दाह, पित्त प्रकोप में उत्तम है।

पित्तान्तक लोह—पारद, गन्धक, अभ्रक, जायफल, लवंग, कूठ, दालचीनी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मरिच, पिप्पली, पाठा, इन्द्रजव, चिरायता, सैन्धव, रस सिन्दूर, ताम्र, वंग, पलाश बीज, मोथा, अजवायन, तेजपत्र प्रत्येक द्रव्य १ तोला; लोह २५ तोला, लेकर सब को पटोल पत्र रस, निम्ब पत्र और चिरचिटा के रस से ७ बार भावना दें। मात्रा–३ रत्ती।

उपयोग—उर्ध्वगत अम्लपित्त में, रोगी के पेट में दर्द, हाथ पैर में दाह होने पर बरतें।

सप्तविंशतिक गुग्गुलु—त्रिफला, त्रिकटु, मोथा, विडंग, गिलोय, चित्रक, शठी, इलायची, पिप्पलीमूल, देवदारु, लाल चन्दन, चव्य, इन्द्रायणमूल, हल्दी, दारुहल्दी, विड्लवण, सेचललवण, यवक्षार, सर्जक्षार, सैन्धव और गज पिप्पली, प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण २ तोला, सम्पूर्ण चूर्ण से दुगना गुग्गुलु लेकर इसमें मिलायें। मात्रा–६ मासा।

उपयोग—सब प्रकार के भगन्दर रोग, व्रण वेदना, व्रण से पूय आने तथा ज्वर रहने पर बरतें।

अमृतांकुर लोह—पारद ८ तोला, गन्धक ८ तोला, कज्जली करें। लोहपात्र में

त्रिफला क्वाथ, शुद्ध गुग्गुलु प्रत्येक ८ तोला, घी १६ तोला डालकर पाक करें। जब गाढ़ा होने लगे तब इसमें कज्जली (रस सिन्दूर), लोह भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध भिलावा, गन्धक, अभ्रक भस्म प्रत्येक ८ तोला, हरड़, बहेड़ा, प्रत्येक २ तोला, आँवला १३ तोले, त्रिफला क्वाथ द्रव्य ३ सेर ४ छटाँक, जल क्वाथार्थ १२ सेर १३ छटाँक–शेष–३ सेर ३ छटाँक लेकर लोहपात्र में पाक करें। मात्रा–३ रत्ती। अनुपान–दूध या नारियल जल।

उपयोग—कुष्ठ रोग तथा वातरक्त में, उपयोगी है।

विडंग लोह—पारद, गन्धक, जातिफल, मरिच, लौंग, पिप्पली, हरिताल, सोंठ और सोहागा की खील, प्रत्येक द्रव्य समभाग, लोह ७ भाग, विडंग चूर्ण ८६ भाग लेकर जल से मर्दन करें। मात्रा–५ रत्ती।

उपयोग—उदर कृमि एवं तज्जन्य पाण्डुता में।

अरिष्ट और आसव

अश्वगन्धारिष्ट—अश्वगन्ध ५ सेर, मूसली २ सेर, मंजीठ, हरड़, हल्दी, दारु-हल्दी, मुलेहठी, रास्ना, विदारी, अर्जुन छाल, मोथा, निशोथ,–प्रत्येक १ सेर, श्वेत और कृष्ण सारिवा–दोनों, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, वच, चित्रक, प्रत्येक ६४ तोला लेकर १० मन १० सेर जल में पाक करें। जब जल १ मन १२ सेर रहे, तब छान लें। शीतल होने पर इसमें धाय के फूल १ सेर १० छटाँक, मधु ३० सेर, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, प्रत्येक १६ तोले; दालचीनी, इलायची, तेजपात प्रत्येक ३२ तोले, प्रियंगु–३२ तोले, नागकेसर १६ तोले, प्रक्षेप देकर सन्धान करें। मात्रा–१½ से २½ तोला।

उपयोग—उन्माद, अपस्मार, मनोदैन्य तथा मूर्च्छा में।

दशमूलारिष्ट—दशमूल (शालपर्णी, पृश्नपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, श्योनाक छाल, विल्व की छाल, अरणी की छाल, गम्भारी की छाल, पाटला की छाल) प्रत्येक द्रव्य २० तोला, चित्रक मूल १¼ सेर, पुष्कर मूल १¼ सेर, लोध, गिलोय, प्रत्येक १ सेर, आँवला ६४ तोला, धमासा ४८ तोला; खैर, विजयसार, हरड़ प्रत्येक ३२ तोला, कुड़, मजीठ, देवदारु, विडंग, मुलेहठी, भांर्गी, कैथ, बहेड़ा, पुनर्नवा, चव्य, जटामांसी, प्रियंगु, सारिवा, काला जीरा, निशोथ, निर्गुण्डी बीज, रास्ना, पिप्पली, सुपारी, कचूर, हरिद्रा, सौंफ, पद्माख, नागकेसर, मुस्ता, इन्द्र जौ, काकड़ा शृंगी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि, वृद्धि–प्रत्येक ८ तोला; जल सम्पूर्ण द्रव्यों से आठ गुणा मिलाकर क्वाथ करें। जब चौथाई रह जाये, तब छान लें। इसमें ६ सेर द्राक्षा का १२ सेर जल में क्वाथ करके ९ सेर रहने पर इसमें मिला दें। इसमें गुड़ २० सेर, धातकी पुष्प १॥ सेर, शीतलचीनी, नेत्रबाला, श्वेत चन्दन, जायफल,

लवंग, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, पिप्पली प्रत्येक ८ तोला मिलायें। सिद्ध हो जाने पर कस्तूरी ४ मासा मिला दें।

उपयोग—प्रसूता की निर्बलता, ज्वर में, उदर विकारों में—विशेषत: शोथ में।

लोहासव—गरम करके ठण्डा किया जल २६ सेर। लोह भस्म, सोंठ, मरिच, पिप्पली, हरीतकी, विभीतक, आँवला, अजवायन, विडंग, मोथा, चित्रक प्रत्येक १६ तोला; धाय के फूल १ सेर, गुड़ ५ सेर, मधु ३ सेर मिला कर सन्धान करें।

उपयोग—पाण्डु, कामला, शोथ में तथा पेट में कृमि होने पर।

कुमार्यासव—घीक्वार, स्वरस १२½ सेर, गुड़ ५ सेर, मधु २½ सेर, लोह भस्म, २½ सेर, सोंठ, मरिच, पिप्पली, लौंग, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, चित्रक पिप्पलीमूल, विडंग, गज पिप्पली, चव्य, हपुषा, धनिया, सुपारी, कुटकी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, रास्ना, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, मुलेहठी, दन्तीमूल, पुष्कर मूल, बला, अतिबला, कौंच, गोखरू, सौंफ, हिंगुपत्री, अकरकरा, उटंगन बीज, पुनर्नवा श्वेत, लोध, स्वर्ण माक्षिक भस्म, आँवला प्रत्येक द्रव्य २ तोला मिलाकर सन्धान करें।

उपयोग—पाण्डु, कामला, स्त्रियों के रजोविकार,कृच्छ्रता या न आने पर तथा जीर्ण ज्वर में।

निर्देश—घीक्वार का स्वरस निकालने के लिए घीक्वार के २–२ इञ्च के छोटे-छोटे टुकड़े कर लेने चाहिए। इनको पानी में डाल कर उबालना,गरम करना चाहिए। ऊपर का हरा छिलका जब पीला पड़ जाय, तब इनको मसनद (लकड़ी के मूसल) से कुचल कर छान लेना चाहिए। इस स्वरस को काम में लाना चाहिए। पानी इतना लेना चाहिए जिसमें ये भली प्रकार डूब जायें।

अभयारिष्ट—हरड़ १० सेर, मुनक्का ५ सेर, वायविडंग १ सेर, महुए के फूल १ सेर, पानी ५ मन ४ सेर २ छटाँक, ४ तोला, शेष—१ मन ११ सेर, ३ छटाँक, १ तोला, गुड़ १० सेर मिलायें, इसमें—गोखरू, निशोथ, धनिया, धायके फूल, इन्द्रायण, चव्य, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल मोचरस प्रत्येक १६ तोला मिलायें। मात्रा—१॥ से २॥ तोला, अनुपान—पानी के साथ।

उपयोग—अर्श रोग में तथा यकृत की निर्बलता में।

अर्जुनरिष्ट—अर्जुन की छाल १० सेर, द्राक्षा ५ सेर, महुए का फूल २ सेर, पानी ५ मन ४ सेर ३ छटाँक, शेष १ मन ११ सेर ३ छटाँक, गुड़ १० सेर, धातकी फूल २ सेर मिलाकर रख दें। मात्रा—२॥ तोले तक, पानी के साथ।

उपयोग—हृदयरोग में।

कनकासव—पंचाग सहित धत्तूरा ३२ तोला, बासामूल छाल ३२ तोला;

मुलेहठी, पीपल, छोटी कटेरी, नागकेसर, सोंठ, भारंगी, तालीश पत्र प्रत्येक १६ तोला, धायके फूल १ सेर ९ छटाँक, मुनक्का २ सेर, पानी २ मन २२ सेर ८ छटाँक, खाण्ड १० सेर, मधु ५ सेर मिलायें। मात्रा–१। तोले से २॥ तोला, पानी के साथ।

उपयोग—श्वास, कास, तथा खाँसने से छाती में दर्द होने पर।

निर्देश—पानी को गरम करके ठण्डा कर लें। उबालना उत्तम है। जब गुनगुनी रहे तब वस्तुएँ मिलायें।

चन्दनासव—श्वेत चन्दन, गन्धवाला, मोथा, गम्भारी छाल, नीलोफर, प्रियंगु पद्माख, लोध, मजीठ, लाल चन्दन, पाठा, चिरायता, वट छाल, पिप्पली, कचूर, पित्त-पापड़ा, मुलेहठी, रास्ना, पटोल, कचनार की छाल, आम की छाल, मोचरस, प्रत्येक ८ तोला, धाय के फूल ६४ तोला, द्राक्षा २ सेर, पानी २ मन २२ सेर ६ छटाँक, शर्करा १० सेर, गुड़ ५ सेर, मिलायें। मात्रा–१॥ से २॥ तोला, पानी के साथ।

उपयोग—मूत्रकच्छ्र तथा सुजाक में उपयोगी है।

निर्देश—पानी उबालकर ठण्डा करके, गुनगुने पानी में ये द्रव्य मिलायें।

सारिवाद्यासव—सारिवा (अनन्तमूल), मोथा, लोध, वटशृंग या छाल, पीपल की छाल, कचूर, कृष्णसारिवा (उसवा), पद्माख खस, पाठा, आँवला, गिलोय, सुगन्ध-बाला, श्वेत और लाल चन्दन, अजवायन, कुटकी, तेजपात, छोटी और बड़ी इलायची, कूठ, सनाय, हरड़ –ये प्रत्येक ३२ तोले; पानी २ मन २२ सेर ६ छटाँक, गुड़ ३० सेर, धाय के फूल १ सेर, द्राक्षा ६ सेर मिलायें। मात्रा–१॥ से २॥ तोला।

उपयोग—रक्तशोधक, प्रमेह पिड़िका तथा उपदंश में उपयोगी है।

खदिरारिष्ट—खैर का मध्य भाग—५ सेर, देवदारु ५ सेर, बावची १ सेर ३ छटाँक, दारुहल्दी २ सेर, त्रिफला २ सेर, जल १० मन ९ सेर १० छटाँक, क्वाथ करके शेष–१ मन १२ सेर, इसमें शहद २० सेर, खांड १० सेर, धातकी पुष्प २ सेर शीतलचीनी, नागकेसर, जायफल, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात प्रत्येक का चूर्ण ८ तोले, पिप्पली चूर्ण ३२ तोले मिलाकर रख देवें। मात्रा–१½ तोले से २½ तोला।

उपयोग—कुष्ठ, वातरक्त तथा रक्तशोधक है।

अशोकारिष्ट—अशोक छाल १० सेर, जल ५ मन ४ सेर १३ छटाँक, शेष १ मन १२ सेर, गुड़, २० सेर, धातकी पुष्प १ सेर १० छटाँक, कालाजीरा, मुस्तक, सोंठ, दारुहल्दी, नीलोत्पल, त्रिफला, आम की गुठली की मज्जा, जीरक, अडूसा, लाल चन्दन प्रत्येक ८ तोला, मिलाकर सन्धान करें। मात्रा–१॥ से २॥ तोला।

उपयोग—स्त्रियों के रोगों में—प्रदर विशेषकर रक्त, श्वेत प्रदर, निर्बलता तथा रक्तस्राव के अधिक होने में।

द्राक्षारिष्ट—द्राक्षा (मवेज) २॥ सेर, पानी २५ सेर ८ छटाँक, शेष ७ सेर, गुड़ १० सेर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, प्रियंगु, मरिच, पिप्पली, विडंग, प्रत्येक ४ तोला मिलाकर सन्धान करें।

उपयोग—शक्तिवर्धक, खून बढ़ाने वाला तथा मृदुरेचक।

अमृतारिष्ट—गिलोय १० सेर, दशमूल मिलित १० सेर, क्वाथ के लिये पानी ४ मन १२ सेर, शेष १ मन १२ सेर, गुड़ ३० सेर, काला जीरा १२८ तोला, पर्पटक १६ तोला, सतवन की छाल ८ तोला, त्रिकटु, नागकेसर, मुस्तक, कुटकी, अतीस, इन्द्र जौ प्रत्येक ८ तोला मिलाकर सन्धान करें।

उपयोग—पुरातन जीर्ण ज्वर तथा ऐसा ज्वर रहने पर जब यकृत-प्लीहा काम न करते हों।

कुटजारिष्ट—कुटजमूल छाल–५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, महुआ के फूल, गम्भारी की छाल प्रत्येक २॥ सेर, पानी क्वाथ के लिये ५ मन २० सेर, शेष १ मन १५ सेर, धातकी पुष्प १ सेर, गुड़ ५ सेर मिलायें।

उपयोग—रक्तार्श, रक्तातिसार तथा ग्रहणी रोग में

विडंगारिष्ट—विडंग, पिप्पलीमूल, रास्ना, कूडे की छाल, इन्द्र जौ, पाठा, एलुवा, आँवला, प्रत्येक ४० तोला, जल १० मन ११ सेर में क्वाथ करें, शेष १ मन १२ सेर, मधु ३० सेर, धाय के फूल २ सेर, दालचीनी, तेजपात्र, नागकेसर प्रत्येक १६ तोले, प्रियंगु, कचनार की छाल, लोध प्रत्येक ८ तोला, त्रिकटु मिलित ६४ तोला, प्रक्षेप मिलायें। मात्रा–१॥ से २॥ तोला।

उपयोग—विद्रधि, प्रमेह तथा गण्डमाला में।

अहिफेनासव—मधूक मद्य (रैक्टीफाईस्प्रिट) १० सेर, अफीम ३२ तोला, मोथा, ८ तोला, जायफल, इन्द्र जौ, इलायची प्रत्येक ८ तोला, मिलाकर १५ दिन सन्धान करें। मात्रा—५ से २० बूँद पानी के साथ।

उपयोग—अतिसार तथा वमन अतिसार (विसूचिका) में उपयोगी है।

कर्पूरासव—सुरा १० सेर, कर्पूर ६४ तोला, छोटी इलायची, मोथा, सोंठ, अजवायन, मरिच प्रत्येक ८ तोला मिलाकर १५ दिन सन्धान करें। मात्रा–१ मासा तक (५ से २० बूँद)।

उपयोग—विसूचिका, हृद्दौर्बल्य तथा नाड़ी मन्द होने पर।

अरविन्दासव—कमल, खस, गम्भारी फल, नीलोत्पल, मजीठ, छोटी इलायची, बला, जटामांसी, मोथा, अनन्तमूल, हरड़, बहेड़ा, वच, आँवला, कचूर, अनन्तमूल कृष्ण, नीली मूल, पटोल पत्र, पित्तपापड़ा, अर्जुन की छाल, महुए के फूल, मुलहठी, कपूर कचरी,

प्रत्येक का चूर्ण ८ तोला, द्राक्षा २ सेर, धाय के फूल १ सेर १० छटाँक, जल २ मन २३ सेर, खांड १० सेर, शहद ५ सेर, मिलाकर सन्धान करें। मात्रा–१/४ तोले से १ तोला।

उपयोग—बालकों को पुष्ट करता है तथा जठराग्नि को बढ़ाता है।

मृगमदासव—सुरा ३२ तोला, मरिच, लवंग, जायफल, पिप्पली, दालचीनी प्रत्येक १६ तोला लेकर सन्धान सात दिन करें। मात्रा–५ से २० बूँद तक।

उपयोग—हृदय दौर्बल्य, नाड़ी क्षीण होने तथा सन्निपात ज्वर में।

उशीरासव—खस, सुगन्धवाला, कमल, गम्भारी, नीलोत्पल, प्रियंगु, पद्माख, लोध, मंजीठ, धमासा, पाठा, चिरायता, वटांकुर, गूलर, कचूर, पित्तपापड़ा, कमल, पटोलपत्र, कचनार की छाल, मोचरस प्रत्येक द्रव्य ८ तोला; द्राक्षा २ सेर, धाय के फूल १ सेर ५० तोला, खांड १० सेर, मधु ५ सेर, जल २ मन २३ सेर लेकर एकत्र सन्धान करें। सन्धान करने से पूर्व पात्र को बालछड़ और कालीमिर्च से धूपित करलें। मात्रा–१½ से २½ तोला।

उपयोग—रक्तपित्त–खून आने तथा प्रमेह में।

एलाद्यरिष्ट—छोटी इलायची ५ सेर, अड़ूसा की छाल २ सेर, मजीठ, कूड़े की छाल, दन्तीमूल, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, खस, मुलैहठी, सिरस की छाल, खदिर-काष्ठ, अर्जुन की छाल, चिरायता, नीम की छाल, चित्रक, कूठ, सौंफ, प्रत्येक द्रव्य १–१ सेर; क्वाथार्थ जल १० मन १० सेर, शेष जल १ मन १२ सेर, इसके ठण्डा होने पर इसमें धाय के फूल १ सेर १० छटाँक, शहद ३० सेर (चतुर्जात, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर) त्रिकटु, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, जटामांसी, कपूर कचरी, मोथा, छैल-छरीला, श्वेत और कृष्ण दोनों सारिवा, प्रत्येक द्रव्य ८ तोला मिलाकर सन्धान करें। मात्रा–१½ तोले से २½ तोला।

उपयोग—मसूरिका, शीतपित्त, उदर्द, कोठ तथा खसरे में उपयोगी है।

जीरकाद्यरिष्ट—जीरा २० सेर, पाकार्थ जल ५ मन ५ सेर, शेष जल १ मन १२ सेर, इसमें गुड़ ३० सेर, धाय के फूल १ सेर १० छटाँक, सोंठ १६ तोला, जायफल, मोथा, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेसर, अजवायन, शीतलचीनी, लौंग, प्रत्येक ८ तोला चूर्ण रूप में मिलायें। मात्रा–२ तोला।

उपयोग—सूतिका रोग तथा अतिसार में उपयोगी है। यह दूध बढ़ाता है।

पुनर्नवाद्यरिष्ट—श्वेत पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, बला, अतिबला, पाठा, गिलोय, अड़ूसा छाल, चित्रक, छोटी कटेरी प्रत्येक २४ तोला, जल पाकार्थ २ मन ३३ सेर, शेष जल २५ सेर ९ छटाँक। इसमें गुड़ २० सेर तथा शहद ३ सेर ४ छटाँक मिलायें। बाद में सिद्ध हो जाने पर नागकेसर, दालचीनी, छोटी इलायची, काली मिर्च, गन्धवाला,

तेजपात, प्रत्येक ४ तोला मिलायें। सात दिन के पीछे बरतें। मात्रा—१। तोले से २।। तोला।[1]

उपयोग—शोथ, प्लीहा, यकृत विकार तथा उदर रोग में उपयोगी है।

देवदार्व्यारिष्ट—देवदारु ५ सेर, वासाछाल, मजीठ, इन्द्र जौ, दन्तीमूल, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, विडंग, मुस्ता, सिरस की छाल, कत्था, अर्जुन की छाल, प्रत्येक द्रव्य १ सेर, अजवायन, कुटज की छाल, चन्दन, गिलोय, कुटकी, चित्रक प्रत्येक ६४ तोला, पाकार्थ जल १० मन १० सेर, शेष जल १ मन १२ सेर। इसमें धाय के फूल १ सेर १० छटांक, मधु ३० सेर, त्रिकटु १६ तोला, त्रिजात (दालचीनी, इलायची, नागकेसर) प्रत्येक ३२ तोला, प्रियंगु ३२ तोला, नागकेसर १६ तोला चूर्ण रूप में मिलाकर सन्धान करें। मात्रा–१।। से २।। तोला।

उपयोग—प्रमेह रोग, वात रोग, मूत्रकृच्छ्र, दद्रु आदि में (एलर्जी अवस्था में) उपयोगी है।

बब्बूलाद्यरिष्ट—बबूल की छाल, २० सेर, पानी ५ मन ५ सेर में पाक करें। जब जल १ मन १२ सेर रह जाये तब इसमें गुड़ ३० सेर, धाय के फूल १ सेर २ छटाँक, पिप्पली १६ तोले, जायफल, शीतलचीनी, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर, लौंग, कालीमिर्च प्रत्येक ८ तोला मिलायें। मात्रा–१। से २।। तोला।

उपयोग—अतीसार, प्रमेह तथा अर्श में लाभदायक है।

धात्र्यरिष्ट—आँवला २००० का रस (२५ सेर आँवलों का रस) निकाल कर इसमें मधु १/८वां भाग मिलायें। पिप्पली १६ तोला तथा शर्करा ५ सेर मिलाकर यथाविधि सन्धान करें। मात्रा–१। से २।। तोला।

उपयोग—पाण्डुरोग, कामला तथा हृदयरोग में।

सारस्वतारिष्ट—ब्राह्मी २ सेर, शतावरी, विदारीकन्द, हरड़, खस, अद्रक, सोया प्रत्येक ४० तोला, इनको १ मन १२ सेर जल में पकायें। चतुर्थांश शेष (१३ सेर) रह जाये, तब इसमें मधु १ सेर, खाँड २ सेर, धाय के फूल ४० तोला, रेणुका, निशोथ,

---

१. **पुनर्नवासव–नाम से दूसरा योग भी है, उसमें त्रिकटु, त्रिफला, दारु हल्दी, गोखरू, कटेरी, बड़ी कटेरी, अडूसा, एरण्डमूल, कुटकी, गज पिप्पली, पुनर्नवा, नीम की छाल, गिलोय, सूखी मूली, धमासा, पटोल पत्र, प्रत्येक का चूर्ण ८ तोला; धाय के फूल १ सेर १० छटांक, द्राक्षा २ सेर, खांड १० सेर, शहद ५ सेर, पानी १ मन १२ सेर में डाल कर सन्धान करते हैं।**

पिप्पली, लौंग, वच, कूठ, असगन्ध, बहेड़ा, गिलोय, छोटी इलायची, वायविडंग, दालचीनी, प्रत्येक २ तोला मिलाकर सन्धान करें।[1] मात्रा–१। से २॥ तोला।

उपयोग—स्मृतिवर्धक, स्मृतिभ्रंश, मन की अस्थिरता में उपयोगी है।

बलारिष्ट—बला, असगन्ध प्रत्येक १० सेर, जल पाकार्थ ५ मन ५ सेर; शेष क्वाथ १ मन १२ सेर, इसमें गुड़ ३० सेर, धाय के फूल १ सेर १० छटांक, क्षीर काकोली १६ तोले, एरण्डमूल १६ तोले, रास्ना, छोटी इलायची, प्रसारणी, लौंग, खस, गोखरू, प्रत्येक ८ तोला, प्रक्षेप दें। मात्रा–१। तोले से २॥ तोला।

उपयोग—वात व्याधि में उपयोगी है। यह बल, पुष्टि देने वाला है।

पत्रांगासव—पत्रांग (दारुहल्दी क्षुप्प का छिलका), खदिर लकड़ी, अडूसा, सिम्बल का फूल, बला, भिलावा, सारिवा, कृष्ण सारिवा; जपा पुष्प (गुड़हल के फूल) आम की गुठली, दारुहल्दी; चिरायता; पोस्त के डोडे, अगरु, रसौंत, बेलगिरि, भृङ्गराज, दालचीनी केशर, लौंग, प्रत्येक ८ तोला, द्राक्षा २० सेर, धाय के फूल १ सेर १० छटाँक, खांड १० सेर; शहद ५ सेर, इनको जल २ मन १३ सेर में डाल कर सन्धान करें। मात्रा–१। तोला से २॥ तोला।

उपयोग—सब प्रकार के प्रदर रोग तथा मन्दाग्नि में उपयोगी है।

निर्देश—केशर को आसव निष्पन्न होने के बाद पीस कर मिलाना चाहिए।

घृत

फल घृत (बृहत्)—हरीतकी, बहेड़ा, आँवला, मुलेहठी, दारुहल्दी, हल्दी, कुटकी, विडंग, पिप्पली; मुस्ता, इन्द्रायणमूल, कटफल, वच, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, कृष्ण सारिवा, श्वेत सारिवा, प्रियंगु, सौंफ, हींग, रास्ना; श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, चमेली के फूल, वंशलोचन, कमल; शर्करा, अजवायन; दन्तीमूल प्रत्येक १ तोला; गाय का घृत—३ सेर १६ तोला; दूध १२ सेर ३ तोला लेकर घृत पाक करें।

उपयोग—योनि रोगों में तथा गर्भ स्थिर करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है गर्भपात की आशंका होने पर प्रथम मास से ही इसका उपयोग करना चाहिए।[2]

---

१. इसमें २ तोला स्वर्ण पत्र डालने का उल्लेख है। इसका अभिप्राय इसमें स्वर्ण मिलाना है। परन्तु स्वर्ण घुलता नहीं। इसलिए स्वर्ण भस्म १/८ से १/४ रत्ती मधु के साथ रोगी को देना उत्तम है।

२. फल घृत—त्रिफला, नीली और पीले फूल की दोनों करसरैया; गिलोय, पुनर्नवा, सोना पाठा; हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, मेदा, शतावर; सब का कल्क १६ तोला;

पंचतिक्त घृत—घृत १ सेर १० छटाँक; क्वाथार्थ—नीम की छाल, पटोल पत्र, कटेरी, गिलोय, वासा की छाँल; प्रत्येक १ सेर; जल क्वाथार्थ—२६ सेर, शेष ६ सेर; कल्कार्थ—त्रिफला मिलित ६४ तोला, लेकर घृत पाक करें। मात्रा—१/२ से १ तोला।

उपयोग—कुष्ठ रोग में, दुष्ट व्रणों में, रक्त दोष में।

कल्याणक घृत—त्रिफला, इन्द्र जौ, बड़ी इलायची, देवदारु, एलवालुक, श्वेत और कृष्ण दोनों सारिवा; हरिद्रा, दारुहरिद्रा; शालपर्णी, पृश्नपर्णी, प्रियंगु, तगर, कुटकी, कूठ, मंजीठ, नागकेसर, अनार छाल, विडंग तालीशपत्र, छोटी इलायची; मुलेहठी, नीला कमल; दन्ती मूल, पद्माख, रक्त चन्दन–प्रत्येक १ तोला; पाकार्थ जल ७ सेर लेकर, घी १ सेर १० छटाँक पाक करें। मात्रा—१/२ से १ तोला।

उपयोग—उन्माद, अपस्मार तथा पुंसवन के लिये उत्तम है।[1]

ब्राह्मी घृत—ब्राह्मी का स्वरस ४ सेर, पुरातन गौ घृत १ सेर, वच, कूठ, शंखपुष्पी का मिलित कल्क १ पाव (२० तोला) लेकर घृत सिद्ध करें।[2]

उपयोग—उन्माद, अपस्मार, स्मृतिभ्रंश, तत्त्वोन्माद में।

सारस्वत घृत—ब्राह्मी का स्वरस (अभाव में क्वाथ) २५६ तोला; गाय का घी ६४ तोला; कल्क द्रव्य–हल्दी, चमेली के फूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला; प्रत्येक द्रव्य ४–४ तोला; पिप्पली, विडंग, सैन्धा नमक, खाण्ड, वासा प्रत्येक द्रव्य १–१ तोला; लेकर घृत पाक करें। मात्रा—१ तोला, दूध से या शर्करा के साथ।

उपयोग—मेधावर्धक तथा कर्णबाधिर्य दूर करता है।

फलघृत—कल्कार्थ—मंजीठ मुलेहठी, कूठ, आमलकी, हरड़, बहेड़ा, शर्करा, बला मेदा, विदारी, काकोली, क्षीर काकोली; अश्वगन्धा, अजवायन, हल्दी, दारुहल्दी, हींग, कुटकी, नीलोत्पल, कुमुद, द्राक्षा; श्वेत चन्दन, लाल चन्दन प्रत्येक दो तोला; गाय का घी ३ सेर ४ छटाँक, शतावरी स्वरस (या क्वाथ)—१२ सेर १३ छटाँक, दूध १२ सेर १३ छटाँक लेकर पाक करें। मात्रा—१ तोला। अनुपान–शर्करा या दूध।

उपयोग—सन्तानप्रद है। यह गर्भस्राव को रोकता है तथा योनि दोष नष्ट करता है।

गाय का घृत ६४ तोले, गाय का दूध ३ सेर १६ तोले लेकर घृत सिद्ध करें। यह प्राय: व्यवहार में आता है।

१. इसको भैषज्य रत्नावली में पानीय कल्याणक घृत के नाम से लिखा है।

२. इसका दूसरा पाठ भी है—ब्राह्मी २ सेर, भांगरा ४० तोला शंखपुष्पी, शतावरी, मुलहेठी, असगन्ध, प्रियंगु, मुस्ता प्रत्येक ८ तोला, घी ७ सेर लेकर पाक करें।

महापैचतस घृत—सन के बीज, निशोथ; एरण्ड मूल, शतावर, रास्ना, पिप्पली, शिग्रू मूल; प्रत्येक द्रव्य ८ तोला; जल १ मन १३ सेर लेकर क्वाथ करें, चतुर्थांश रहने पर—१३ सेर रहने पर इसमें कल्क द्रव्य—विदारी, मुलेहठी, मेदा, महामेदा, शर्करा, काकोली, क्षीर काकोली, खर्जूर, द्राक्षा; तालमस्तक, गोखरू, इन्द्रायण मूल; त्रिफला, रेणुका, देवदारु, एलुवा, शालपर्णी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, सारिवा, कृष्ण सारिवा, प्रियंगु, नीलोत्पल; इलायची, मंजीठ, दन्ती मूल, अनारदाना, नागकेसर, तालीश पत्र, बड़ी कटेरी, चमेली के फूल, विडंग, पृश्नपर्णी; कूठ, लाल चन्दन, पद्माख, प्रत्येक द्रव्य दो-दो तोला; घृत ३ सेर ४ छटाँक लेकर पाक करें। मात्रा—१ तोला।

उपयोग—उन्माद, अपस्मार, मनोदैन्य तथा मस्तिष्क निर्बलता में।

महात्रिफला घृत—गाय का घी—३ सेर ४ छटाँक; त्रिफला क्वाथ ३ सेर ४ छटाँक; क्वाथ के जल १२ सेर १३ छटाँक; शेष जल ३ सेर ४ छटाँक; भांगरे का रस, शतावर का रस (क्वाथ) बकरी का दूध; गिलोय का रस; आँवले का रस प्रत्येक ३ सेर ४ छटाँक; कल्क द्रव्य—पिप्पली, खांड, द्राक्षा, त्रिफला, नीला कमल, मुलेहठी, क्षीर काकोली, गिलोय, छोटी कटेरी, मिलित ६४ तोला; लेकर पाक करें। मात्रा १/२ से १ तोला।

उपयोग—नेत्र रोगों, अभिष्यन्द, अधिमन्थ तथा राज्यन्ध में उपयोगी हैं। इसको सूर्यास्त के बाद देना चाहिए।

मायूर घृत—गाय का घृत—३ सेर ४ छटाँक, क्वाथ के लिये—दशमूल का प्रत्येक द्रव्य २४ तोले, बला, रास्ना, मुलेहठी, पंख-पित्त-आंत-मल-पाँव, चोंच से रहित मयूर का मांस ३ सेर १४ छटाँक, जल १ मन १२ सेर में क्वाथ करें। शेष १२ सेर १३ छटाँक, बचायें; इसमें दूध ३ सेर ३ छटाँक; कल्कार्थ—काकोल्यादि गण की प्रत्येक औषध २ तोला; मिलाकर पाक करें। मात्रा—१/२ तोला।

उपयोग—नेत्र रोग तथा शिरो रोग में उपयोगी है।

दशमूल षट्पल घृत—दशमूल का क्वाथ ४ प्रस्थ, गोघृत—१ प्रस्थ, पिप्पली पिपप्ली मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, जौखार का कल्क ६ पल लेकर घृत सिद्ध करें। मात्रा—१ तोला। भोजन के साथ या बाद में दें।

उपयोग—यह भूख बढ़ाता है। कास तथा अग्निमान्द्य में उपयोगी है।

क्षीर षट्पल घृत—गाय का घी—४ सेर; दूध १६ सेर, जल—१६ सेर; कल्क द्रव्य—पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, यवक्षार प्रत्येक ८ तोला लेकर घृत पाक करें। मात्रा १/२ से १ तोला।

उपयोग—अग्निवर्धक है। इसी से अर्श में लाभकारी है। भोजन से आधा घंटा पहले देना उत्तम है। आनाह तथा विबन्ध में भी बरता जाता है।

निर्देश—कुछ वैद्य यवक्षार के स्थान पर सैन्धव लवण को प्रयोग में लाते हैं।

पंचतिक्त घृत गुग्गुलु—घृत ३ सेर ४ छटाँक; क्वाथार्थ—नीम की छाल, गिलोय अडूसा छाल, पटोल पत्र; कटेरी प्रत्येक द्रव्य १ सेर, गुग्गुलु पोटली में बाँधकर १/२ सेर; जल १ मन १२ सेर लेकर क्वाथ करें। शेष जल ६ सेर ६ छटाँक। इसमें गुग्गुलु घोल लें। बाद में कल्क के रूप में पाठा, वायविडंग, देवदारु; गज पिप्पली, यवक्षार, सर्जक्षार, सोंठ, हल्दी, सोया, चव्य; कूठ, काली मिर्च, तेजोवती (माल कंगनी); इन्द्र जौ, जीरा; चित्रक, कूठ, शुद्ध भिलावा, वच, पिप्पलीमूल, मंजीठ, अतीस; त्रिफला, अजवायन प्रत्येक द्रव्य २ तोला मिलायें। मात्रा—१ से २ तोला, दूध के साथ।

उपयोग—कुष्ठ, नाडी व्रण, भगन्दर तथा वातरक्त में।

पंचतिक्त घृत—घृत ३ सेर ४ छटाँक क्वाथ के लिए—नीम की छाल, पटोल पत्र, छोटी कटेरी, गिलोय, अडूसा छाल प्रत्येक १ सेर; जल १ मन १२ सेर लेकर क्वाथ करें। शेष १२ सेर १३ छटाँक बचने पर। इसमें त्रिफला ६४ तोला मिलित मिलाकर घृत सिद्ध करें। मात्रा—१/२ से १ तोला।

उपयोग—अर्श, पाण्डु, दूषित व्रण तथा वातरक्त में।

तिक्तक घृत—घृत ३ सेर ४ छटाँक; क्वाथ द्रव्य—त्रिफला; हल्दी, दारु-हल्दी, वासड, धमासा, पित्तपापड़ा; पटोलपत्र; त्रायमाणा; कुटकी, नीम की छाल; प्रत्येक १६ तोला; जल १ मन १२ सेर लेकर क्वाथ करें। शेष ६ सेर ६ छटाँक रहने पर इसमें—पिप्पली, मोथा, लाल चन्दन, त्रायमाणा; इन्द्र जौ, चिरायता; मिलित ६४ तोला कल्क मिलाकर पाक करें। मात्रा १/२ से १ तोला।

उपयोग—कुष्ठ, पाण्डु, ग्रहणी तथा श्वयथु में लाभकारी है।

अमृतप्राश घृत—जीवक, ऋषभक, शतावरी, जीवन्ती, सोंठ, कचूर, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, कटेरी, पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, मुलेहठी, कौंच, शतावरी छोटी, ऋद्धि, फालसा, भांर्गी, द्राक्षा, बड़ी कटेरी; सिंघाड़ा, भूई आँवला; क्षीर विदारी, बला, पीपल, बेर की गिरी, अखरोट की गिरी, खजूर; बादाम की गिरी, पिस्ता, चिरौंजी की गिरी (अखरोट, काजू आदि भी) १–१ तोला कल्क बनायें; आँवले का रस (अभाव में क्वाथ); ईख का रस, विदारी कन्द का रस, बकरे का मांसरस, गाय का दूध प्रत्येक ६४ तोला; गाय का घृत ६४ तोला मिलाकर घी सिद्ध करें। शीतल होने पर मधु

३२ तोला; खांड—२०० तोला; मरिच, दालचीनी; इलायची, तेजपत्र, नागकेसर–२–२ तोला दें। मात्रा—२ से ४ तोला।

उपयोग—नपुंसकता, उरःक्षत, राजयक्ष्मा; कास तथा कृशता में उपयोगी है।

निर्देश—इस घी को छाना नहीं जाता। पकने पर जैसा रहता है—(अवलेह जैसा) वैसा ही काम में आता है।[1]

अग्नि घृत—पिप्पली, पिप्पली मूल, चित्रक, गज पिप्पली, हींग, अजवायन, पाँचों नमक (सैन्धव, सौर्वचल, उद्भिद्, विड़, सेभर); यवक्षार, सर्जक्षार, हऊवेर प्रत्येक द्रव्य २ तोला; दही, काँजी, सिरका, अदरख का रस, गाय का घृत—प्रत्येक द्रव्य ६४ तोला लेकर घी सिद्ध करें। मात्रा—१/२ से १ तोला।

उपयोग—मन्दाग्नि, अर्श तथा गुल्म में

अश्वगन्धा घृत—गाय का घी ४ सेर, अश्वगन्धा का क्वाथ १६ सेर; दूध १६ सेर, असगन्ध का कल्क १ सेर लेकर पाक करें। मात्रा—१ तोला।

उपयोग—वातनाशक तथा वृष्य और मांसवर्धक है।

कामदेव घृत—गाय का घी ३ सेर ४ छटाँक, क्वाथ के लिये—असगन्ध १० सेर, गोखरू ५ सेर, शतावर, विदारी कन्द, शालपर्णी, वला, वटोकर, कमलगट्टा; गम्भारी फल; उड़द प्रत्येक द्रव्य १–१ सेर, जल ५ मन ५ सेर लेकर क्वाथ करें। शेष १ मन १२ सेर; गन्ने का रस १२ सेर १३ छटाँक; कल्क द्रव्य—किसमिस, पद्माख, कूठ, पिप्पली, लाल चन्दन; गन्धवाला, नागकेसर, कौंच के बीज; नीलोत्पल; सारिवा; श्यामलता; जीवक; ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली; मुद्गपर्णी; माषपर्णी; जीवन्ती, मुलेहठी; प्रत्येक २ तोला, लेकर पाक करें। सिद्ध होने पर छान कर खांड १६ तोले मिलायें। मात्रा—२ तोला, दूध के साथ।

उपयोग—वृष्य, वाजीकरण; कामला तथा उरःक्षत में उपयोगी है।

---

१. योग रत्नाकर में बिना छांग मांस का भी यह घृत है—दूध, आँवले का रस, मंजीठ, पाँच क्षीरी वृक्ष (वट, गूलर, पीपल, पिलखन, आम की छाल); इनका क्वाथ प्रत्येक का ६४ तोला; घी ६४ तोला; तथा जीवक, ऋषभक छोड़कर शेष जीवनीय गण के द्रव्य; दाख, लाल और श्वेत चन्दन; खस, खांड, कमल, पद्माख, महुआ; सारिवा, गम्भारी फल, पंचतृण मूल के द्रव्य—१–१ तोला, लेकर पाक करें। शीतल होने पर मधु ३२ तोला, खांड २॥ सेर, नागकेसर, दालचीनी, इलायची तेजपात—२–२ तोला मिलायें।

चोगेरी घृत—चोगेरी का रस ४ सेर; वेर का क्वाथ ४ सेर; खट्टी दही ४ सेर; कल्कार्थ—सोंठ; यवक्षार—१-१ पाव; घी १ सेर मिलाकर पाक करें। मात्रा—१/२ से १ तोला।

उपयोग—योनि स्खलन तथा गुदभ्रंश में।

त्रिफलाद्य घृत—गाय का घी ३ सेर ४ छटाँक; त्रिफला क्वाथ १२ सेर १३ छटाँक, दूध ३ सेर ४ छटाँक, कल्कार्थ—त्रिफला ६४ तोला; लेकर यथाविधि पाक करें। मात्रा—१/२ तोला।

उपयोग—नेत्र की निर्बलता तथा तिमिर में—'सूर्यास्त के समय सेवन करें।

दाड़िमाद्य घृत—घी ३ सेर ४ छटाँक; कल्कार्थ—अनारदाना (दाड़िमी-पर्वतीय); वायविडंग; हल्दी, चव्य, जीरा; त्रिफला; सोंठ, पिप्पली; गोखरू बीज; अजवायन; धनिया; वृक्षाम्ल (कोकम), पिप्पली मूल, वेर का गूदा, सैन्धव प्रत्येक २-२ तोला; जल १६ सेर लेकर घृत सिद्ध करें। मात्रा—१/२ से १ तोला।

उपयोग—प्रमेह, मूत्राघात तथा कामला में।

धान्वन्तर घृत—गव्य घृत ३ सेर ४ छटाँक; क्वाथ द्रव्य—दशमूल, दोनों करंज के फल; देवदारु, हरड़, लाल पुनर्नवा, वरने की छाल; दन्तीमूल; चित्रक; श्वेत पुनर्नवा; सेहण्ड की जड़, नीम की छाल; कदम्ब; विल्व छाल; भिलावा, कचूर, शठी, पोहकर मूल; प्रत्येक द्रव्य १-१ सेर; जौ, वेर का गूदा; कुलत्थी प्रत्येक १ सेर १० छटाँक; जल १ मन १२ सेर लेकर चौथाई बचायें। कल्क के रूप में—हिज्जल बीज; त्रिफला, भारंगी, रोहिष घास; गज पिप्पली, सोंठ, वायविडंग, वचा; कमीला सब मिलित ६४ तोला लेकर घृत सिद्ध करें। मात्रा—१/२ से १ तोला।

उपयोग—प्रमेह, उन्माद, अपस्मार तथा गुल्म में।

पंचगव्य घृत—गोमय रस ४ सेर; गाय का खट्टा दही ४ सेर; गाय का दूध ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, गाय का घी ४ सेर; पाकार्थ जल ६ सेर; सब को मिलाकर पाक करें। मात्रा—१/२ तोला।

उपयोग—अपस्मार, उन्माद तथा ज्वरों में उपयोगी।

शतावरी घृत—गाय का घृत ३ सेर ४ छटाँक, शतावरी का रस ३ सेर ४ छटाँक; बकरी का दूध १२ सेर १३ छटाँक; कल्कार्थ—नीली मूल, देवदारु, अनार का छिलका; लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, वला, नागवला, अडूसा दोनों श्वेत और कृष्ण सारिवा; हरड़, काकड़ाशृंगी, इन्द्रायण की जड़, मुनक्का, मुसली, नीलोत्पल, चोरक, भुई आँवला, विदारीकन्द, नीम, हल्दी, दारु हल्दी-मिलित १३ छटाँक लेकर घृत सिद्ध करें। मात्रा—१/२ से १ तोला।

उपयोग—वात रोग नाशक, मेध्य तथा पुष्टिदायक है।

सारस्वत घृत (ब्राह्मी घृत)—जड़ और पत्ते सहित ब्राह्मी को पानी से धोकर उसका स्वरस निकाल लें; स्वरस १३ सेर १३ छटाँक; गाय का घी ३ सेर ४ छटाँक; कल्क द्रव्य—हल्दी; आँवला; (पाठान्तर से मालती फूल); कूठ, निशोथ, हरड़, प्रत्येक ८–८ तोला; पिप्पली, वायविडंग; सैन्धव, खांड, वच प्रत्येक ८–८ तोला लेकर पाक करें। मात्रा—१ तोला।

उपयोग—स्वर भंग तथा कास में उपयोगी है।

छागलाद्य घृत—गाय का घी ३ सेर ४ छटाँक; बकरे का मांस ५ सेर; दशमूल ५ सेर; जल १ मन १२ सेर; क्वाथ शेष १२ सेर १३ छटाँक; दूध ३ सेर ४ छटाँक; शतावर का रस ३ सेर ४ छटांक; कल्क द्रव्य—जीवक, ऋषभक; काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा; मुद्गपर्णी; माषपर्णी, जीवन्ती; मुलेहठी (दो भाग); मिलित ६४ तोला मिलाकर घृत पाक करें। मात्रा—१/२ से १ तोला।

उपयोग—उरःक्षत, क्षत क्षीण, राजयक्ष्मा तथा गृध्रसी में।

सुकुमार घृत—पुनर्नवा १० सेर, पाकार्थ जल १ मन १२ सेर; शेष जल १२ सेर १२ छटाँक; दशमूल, शतावर, बलामूल, असगन्ध, पंचतृण मूल, गोखरू, विदारी गन्धा (शालपर्णी); नागवला, गिलोय; अतिवला प्रत्येक वस्तु १–१ सेर; जल १ मन १२ सेर लेकर क्वाथ करें। जब जल चौथाई रह जाये, तब छानकर दोनों क्वाथों को मिला दें। इन क्वाथों में गाय का घी ६ सेर ६ छटाँक, गुड़ ३ सेर, एरण्ड तैल ३ सेर ४ छटाँक; मिलायें; कल्क द्रव्य—मुलेहठी, अदरख, द्राक्षा, सैन्धा नमक, पिप्पली प्रत्येक १६ तोला, अजवायन ३२ तोला, मिलाकर पाक करें। मात्रा—१/२ तोला।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी तथा प्रमेह में।

पिप्पल्याद्य घृत—गव्य घृत ४ सेर; गाय का दूध १६ सेर; कल्क द्रव्य—पीपल, लाल चन्दन; मोथा; उशीर, कुटकी, इन्द्र जौ, सोंठ, भूई आँवला; अनन्तमूल; अतीस, शालपर्णी; द्राक्षा; आँवला, वेलगिरी; वला, कटेरी सब मिलकर १ सेर लेकर पाक करें।

उपयोग—जीर्ण ज्वर में; पित्त के कारण शरीर में कृशता रहने पर; हल्का ज्वर रात या सायंकाल आता हो तो उत्तम है।

महातिक्त घृत—घृत ४ सेर, आँवले का रस ८ सेर, कल्क द्रव्य—सप्तपर्ण की छाल; अतीस, अमलतास; कुटकी; पाठा, मोथा; खस; हरड़, बहेड़ा, आँवला, पटोल पत्र, नीम की छाल; पित्तपापड़ा; दुरालभा, लाल चन्दन; पिप्पली; गज पिप्पली, पद्माख; हरिद्रा, दारु हरिद्रा; वच, इन्द्रायण, शतावरी; अनन्तमूल,

कृष्ण सारिवा; इन्द्र जौ, वासक छाल; दूर्वा, गिलोय, चिरायता, मुलैहठी; बला ये सब द्रव्य सम भाग लेकर मिलित १ सेर; जल १६ सेर; तैल पाक करे। मात्रा—६ मासा।

उपयोग—अम्लपित्त रोग में दाह; कण्डू, पिड़का होने पर यह घृत उत्तम है। अतिसार होने पर इसको न बरतें। कुष्ठ रोग में उपदंश में प्रयोज्य है।

महापैशाचिक घृत—गाय का घृत ४ सेर, कल्क द्रव्य—जटामांसी, हरड़, भूत-केशी; ब्राह्मी, कौच के बीज, वच, त्रायमाण, जयन्ती, क्षीरकाकोली, चोरक, कुटकी, आँवला, वराही कन्द, सौंफ, सोया, गुग्गुलु, विष्णुकान्ता, गिलोय, रास्ना, गन्ध-रास्ना, मालकंगनी, बिच्छू बूटी, शालपर्णी—मिलित सम भाग—१ सेर, जल १६ सेर लेकर पाक करें। मात्रा—६ मासा।

उपयोग—बच्चों में अधिक श्रम से मानसिक विकार, संसर्गजन्य बुरी आदतें पड़ने पर इसको बरतें।

सोरेश्वर घृत—गाय का घी ४ सेर; क्वाथ द्रव्य—दशमूल मिलित सम भाग २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर; काँजी ४ सेर; दही का पानी ४ सेर; कल्क द्रव्य—निर्गुण्डी; देवदारु; त्रिफला, त्रिकटु; विड्लवण, सैन्धव, साम्भर, सेंचल और काच-लवण; विडंग, चित्रक, चव्य, पिप्पलीमूल; गुग्गुलु, धनिया, वच; यवक्षार, पाठा, शठी; इलायची, विधारा बीज, प्रत्येक द्रव्य दो तोला लेकर पाक करें। मात्रा—६ मासे से १ तोला।

उपयोग—सब प्रकार के वृद्धि रोग में; श्लीपद में वेदना, यंत्रणा तथा दाह होने पर इसको बरतें।

अर्जुन घृत—गाय का घी ४ सेर; क्वाथ द्रव्य—अर्जुन छाल ८ सेर, पानी ६४ सेर—शेष १६ सेर; कल्क द्रव्य—अर्जुन छाल १ सेर लेकर पाक करें। मात्रा—६ मासा। अनुपान—गरम दूध।

उपयोग—हृदय रोगों की पुरातन अवस्था में उपयोगी है।

त्रायमाण घृत—गाय का घी १ सेर, क्वाथ द्रव्य—त्रायमाण ३२ तोला; जल ४ सेर, शेष १ सेर; आमलकी रस १ सेर; गायका दूध १ सेर; कल्क द्रव्य—कुटकी, मोथा; त्रायमाण; धमासा, काकोली, क्षीर काकोली; जीवन्ती; लाल चन्दन, नीलोत्पल प्रत्येक द्रव्य १ तोला; लेकर पाक करें। मात्रा—६ मासा।

उपयोग—पैत्तिक, वातपैत्तिक गुल्म, रक्त गुल्म की पुरातन अवस्था में उपयोगी है, जब कि मलबन्ध एवं कृशता रहती हो।

रसोनाद्य घृत—गाय का घी ४ सेर; लहसुन का रस ४ सेर, क्वाथ द्रव्य—बृहत्पंचमूल के द्रव्य सम भाग मिलाकर उसमें से १ सेर; जल १६ सेर; शेष १ सेर बचाकर घृत पाक करें। मात्रा—६ मासा।

उपयोग—गुल्म रोग में अग्निमान्द्य होने पर तथा शरीर में भारीपन होने पर बरतें। उन्माद में उपयोगी है।

दाड़िमाद्य घृत—गो घृत ४ सेर; कल्क द्रव्य—विडंग, हल्दी, चव्य, जीरा; हरड़, बहेड़ा, आँवला, पिप्पली, गोक्षुर; अजवायन, धनिया, पिप्पली मूल; लोध; सैन्धव लवण प्रत्येक २ तोला; जल १६ सेर लेकर पाक करें। मात्रा—६ मासा। अनुपान—उष्ट्रा दूध।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्रता; मूत्र के बन्द होने, दाह, प्यास तथा मुखशोष में उपयोगी है।

अश्वगन्धा घृत (वृहत्)—गाय घृत ४ सेर; अश्वगन्धा १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर; छाग मांस २५ सेर; जल १२८ सेर, शेष ३२; दूध १६ सेर; कल्क द्रव्य—काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि; वृद्धि; मेदा, महामेदा; जीवक; ऋषभक; कौंच, इलायची; मुलेहठी; द्राक्षा; मुद्गपर्णी, माषपर्णी; पिप्पली; बला; शतावरी; विदारी— सब द्रव्य मिलित १ सेर; शीतल होने पर चीनी ३२ तोला, मधु ३२ तोला मिलायें। मात्रा—३ मासा से ६ मासा।

उपयोग—यक्ष्मा-कार्श्य तथा उरःक्षत रोगों में उपयोगी है। वेस्टिंग डिजीज में लाभ करता है।

फलकल्याण घृत—गाय का घृत ४ सेर, शतावरी रस १६ सेर, दूध गाय का १६ सेर; कल्क द्रव्य—मंजीठ, मुलेहठी, कूठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चीनी, बलामूल; मेदा, विदारी, क्षीर काकोली, अश्वगन्धा, अजवायन, हल्दी, दारु हल्दी, हींग, कुटकी, नील कमल; कमल, द्राक्षा; काकोली, चन्दन, लाल चन्दन, प्रत्येक द्रव्य २ तोला; मिलाकर घृत पाक करें। मात्रा—६ मासे से १ तोला।

उपयोग—वन्ध्या, जिसके बच्चे मरते हों, गर्भाशय द्रष्टि में उपयोगी है।

कुमार कल्याण घृत—गाय का घी ४ सेर; क्वाथ द्रव्य—बकरी का मांस ६। सेर, मिलित दशमूल ६। सेर; चौगुने जल में क्वाथ करके चतुर्थांश बचायें। गाय का दूध, शतावरी का रस; प्रत्येक ८ सेर; कल्क द्रव्य—कूठ, शठी, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक; प्रियंगु, त्रिफला, देवदारु, तेजपात, इलायची, शतावरी; गम्भारी फल, मुलेहठी; क्षीरकाकोली; मोथा; झिन्टी, जीवन्ती, लाल चन्दन, काकोली,

काली सारिवा, सारिवा, वला शरपुंखा, विदारी, वराही, मंजीठ; शालपर्णी, पृश्नपर्णी, नागकेसर, रेणुका; शंखपुष्पी, नीली मूल, अगरु, दालचीनी; लवंग केसर प्रत्येक वस्तु २ तोला मिलाकर पाक करें। शीतल होने पर इसमें कज्जली ४ तोला, अभ्रक २ तोला; मिलायें। मात्रा—६ मासा से १ तोला।

उपयोग—सब प्रकार के स्त्री रोग की औषध है। आर्त्तव दोष, वन्ध्यत्व, योनि रोग सब में प्रशस्त है।

तैल

विषगर्भ तैल (लघु)—तिल तैल १२ सेर १२ छटाँक ४ तोला; धतूरे का रस २ सेर; काँजी १२ सेर १२ छटाँक ४ तोला; कल्कार्थ—कूठ, वच, प्रत्येक १५ तोले; हृद्धात्री, मरिच; प्रत्येक ४॥ तोले; मीठा विष ३ तोले; धतूरे के बीज, सैन्धा नमक १३॥ तोले लेकर पाक करें।

उपयोग—वात रोगों तथा सामान्य दर्दों में उपयोगी है।

निर्देश—हियावली—स्पष्ट नहीं है। इसके स्थान पर कुछ लोग—सत्यानाशी की जड़ बरतते हैं।

महाविष गर्भ तैल—तिल तैल—३ सेर ३ छटाँक १ तोला, कल्कार्थ—धतूरा; सम्भालु, कटुतुम्बी; पुनर्नवा; एरण्ड मूल; अश्वगन्धा; चक्रमर्द; चित्रक; सहजन की छाल; मकोय, लांगली; नीम की छाल; बकायन; ईश्वरी (शिवलिंगी); दशमूल मिलित; शतावर; करेली, अनन्त मूल; मुण्डी; विदारी; सेहुण्ड की जड़, आक की जड़; मेढासिंगी; श्वेत और लाल कनेर की जड़, वच, काकजंघा; चिरचिटा; वला, अतिवला; छोटी कटेरी, महावला; वासा; गिलोय, प्रसारणी; प्रत्येक द्रव्य ८ तोला, पानी १ मन-११ सेर, ३ छटांक १ तोला लेकर पाक करें। शेष क्वाथ—१२ सेर १२ छटाँक ४ तोला; कल्कार्थ—त्रिकटु, कुचला; रास्ना, कूठ; मीठा विष; मोथा; देवदारु; मीठा विष, यवक्षार, सर्जक्षार, पांचों नमक; तूतिया; कटफल, पाठा, मार्गी, नौशादर; त्रायमाण, धमासा; जीरक, इन्द्रायण; सब मिलित १६ तोले लेकर पाक करें।

उपयोग—वात रोगों में उपयोगी है।

पिण्ड तैल—शारिवा मूलत्वक्—४० तोला; मंजीठ—४० तोला; एरण्ड या तिल तैल ५ सेर सर्ज रस २५ तोला; मोम २५ तोला—लेकर; पहले तैल को गरम करें; इसमें मोम मिलायें; मोम मिल जाये, तब नीचे उतार कर जब

हल्का गर्म रह जाये तब शेष वस्तुओं का चूर्ण मिलायें। इससे तेल अर्ध द्रव बन जायेगा।

उपयोग—विपादिका, वातरक्त तथा मुख-हाथ फटने में उपयोगी है।

षड्बिन्दु तैल—तिल तैल ३ सेर ३ छटाँक १ तोला, बकरी का दूध ३ सेर ३ छटाँक १ तोला; भांगरे का रस १२ सेर १२ छटाँक ४ तोला; कल्कार्थ—एरण्ड मूल; तगर; सोया, जीवन्ती, रास्ना, सैन्धा नमक, दालचीनी, वायविडंग; मुलेहठी; सोंठ, मिलित ६४ तोला। इनका यथाविधि पाक करें।

उपयोग—नस्य में होता है; इससे सब प्रकार के शिरो रोग; शिरो वेदना नष्ट होती है।

महा माष्य तैल—तिल तैल ३ सेर ३ छटाँक १ तोला; कल्कार्थ—उड़द ३ सेर ३ छटाँक १ तोला, दशमूल मिलित—५ सेर, बकरे का मांस ३ सेर; जल १ मन ११ सेर ३ छटाँक १ तोला; शेष क्वाथ १२ सेर १२ छटाँक ४ तोला; दूध १२ सेर १२ छटाँक ४ तोला; कल्क द्रव्य—कौंच, एरण्ड की जड़; सोया; सैन्धव, विड़ नमक, सेचर नमक; जीवनीयगण की वस्तुएँ; मंजीठ, चव्य, चित्रक; कटफल; त्रिकटु; पिप्पली मूल; रास्ना, मुलेहठी, सैन्धव लवण; देवदारु, गिलोय; कूठ; अश्वगन्धा, वच, कपूर; प्रत्येक २ तोला मिलाकर पाक करें।

उपयोग—स्नायु संकोच; वात रोग—अन्तः और वाह्य; वस्तिमार्ग, मुख से, मर्दन में होता है। सब प्रकार के वात रोगों में प्रशस्त है।

लाक्षादि तैल—तिल तैल ३ सेर ३ छटाँक १ तोला; काँजी या दही का पानी मस्तु—१९ सेर २ छटाँक १ तोला; लाख कच्ची; हल्दी; मंजीठ; मिलित द्रव्य ३२ तोले मिलाकर पाक करें।

उपयोग—जीर्ण ज्वर में उपयोगी है। यह दाह कम करता है।

निर्देश—लाक्षा को बरतने से पूर्व लाक्षारस बना लेना चाहिये। इसके लिये लाख को कूटकर छै गुणा पानी में भिगोकर २१ बार छानना चाहिए—जिससें सब रंग पानी में आ जाये। लाख पानी में सम्पूर्ण घुलनी चाहिए।

काशीक्षादि तैल—तिल तैल १ सेर; कल्कार्थ—कासीस; असगन्ध, लोध; गजपिप्पली, मिलित १ पाव; पाकार्थ जल ४ सेर; इनका यथाविधि पाक करें।

उपयोग—स्तन, कान, योनि में होने वाली वृद्धि को रोकता है।

महाकासीसादि तैल—तिल तैल ३ सेर ३ छटाँक १ तोला, कल्कार्थ—कासीस, सैन्धा नमक; पिप्पली, बकायन की छाल, सोंठ, कूठ, कलिहारी; मनःशिला; कनेर

की जड़, दन्ती जड़; वायविडंग; चित्रक; हरताल, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) थाहर का दूध; आक का दूध मिलित १२ छटाँक ४ तोला; लेकर पाक करें।

उपयोग—अर्श में इसका उपयोग करें। अर्श भले ही गुदा में, नासा में, योनि में कहीं भी हो इसका उपयोग करें। यह क्षार के रूप में काम करता है।

नारायण तैल—तिल तेल १२ सेर १२ छटाँक ४ तोला; शतावरी का स्वरस (अभाव में क्वाथ) १२ सेर, १२ छटाँक ४ तोला; दूध बकरी या गाय का—१ मन १२ सेर; क्वाथ द्रव्य—विल्व की छाल,अरणी मूल छाल; श्योनाक मूल छाल; पाटला मूल छाल; बकायन या फरहद की छाल; प्रसारणी, असगन्ध; छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी; बला; अतिबला, गोखरू, पुनर्नवा; प्रत्येक द्रव्य १ सेर; जल ५ मन ५ सेर; शेष जल १ मन १२ सेर; कल्क द्रव्य—सोया, देवदारु; जटामांसी, बालछड़ (छड़ीला), वच; लाल चन्दन, तगर; कूठ, इलायची, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, रास्ना, असगन्ध, सैन्धव, पुनर्नवा प्रत्येक द्रव्य १६ तोला; लेकर तैल पाक करें।

उपयोग—बात रोगों—नस्य, पान, वस्ति, मालिश में उपयोग होता है।

महानारायण तैल—तिल तैल २५ सेर १० छटाँक; शतावरी रस २५ सेर १० छटाँक, दूध १५ सेर १० छटाँक; क्वाथ द्रव्य—विल्व की छाल, असगन्ध की जड़, बड़ी कटेरी, गोखरू, सोना पाठा, बला मूल; फरहद की छाल, कटेरी, पुनर्नवा; अतिबला; अरणी, प्रसारणी, पाढ़ल, प्रत्येक की जड़ २ सेर; पानी १० मन १० सेर, शेष क्वाथ २ मन २३ सेर; कल्क द्रव्य-रास्ना, असगन्ध, सौंफ, देवदारु,कूठ, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी; अगरु, केसर; सैन्धव, जटामांसी; हल्दी, दारुहल्दी; छड़ीला, लाल चन्दन, पुष्कर मूल; इलायची, मंजीठ, मुलेहठी, तगर, मोथा, तेजपात; भांगरा, अष्टवर्ग, गन्धवाला; वच, ढाक; स्थौणेयक, पुनर्नवा, चोरक प्रत्येक २ तोला; गन्ध के लिये—कर्पूर, केशर; कस्तूरी मिलित २४ तोला; इस तैल का यथाविधि पाक करें, गन्ध द्रव्य पीछे ठण्डा होने पर मिलायें।

उपयोग—सब प्रकार के वात रोगों में—पान, नस्य, वस्ति, अभ्यंग के लिए इसका उपयोग करना चाहिए।

चन्दनादि तैल—तिल तैल, ३ सेर ४ छटाँक; कल्कार्थ—लाल चन्दन, गन्धवाला, नखी, कूठ, मुलेहठी, छैल छरीला, पद्माख, मंजीठ, सरलकाष्ट, देवदारु, कचूर, छोटी इलायची, गन्धमाजरि (मुश्क विलाव); नागकेसर, तेजपात, शिलारस, मुरामांसी,

शीतलचीनी, प्रियंगु, मोथा, हल्दी, दारु हल्दी, अनन्त मूल; काली सारिवा; लता कस्तूरी, लौंग, अगर, केसर, दालचीनी, रेणुका, नालुका मिलित १२ छटाँक ४ तोले; दही का पानी १२ सेर १२ छटाँक; लाक्षारस (१ सेर १० छटाँक लाख को १२ सेर १३ छटाँक पानी में क्वाथ करें। चौथाई रहने पर उतार लें। ३ सेर ३ छटाँक); लेकर पाक करें।[1]

उपयोग--क्षय, राजयक्ष्मा तथा रक्तपित्त में मलने में उपयोगी है।

प्रसारणी तैल—प्रसारणी—१० सेर; जल १ मन १२ सेर लेकर क्वाथ करें; अवशेष जल १२ सेर १३ छटाँक; तिल तैल १२ सेर १३ छटाँक; दही १२ सेर १३ छटाँक; काँजी १२ सेर १३ छटाँक, दूध—२५ सेर १० छटाँक; कल्क द्रव्य—चित्रक, पिप्पली मूल, मुलेहठी, सैन्धा नमक; बला; सोया; देवदारु, रास्ना, गजपिप्पली; प्रसारणी की जड़; जटामांसी; भिलावा प्रत्येक १६ तोला लेकर पाक करें।

उपयोग—वात रोग, कुब्जता, पंगुता; गृध्रसी, वात कण्टक, आर्दत रोग दूर होते हैं।

सोमराजी तैल—बाकुची, हल्दी, दारुहल्दी, सरसों, कूठ, करंज बीज; पनवाड़ के बीज; अमलतास के पत्ते—एक-एक भाग प्रत्येक द्रव्य; सरसों का तैल ४ भाग; जल १६ भाग लेकर पाक करें।[2]

उपयोग—त्वक् रोगों में, कुष्ठ में उपयोगी है।

दार्वी तैल—दारु हल्दी की छाल २ भाग; तुलसी, मुलेहठी, घर का धुँवासा; हल्दी प्रत्येक द्रव्य—१ भाग; तैल ४ भाग और जल १६ भाग लेकर पाक करें।

उपयोग—कुष्ठ में—त्वक् वैवर्ण्यता में।

मरिचादि तैल—मरिच, हरताल, त्रिवृत, लाल चन्दन, मोथा; मैनसिल, जटामांसी, हल्दी, दारु हल्दी, देवदारु, इन्द्रायण, कनेर मूल, कूठ, आक का दूध, गोबर का रस, प्रत्येक—१ तोला; विष २ तोला; कटु तैल ६४ तोला; गोमूत्र १२८ तोला; जल १२८ तोला लेकर पाक करें।

उपयोग—दद्रु, कण्डू, पामा, विर्चचिका में उपयोगी।

---

१. योगरत्नाकर में—कुष्ट के स्थान पर हल्दी; मुश्क विलाव के स्थान पर जावित्री; शिला रस और मुरामांसी के स्थान पर बेलगिरी और खस है। मुश्क विलाव को जुन्दवेद स्तर कहते हैं—केसर को तैल सिद्ध होने पर पीछे मिलायें।

२. इस तैल में, मैनसिल, हरताल, जंगाल, मुर्दाशंख, गन्धक—१-१ भाग मिलाकर पाक करें तो अधिक गुणकारी होता है; ये वस्तुयें अशुद्ध लें।

दशमूल तैल—कटु तैल ३ सेर ४ छटाँक, दशमूल क्वाथ १२ सेर १३ छटाँक; सम्भालु के पत्तों का रस १२ सेर १३ छटाँक; कल्कार्थ—दशमूल ६४ तोला मिलित मिलाकर पाक करें।

उपयोग—शिरो रोग; शिर दर्द में, इसका नस्य दें।

षड्विन्दु तैल—एरण्ड मूल, तगर, सौंफ, जीवन्ती; सैन्धव, दालचीनी, विडंग, मुलेहठी, सोंठ; मुलेहठी-रास्ना, मिलित कल्क द्रव्य ६४ तोला; तिल तैल ३ सेर ४ छटाँक; बकरी का दूध ३ सेर ४ छटाँक; भांगरे का रस १२ सेर १३ छटाँक मिलाकर पाक करें।

उपयोग—शिरो रोग, प्रतिश्याय में—नस्य में बरतें, इसको सूर्य निकलने के समय प्रातः बरतना चाहिए। नस्य के लिये—६ बूँदे वरतें।

अपामार्ग क्षार तैल—तिल तैल ४ सेर, अपामार्ग क्षार १ सेर; जल १६ सेर इनको पाक करें।

उपयोग—कर्णवाधिर्य में उपयोगी है।

असनविल्वादि तैल—विजय सार की छाल; वसामूल, विल्व की छाल, अरणी की छाल; श्योनाक की छाल, पाडल की छाल, गम्भारी की छाल—प्रत्येक १ सेर लेकर १ मन ८ सेर पानी में क्वाथ करें। जब अष्टमांश रह जाये तब इसमें ६ सेर दूध और १ सेर तेल मिला कर असगन्ध, हल्दी, दारु हल्दी का कल्क १ पाव मिलाकर तैल पाक करें।[1]

उपयोग—प्रतिदिन शरीर पर मलने के लिए, तथा प्रमेह रोग में मालिश के लिए उत्तम है।

कुंकुमादि तैल—तिल तैल ६४ तोला, क्वाथ द्रव्य—लाल चन्दन, लाक्षा, मंजीठ, कालीयक काष्ठ, खस, पद्माख, नीलोत्पल; पिलखन के नवीन अंकुर, कमल केसर; मिलित दशमूल प्रत्येक ८ तोला; जल १२ सेर १३ छटाँक; लेकर चौथाई शेष रखें। इसमें मंजीठ, मुलेहठी; लाक्षा, लालचन्दन, मुलेहठी मिलित ८ तोला, बकरी का दूध ६४ तोला मिलाकर यथाविधि पाक करें। पाक होने पर इसमें ८ तोला केसर मिला दें।

उपयोग—इस तैल के मलने से मुख की झाईं; व्यंग, फूंसी, दुर्गन्ध दूर होती है।

कुंकुमादि तैल(२)[1] तिल तैल ३ सेर ४ छटाँक; लाक्षारस ६ सेर ७ छटाँक; बकरी का दूध—६ सेर ७ छटांक; कल्कार्थ—केसर, ढाक के फूल; लाक्षा, मंजीठ,

---

१. **असनविल्वादि तैल—सहस्रयोग का पाठ है। यह पाठ परिवर्तित है।**

लाल चन्दन, कालीयक काष्ठ; पद्माख; मातुलुंग की जड़, नागकेसर; कुसुम्म के फूल; मुलेहठी; प्रियंगु; चमेली; हल्दी, दारुहल्दी; गोरोचन; श्वेत कमल, नीलोत्पल; मनःशिला; काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि, वृद्धि, जीवक; ऋषभक, मेदा, महामेदा —प्रत्येक २ तोला लेकर पाक करें।

उपयोग—मुख या शरीर पर लगाने से लावण्य की वृद्धि करता है। उत्तम सौन्दर्य प्रसाधन है।

गुडूची तैल—गिलोय १० सेर; जल १ मन १२ सेर लेकर क्वाथ करें। चौथाई १२ सेर १३ छटांक रहने पर इसमें गाय का दूध १ मन १२ सेर, तेल ३ सेर १२ छटांक और मुलेहठी, जीवनीयगण, कूठ, बड़ी इलायची, अगरु, मुनक्का; मांसी, नाखूना; सम्भालू के बीज, गोरखमुण्डी, त्रिकटु, शतावर, भांगरा, सारिवा; दालचीनी, तेजपात; वच, शालपर्णी; भुई आंवला, तगर, नागकेसर, नेत्रवाला, पद्माख, कमल लाल चन्दन प्रत्येक एक-एक तोला मिलाकर पाक करें।

उपयोग—वात रक्त, तथा कण्डू, दाद में उपयोगी है।

चन्दनवला लाक्षादि तैल—लाल चन्दन, बलामूल; लाख, खस प्रत्येक द्रव्य ६४ तोला तथा पानी १ मन १२ सेर लेकर क्वाथ करें। जब चौथाई शेष रह जाये, इसमें तिल तैल—१२८ तोला; लाल चन्दन, खस, मुलेहठी; सौंफ, कुटकी, देवदारु, हल्दी, कूठ, मंजीठ, अगरु; नेत्रवाला, असगन्ध, बला; दारु हल्दी, मरोड़फली, मोथा, मूली, इलायची, दालचीनी, नागकेसर, रास्ना, लाख, अजमोद, चम्पा के फूल, पीला चन्दन; सारिवा, विड् लवण, सैन्धव लवण का कल्क ३२ तोला मिलाकर तैल सिद्ध करें।

उपयोग—क्षयरोग, जीर्ण ज्वर में, कृशता तथा मालिश के लिये उत्तम है।

छुछुन्दरी तैल—तैल २ प्रस्थ (३ सेर ४ छटाँक); कल्कार्थ—कुट्टित छुछुन्दरी मांस ६४ तोले; जल १२ सेर १३ छटाँक में पाक करें।

उपयोग—गण्डमाला तथा नाड़ी व्रणी नष्ट होते हैं।

निर्देश—छुछुन्दर के मांस का क्वाथ और इसी के कल्क से पाक करना उत्तम है।

जात्यादि घृत और तैल—जाति पत्र (चमेली के पत्ते), पटोल पत्र, कुटकी, दारु हल्दी, हल्दी अनन्तमूल, मंजीठ, खस, मोम, नीला थोथा, मुलेहठी, करंज के बीज; मिलित ६४ तोले, घी ३ सेर ४ छटाँक, या तैल ३ सेर ४ छटाँक तथा पानी १२ सेर १३ छटाँक लेकर पाक करें।

उपयोग—तैल व्रण शोधन के लिये और घी का व्यवहार व्रण रोपण के लिए होता है।

त्रिफलादि तैल—तिल तैल ३ सेर ४ छटाँक; कल्कार्थ—त्रिफला, लोह चूर्ण, मुलेहठी, भांगरा, कमल; अनन्तमूल मिलित ६४ तोला, जल १२ सेर १३ छटाँक लेकर पाक करें।

उपयोग—शिर की अरुंषिका; भूसी (सफेद रंग की) नष्ट होती है।

दशमूल तैल—तिल तैल ३ सेर ३ छटाँक; दशमूल का क्वाथ १२ सेर १३ छटाँक; कल्कार्थ—दशमूल ३२ तोला लेकर यथाविधि पाक करें।

उपयोग—वाधिर्य तथा कर्णनाद में उपयोगी है।

विल्व तेल—तिल तैल ४ सेर; बकरी का दूध १६ सेर, कल्कार्थ विल्व फल गोमूत्र में पिसा हुआ १ सेर लेकर पाक करें।

उपयोग—कर्णवाधिर्य तथा कर्णनाद में उपयोगी है।

दीपिका तेल—वृहत्पंच मूल या देवदारु, चीड़ वृक्ष, कैल वृक्ष (जिनमें तेल होता है)—उसकी मोटी लकड़ी आठ अँगुल लेकर उसे रेशमी या बारीक वस्त्र से लपेट कर, तिल तैल में गीला करके जलायें। जलाने से जो तैल एक-एक बूँद गिरता है; वह दीपिका तेल है।

उपयोग—कर्णबाधिर्य दाद तथा कण्डू में उपयोगी है।

निर्गुण्डी तैल—तिल तैल ३ सेर ४ छटाँक; सम्भालू को कूटकर निकाला स्वरस १२ सेर १३ छटाँक लेकर इसमें तैल सिद्ध करें।

उपयोग—नाड़ी व्रण, पाभा, अपची में उपयोगी है।

पंचगुण तैल—तिल तैल ३२ भाग; गुग्गुलु शिलारस; राल, मोम, श्रीवेष्टक १–१ भाग; त्रिफला ३ भाग, जल १२८ भाग; निर्गुण्डी पत्र, निम्ब पत्र १२८ भाग लेकर; पाक करें। इसमें कपूर १ भाग पीछे से मिलायें।

उपयोग—व्रणों के रोदन में उत्तम है।

सैन्धवादि तैल—सरसों का तेल १ सेर १० छटाँक, क्वाथार्थ—सैन्धा नमक, चित्रक मूल, दन्ती मूल; ढाक के बीज, इन्द्रायण की जड़ मिलित ६ सेर ७ छटाँक; पाकार्थ—गोमूत्र १ मन १२ सेर; शेष क्वाथ ६ सेर ७ छटाँक; कल्कार्थ—लोह भस्म ३२ तोला; लेकर तैल सिद्ध करें।

उपयोग—भगन्दर में।

वासा चन्दनादि तैल—तिल तैल १२ सेर १३ छटाँक; क्वाथार्थ—अडूसे की जड़ १० सेर, जल १ मन १३ सेर १३ छटाँक; शेष १२ सेर १३ छटाँक; लाल चन्दन, गिलोय, भारंगी, दशमूल मिलित छोटी कटेरी प्रत्येक २ सेर, जल १ मन १२

सेर, शेष १२ सेर १३ छटाँक; लाक्षारस १२ सेर १३ छटाँक, दही का पानी १२ सेर १३ छटाँक; कल्कार्थ—लाल चन्दन, रेणुका; जुन्देवदेस्तर; असगन्ध, प्रसारणी; वेद दालचीनी; छोटी इलायची, तेजपत्र, पिप्पली मूल, नागकेसर, मेदा, महामेदा, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, रास्ना, मुलेहठी, छैलछरीला; कचूर; कूठ, देवदारु, प्रियंगु, बहेड़ा प्रत्येक ८ तोला मिलाकर तैल पाक करें।

उपयोग—उरःक्षत, तथा राजयक्ष्मा में खून आने पर।

निर्देश—जुन्देवदेस्तर को क्वाथ न करके, तैल सिद्ध होने के बाद मिलाना चाहिये।

सैन्धवादि तैल—एरण्ड तैल या तिल तैल—३ सेर ४ छटाँक, कल्कार्थ—सैन्धव, मैनफल, कूठ, सोया बीज; निचुल, वच, गन्धवाला, मुलेहठी, भार्गी; देवदारु, सोंठ, कूट फल; पुष्कर मूल; मेदा, चव्य, चित्रक; कचूर, पोहकर मूल; वायविडंग, अतीस, निशोथ, रेणुका, शालपर्णी; विल्वत्वक्; अजवायन, पिप्पली; दन्ती मूल, रास्ना; मिलित ६४ तोला, जल १२ सेर १३ छटाँक लेकर पाक करें।

उपयोग—ब्रध्न, वृद्धि में उपयोगी है। इसका उपयोग अनुवासनवस्ति में करने से लाभ होता है।

भृङ्गराज तैल—तिल तैल ३ सेर ४ छटाँक; भांगरे का रस (या क्वाथ) १२ सेर १३ छटाँक; कल्कार्थ—भांगरा; त्रिफला; अनन्त मूल, मण्डूर मिलित ६४ तोला, लेकर पाक करें।

उपयोग—शिर के बाल गिरने तथा बालों को बढ़ाने के लिये व्यवहार करना चाहिए।

महाबला तैल—तिल तैल ४ सेर, क्वाथार्थ—बलामूल १६ सेर, जल १२८ सेर, शेष ३२ सेर; दशमूल १६ सेर, जल १२८ सेर, शेष ३२ सेर; जौ, बेर, कुलत्थी, तीनों १६ सेर, जल १२८ सेर, शेष ३२ सेर; दूध ३२ सेर; कल्क द्रव्य—काकोल्यादि गण (काकोली, मेदा, महामेदा, क्षीरकाकोली; ऋषभक, जीवक, ऋद्धि, वृद्धि); मुद्गपर्णी, माषपर्णी, वंशलोचन, पुण्डरीक काष्ठ; पद्माख, जीवन्ती, गिलोय, काकड़ा शृंगी; मुनक्का; सैन्धा नमक, अगर, राल, सरलकाष्ठ; मंजीठ, लाल चन्दन, कूठ; छोटी इलायची, तगर; जटामांसी, छैलछरीला, तेजपत्र; तगर अनन्त मूल; वच, शतावर, असगन्ध, सोया, पुनर्नवा ये द्रव्य मिलित १ सेर लेकर पाक करें।

उपयोग—सूतिका रोग, वात रोगों तथा कृशता में मलना उत्तम है। सूतिका रोग में इसकी वस्ति देना उत्तम है।

अश्वगन्धा तैल—१० सेर असगन्ध को एक द्रोण जल–१२ सेर १३ छटाँक;

चौथाई शेष रहने पर इसमें तिल तैल—६४ तोला, दूध २५६ तोला; कल्क द्रव्य—कमल की जड़, कमल का केसर, मालती के फूल, नेत्रवाला; मुलेहठी, सारिवा, मेदा, पुनर्नवा; दाख, मजीठ, कटेरी, बड़ी कटेरी, इलायची, एलुवा; त्रिफला, नागर-मोथा, चन्दन, पद्माख—इनका कल्क १६ तोला मिलाकर पाक करें।

उपयोग—निर्बल-कमजोर बच्चों में, मलने के लिये; स्त्रियों के लिये उत्तम है।

माष तैल—तिल तैल ४ सेर; उड़द, कौंच, अतीस, एरण्ड मूल; रास्ना, सोया; सैन्धव; इनका कल्क १ सेर; उड़द और वलामूल का क्वाथ १६ सेर लेकर तैल सिद्ध करें।

उपयोग—पक्षाघात, पान, वस्ति, अभ्यंग में बरतें।

मूषिकादि तैल—वृहत्पंच मूल ६४ तोला; चूहे का मांस ६४ तोला; दूध ३ सेर ४ छटाँक; जल ९ सेर १० छटाँक; लेकर पाक करें। जब दूध शेष रह जाये, तब इस दूध से, देवदार्वादि गण का कल्क मिलाकर देवदारु, कूठ, हल्दी, वरणा, मेष शृंगो वला, अतिवला, कौंच आदि वातनाशक औषधियों का यथाविधि घृत या तैल पाक करें।[1]

उपयोग—अन्तः प्रयोग में घृत, वाह्य प्रयोग में तैल बरतने से, योनिभ्रंश गुदभ्रंश नष्ट होते हैं।

वृहल्लाक्षादि तैल—तिल तैल ३ सेर ४ छटाँक, लाक्षारस १२ सेर १३ छटाँक; मस्तु (दही का पानी)—१२ सेर १३ छटाँक; कल्क द्रव्य—शतपुष्पा, हल्दी, मूर्वा, कूठ हरेणु, कुटकी; मुलेहठी, रास्ना; असगन्ध, देवदारु, मोथा; श्वेत चन्दन प्रत्येक २ तोला मिलाकर पाक करें।

उपयोग—कास, श्वास, उरःक्षत तथा जीर्ण ज्वर में उपयोगी है।

विडंगादि तैल—तैल २ प्रस्थ; कल्क द्रव्य—विडंग, कालीमिर्च, मदार की जड़, चित्रक, देवदारु; एलवालुक, पांचों नमक, मिलित सब ६४ तोला, जल ८ प्रस्थ लेकर पाक करें।

उपयोग—श्लीपद रोग में अन्तः और बाह्य प्रयोग करें।

श्रीगोपाल तैल—तिल तैल १२ सेर १३ छटाँक; शतावर का रस (क्वाथ) पेठे का रस; आँवले का रस या क्वाथ प्रत्येक १२ सेर १३ छटाँक; क्वाथ द्रव्य—असगन्ध १० सेर; पानी १ मन १२ सेर; शेष; १२ सेर १३ छटाँक; झिंटी मूल १० सेर लेकर, वलामूल १० सेर; महत्पंच मूल—छोटी कटेरी, मूर्वा मूल, केवड़े की जड़,

---

१. वातनाशक औषधियों के लिए—सुश्रुत सूत्र अं० १४९,७ में देवदारु गण देखें।

करंज की जड़, फरहद की छाल—ये मिलित १० सेर लेकर १ मन १२ सेर पानी में पृथक्-पृथक् क्वाथ करें और इनका प्रत्येक का १२ सेर १३ छटाँक क्वाथ बचायें। इस प्रकार सब क्वाथ बनाकर मिलायें। इसमें—असगन्ध; चोर पुष्पी; (चोरक), पद्माख, छोटी कटेरी; बलामूल, अगर, मोथा, शिलारस, लाल चन्दन; श्वेत चन्दन, त्रिफला; मूर्वा मूल, जीवक, ऋषभक, काकोली; क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा; मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलेहठी, पिप्पली; काली मिर्च, सोंठ, चतुर्जात (दाल-चीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर) छैल छरीला; नखी; मृणाल; नीलोत्पल, खस, देवदारु, वच, अनारदाना, दमनव; प्रत्येक ४ तोला मिलायें। सिद्ध होने पर केसर, कस्तूरी; जुन्देवदेस्तर भी चार-चार तोला मिलायें।

उपयोग—ध्वजभंग रोग तथा नपुंसकता में मर्दन कराते हैं। गर्भ स्थापक, वृष्य तथा पौष्टिक है।

शुष्क मूलाध तैल—तिल तैल ३ सेर ३ छटाँक; कल्कार्थ—शुष्क मूली; पुनर्नवा, देवदारु, रास्ना, सोंठ, मिलित ६४ तोला; पाकार्थ जल १२ सेर १३ छटाँक। तैल सिद्ध करें।

उपयोग—हाथ-पैरों की शोथ में मालिश करते हैं।

हिमसागर तैल—तिल तैल ३ सेर ३ छटाँक; शतावर; विदारी; पेठे का रस, आंवले का रस; सेमल की जड़ का रस; गोखरू का क्वाथ, नारियल का पानी, केले की जड़ का रस—प्रत्येक द्रव ३ सेर ३ छटाँक (तैल के बराबर); दूध १२ सेर १३ छटाँक; कल्कार्थ—लाल चन्दन; तगर; कूठ; मंजीठ, सरलकाष्ट; अगर, जटामांसी, मुरा-मांसी, छैल छरीला; मुलेहठी; देवदारु; नख, हरड़, वच, हल्दी, तेजपात; कुन्दरू; नालुका, शतावर, लोध; मोथा; दलाचीनी, छोटी इलायची; नागकेसर, लौंग; जावित्री, सौंफ; कचूर, श्वेत चन्दन; गठिवन, कपूर—मिलित ६४ तोला लेकर पाक करें। सिद्ध होने पर जुन्देवदेस्तर १/२ तोला पीसकर मिलायें। गन्ध द्रव्य जो मिल सकें उनसे तैल पकायें।

उपयोग—शोष रोगी, कृश, वातरोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिये उत्तम है। अस्थि भंग; सन्धि भ्रंश में बरतें।

हिंग्वादि तैल—सरसों का तेल ३ सेर ४ छटांक; कल्कार्थ—हींग, हीरा कसीस, सैन्धव, सोंठ; तेजपत्र, चित्रक; मुसब्बर, समुद्र फेन, कर्पूर, यवक्षार, सर्जक्षार, सुहागा, हल्दी; दारु हल्दी मिलीत ६४ तोला; जल १२ सेर १३ छटाँक लेकर पाक करें।

उपयोग—इसका पिचु बरतने से; रजःस्राव की कृच्छ्रता, योनि शूल नष्ट होता है; इस तैल को उत्तरवस्ति में भी प्रयोग करना चाहिए।

अंगारक तेल—तिल तैल ४ सेर; काँजी १६ सेर; कल्क द्रव्य—दूर्वामूल, लाक्षा, हरिद्रा, दारु हल्दी; मंजीठ, इन्द्रायण की जड़; कटेरी, सैन्धव, कूठ, रास्ना, जटामांसी; शतावरी—प्रत्येक द्रव्य सम भाग—मिलित सब एक सेर लेकर पाक करें।

उपयोग—जीर्ण ज्वर में वायु का प्रकोप होने पर—ज्वर बहुत मृदु रूप से बाहर हो—शरीर गरम रहे।

किरातादि तैल—सरसों का तेल ४ सेर, दही का पानी ४ सेर, कांजी ४ सेर; चिरायते का क्वाथ ४ सेर, पानी १६ सेर; कल्क द्रव्य—दूर्वामूल, लाक्षा, हल्दी; दारु हल्दी, मंजीठ, इन्द्रायण मूल; वला; कूठ, रास्ना; गजपिप्पली, सोंठ, पिप्पली, मरिच, पाठा; इन्द्र जौ, सैन्धव; सेचल; विड्लवण, वासा छाल, आक की जड़, सारिवा; देवदारु—सब सम भाग मिलित—१ सेर लेकर तेल पाक करें।

उपयोग—मृदु ज्वर जब जीर्णावस्था में हो; कुछ समय पीछे बार-बार आक्रमण होता हो तो बरतें।

ग्रहणी मिहिर तैल—तिल तेल ४ सेर, क्वाथ द्रव्य-कुटज छाल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, धनिया १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, तक्र १६ सेर, कल्क द्रव्य—धनिया, धाय के फूल, लोध, मंजीठ, अतीस, हरड़, लौंग, नेत्रबाला, मोचरस, रसौंत, बेलगिरी, नीलोफर के पत्र, नागकेशर, तेजपत्र, कमल केशर, गिलोय, इन्द्र जौ, श्यामा, पद्माख, कुटकी, तगर, जटामांसी, भांगरा, केशराज, पुनर्नवा, आम की छाल, जामुन की छाल, कदम्ब की छाल, कूडे की छाल, अजवायन तथा जीरा, प्रत्येक द्रव्य ४ तोला, लेकर तैल पाक करें।

उपयोग—प्रवाहिका, अतिसार, ग्रहणी रोग में रोगी के कृश होवे पर रोगी के नाभिप्रदेश तथा शरीर पर इस तेल का मर्दन करना चाहिए। इससे वात-पित्त शान्त होते हैं।

गुडूची तैल—तिल तैल ४ सेर, गिलोय १ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, कल्क द्रव्य—गिलोय १ सेर, लेकर तैल पाक करें।

उपयोग—अम्लपित्त रोग, हाथ पैर में दाह, जलन होने पर इसका मर्दन करें। जीर्ण ज्वर में उपयोगी है।

पुष्पराज प्रसारिणी तैल—तिल तेल ४ सेर, क्वाथ्य द्रव्य—गन्ध प्रसारिणी १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, अश्वगन्धा मूल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध १६ सेर, श्वेत कमल का रस ४ सेर, शतावर रस ४ सेर, कल्कद्रव्य—सौंफ, पिप्पली, इलायची, कूठ, कण्टकारी, सोंठ, मुलैहठी, देवदारु, शालपर्णी, पुनर्नवा, मंजीठ,

तेजपात, रास्ना, वच, अजवायन, गन्धतृण, जटामांसी, निर्गुण्डी, वला, चित्रक, गोखरू, मृणाल, शतावरी, प्रत्येक वस्तु २ तोला, लेकर तेल पाक करें ।

उपयोग—पंगुता, खञ्जता, शिरोगत वात तथा अर्दित में उपयोगी है ।

मध्यम विष्णु तैल—तिल तेल ४ सेर, क्वाथ्य द्रव्य—शतावरी, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, कचूर, वला, एरण्ड मूल, वृहती मूल, कटेरी, करंज मूल, झिंटी की मूल, प्रत्येक १। सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, गाय का दूध ८ सेर, बकरी का दूध ८ सेर, शतावरी रस ४ सेर, कल्क द्रव्य—पुनर्नवा, वच, देवदारु, सौंफ, लाल चन्दन, शिलारस, तगर, कूठ, इलायची, जटामांसी, शालपर्णी, वला, अश्वगन्धा, सैन्धव और रास्ना—प्रत्येक वस्तु ४ तोला मिलाकर तैल पाक करें ।

उपयोग—पक्षाघात, कुब्जत्व, विश्वाची तथा कलाय खञ्जता में उपयोगी है ।

महापिण्ड तैल—कटु तेल ४ सेर, क्वाथ द्रव्य–गिलोय १२॥ सेर जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, बावची १२॥ सेर जल से ६४ सेर, प्रसारणी १२॥ सेर जल, ६४ सेर, शेष १६ सेर, गाय का दूध १६ सेर, कल्क द्रव्य—शिलारस, राल, निर्गुण्डी, त्रिफला, भांग, कटेरी बड़ी, शीतल चीनी, दन्ती मूल, पुनर्नवा, चित्रक, पिप्पली मूल, कूठ, हल्दी, दारु हल्दी, चन्दन श्वेत, चन्दन लाल, जुन्देवेदस्तर, करंज, सरसों, बावची, पनवाड़, वासा, नीम, पटोल, कौंच बीज, असगन्ध, सरल काष्ठ, प्रत्येक द्रव्य २ तोला लेकर यथाविधि पाक करें ।

उपयोग—वातिक, श्लैष्मिक, वात श्लैष्मिक तथा वातरक्त में उपयोगी है ।

विडंगादि तैल—तिल तेल ४ सेर, कल्क द्रव्य—विडंग, मरिच, सोंठ, चित्रक, देवदारु, आक की जड़, एलवालुक, पांचों नमक सब मिलाकर १ सेर लेकर १६ सेर जल में पाक करें । मात्रा–६ मासा । अनुपान–गाय दूध ।

उपयोग—वातिक श्लीपद में, पुरातन श्लीपद में वेदना होने पर मलें और पीने को दें ।

गन्धर्व हस्त तैल—एरण्ड तेल ४ सेर, क्वाथ द्रव्य–एरण्डमूल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, सोंठ १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, जौ ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, गोखरू १६ सेर, कल्क द्रव्य–एरण्डमूल ३२ तोला, आर्द्रक २४ तोला, लेकर पाक करें । मात्रा–१/२ से १ तोला ।

उपयोग—आंत्रवृद्धि रोग में मलबन्ध रहने पर लाभ होता है ।

षड्विन्दु तेल—काले तिलों का तेल ४ सेर, क्वाथ द्रव्य—बकरी का दूध ४ सेर, भृंगराज (भांगरे) का रस १६ सेर, कल्क द्रव्य–एरण्डमूल, पित्तपापड़ा, सौंफ, जीवन्ती,

रास्ना, सैन्धव, दालचीनी, विडंग, मुलेहठी, सोंठ, प्रत्येक द्रव्य सम भाग; मिलित १ सेर लेकर तेल पाक करें।

उपयोग—सब प्रकार के शिरो रोग तथा प्रतिश्याय में उपयोगी है। इसको नस्य और मर्दन में बरतें।

द्राव्यादि तेल—तिल तेल ४ सेर, क्वाथ द्रव्य–दारु हल्दी, १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दशमूल मिलित १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, मुलेहठी १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, केले का रस १६ सेर, कल्क द्रव्य—कूठ, वच, सहजन बीज, सौंफ, रसौंत, देवदारु, यवक्षार, सर्जक्षार, विड्लवण, सैन्धव, प्रत्येक द्रव्य सम भाग, मिलित १ सेर लेकर तैल पाक करें।

उपयोग—कर्णशूल, कर्णनाद, बधिरता तथा पूतिकर्ण में उपयोगी है।

बकुलादि तैल—तिल तैल ४ सेर, कल्क द्रव्य–मौलसरी के कच्चे फल, लोध, भिण्टीतीली, अमलतास के पत्ते, वन तुलसी (मरुवा), शालवृक्ष की छाल, मौलसरी की छाल, पीतशाल विजयसार की छाल –प्रत्येक द्रव्य सम भाग-मिलित २ सेर, क्वाथ द्रव्य–मौलसरी से लेकर पीतशाल तक लिखे नौ द्रव्यों को १२॥ सेर लेकर ६४ सेर जल में क्वाथ करके १६ सेर बचायें, इससे तैल सिद्ध करें।

उपयोग—दाँतों को दृढ़ करने में अत्यन्त उपयोगी है। इसको मुख में धारण करना चाहिये।

तुम्बी तेल—सरसों का तैल ४ सेर, पकी कड़ुवी तुरई का रस १६ सेर, कल्क द्रव्य—विडंग, सैन्धव यवक्षार, वच, रास्ना, चित्रक, सोंठ, मरिच, पिप्पली और हींग प्रत्येक द्रव्य सम भाग–मिलित १ सेर, मिलाकर पाक करें।

उपयोग—वातिक, श्लेष्मिक गलगण्ड पुराना होने पर वेदना, कण्डू रहती हो तो प्रातः इसका नस्य लें।

बिल्व तेल—तिल तेल १ सेर, बेलगिरी कच्ची कूटकर ८ तोला, बकरी का दूध ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, तैल पाक करें।

उपयोग—बाधिर्य, कर्णस्राव तथा पूतिकर्ण में उपयोगी है।

पानक लवण लेप-धूम

पानक शर्बत

सामान्यतः सब शर्बत बनाने के लिये रस, क्वाथ या अर्क से आधी शर्करा या चीनी लेनी चाहिए। इसको द्रव्य में घोलकर अग्नि पर इतना गरम करें कि एक तार की चासनी बन जाये (तार से अभिप्राय यह है कि गरम घोल में से थोड़ा सा लेकर दो अंगुलियों में

जल्दी-जल्दी से चलायें जब उनमें एक तार-सा बनने लगे तो उसे एक तार कहते हैं।) पकते समय इसमें एक मासा (एक सेर द्रव में–१ मासा) निम्बू का सत (टार्टरी) डाल देना चाहिए। इससे शर्बत पीछे जमता नहीं।

इस विधि से अनार, जम्बीरी तथा शर्बत बनाये जाते हैं। बनप्सा का शर्बत बनाने के लिए बनप्सा का क्वाथ करना होता है।

शर्बत कल्पना से अभिप्राय यही है कि वस्तु का गुण मधुर रस में लेकर रोगी को दिया जा सके। कई बार स्वाद को ठीक करने, सुधारने की दृष्टि से शर्बतों का उपयोग होता है। ब्राह्मी शर्बत में ब्राह्मी का उपयोग उतना गुण नहीं करता, जितना कि इसकी शीतलता लाभ करती है।

लवण

अर्क लवण—सैन्धव १ भाग, अर्क पत्र हरे, १ भाग, इनको मिट्टी की हांडी में या कढ़ाई में रखकर अन्तर्धूम विधि से जलायें।

उपयोग—प्लीहा के बढ़ने तथा शूल में उपयोगी है।

नारकेल लवण—पानी से भरे पके नारियल की ऊपर की जटा हटाकर इसकी आँख में चाकू से छेद करके–उसमें १० तोला नमक सैन्धव डाल दें। छेद को बन्द करके इस पर कपड़मिट्टी करके, सुखाकर पुट दे दें। जलने के पीछे ठण्डा होकर नारियल की गिरी और लवण को लेकर पीस लें। मात्रा–८ से १६ रत्ती।

उपयोग—परिणाम शूल तथा पित्ताश्मरी शूल में उपयोगी है।

निर्देश–कई वैद्य नारियल से पानी निकाल देते हैं। पानी नारियल में रहना चाहिए। अन्यथा पानी वाला नारियल लेने की आवश्यकता ही नहीं। कपड़मिट्टी भी न बरतें इसमें केवल नमक मिलता है। कपड़मिट्टी करने से गिरी नहीं छिलका मिलता है। कच्चे नारियल में—पानी वाले नारियल में गिरी बनती ही नहीं। इस लिये नमक ही लेना उत्तम है, जिसका पाक नारियल के जल में हुआ हो।

अभयालवण—फरहद की छाल, ढाक की छाल, अरणी की छाल, श्वेत पुनर्नवा, गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, करञ्ज, हरफा रेवड़ी, कूडे की छाल, कड़वी तुरई, पुनर्नवा रक्त, इनको हांडी में रख कर तिलनाल की अग्नि से (मन्द अग्नि से) भस्म करें। इस भस्म को १ सेर १० छटांक लेकर १ मन १२ सेर पानी में घोल कर कलई वाले पात्र में पाक करें। जब पानी आधा रह जाये, तब उतार कर छान लें। इसमें सैन्धा नमक ६४ तोला, गोमूत्र १२ सेर १३ छटांक मिलाकर फिर अग्नि पर पाक करें। जब गाढ़ा

हो जाये, तब इसमें जीरा, त्रिकटु, हींग, अजवायन, पुष्कर मूल, कचूर प्रत्येक ४ तोला चूर्ण के रूप में मिलायें। मात्रा–२ मासा।

उपयोग—अश्मरी, आनाह, प्लीहोदर, तथा यकृद् रोग में उपयोगी है।

वज्र क्षार—सामुद्र नमक, सैन्धव नमक, कांच लवण, यवक्षार, सैन्धा नमक, सुहागा,, सर्जक्षार, इनको सम भाग लेकर आक के दूध से ३ दिन, सेहण्ड के दूध से ३ दिन भावना देकर धूप में सुखा लें। इसे आक के पत्तों में लपेटकर हाँडी में बन्द करके, मन्द अग्नि से अन्तर्धूम विधि से (हाँडी का मुख बन्द करके) जलायें। इस क्षार औषध को बाद में निकाल कर इसमें सोंठ काली मिर्च, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आँवला, अजवायन, जीरा, चित्रक, सब का मिलित चूर्ण, क्षार के बराबर मिला दें। मात्रा–१ मासे से ३ मासा। अनुपान–गरम पानी या छाछ के साथ।

उपयोग—प्लीहोदर, शूल, आनाह, तथा उदावर्त्त में उपयोगी है।

अग्निमुख लवण—रक्त चित्रक, हरड़, बहेड़ा, आँवला, दन्ती, निशोथ, कूठ, प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग, सबके बराबर सैन्धव लवण। सम्पूर्ण को स्नुही क्षीर से भावना देकर, स्नुही के काण्ड में भरकर, पुट पाक विधि से मिट्टी का लेप करके इसको जलायें। जब जल जाये तो इसको ५ रत्ती गरम जल से दें।

उपयोग—कोष्ठवद्धता तथा विष्टम्य में उपयोगी है।

लेप

शांग लेप—शिरीष की छाल, मुलेहठी, तगर, लालचन्दन, इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारु हल्दी, कूठ, गन्धवाला प्रत्येक द्रव्य सम भाग लेकर बारीक चूर्ण करके घृत में मिलाकर लेप करें।

उपयोग—विसर्प, कुष्ठ तथा शोथ में घी से लगायें।

पुनर्नवादि लेप—पुनर्नवा, सहजन की छाल, देवदारु, वेल छाल, श्योनाक छाल, पाढल छाल, गम्भारी छाल, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू और सोंठ इन सब को सम भाग लेकर पीस कर –गरम कर के लेप करें।

उपयोग—पकाने के लिए या शोथ को कम करने के लिये इसका लेप किया जाता है।

पंचवल्कल लेप—बट छाल, पीपल, गूलर, पिलखन, वकुल (मौलसरी) इन वृक्षों की छालों को सम भाग लेकर दूध के साथ पीसकर घी में मिला कर लेप करें।

उपयोग—विसर्प, छोटी छोटी पैत्तिक फुंसियाँ होने पर दाह में तथा वृद्धि रोग में उपयोगी है।

बाकुची तेल—बाकुची, हरताल, मैनसिल, मरिच—इनको सम भाग लेकर गोमूत्र में पीस कर लेप करें।

उपयोग—श्वित्र तथा दाद में उपयोगी है।

दद्रुघ्न लेप—गन्धक, जांगल, हरताल, मैनसिल, सुहागा, इनको घी में मिलाकर लेप करें।

उपयोग—दद्रु में इसका उपयोग होता है।

रसादि लेप—पारा, जीरा, काली जीरी, हल्दी, आँवाहल्दी, काली मिर्च, सिन्दूर, गन्धक, मैनसिल सब वस्तुयें समान भाग लें। इसको घी या वैजलीन में मिला कर लगायें।

उपयोग—पाभा, कण्डू, दद्रु, तथा विचर्चिका में उपयोगी है।

तुत्थमलहर—दस तोला सिक्थ तैल, २० रत्ती नीलाथोथा मिलायें—३ घण्टे मिलाकर रगड़ें।

उपयोग—पाभा तथा खाज में।

वर्त्ति

चन्द्रोदय वर्त्ति—हरड़, वच, कूठ, पिप्पली, मरिच, बहेड़े की मज्जा, शंखनाभि, मैनसिल इनको सम मात्रा में लेकर बकरी के दूध से मर्दन करके वर्त्ति बनायें।

उपयोग—इस वर्त्ति को घिसकर जल में या मधु में लगाने से (उत्तम है कि दही के खट्टे पानी में घिसें) तिमिर, अधिमांस, कण्डू, आदि रोग नष्ट होते हैं।

नेत्रबिन्दु—गुलाब जल २ तोला, अफीम ४ मासा, रसौंत ४ मासा, मधु ३ मासा इनको मिला लें।

उपयोग—नेत्राभिष्यन्द में उपयोगी है।

तुत्थद्रव—अर्क गुलाब, या परिस्रुत जल दो तोला, तुत्थ २ रत्ती मिला लें। कपड़े से छान लें।

उपयोग—नेत्र में खाज तथा रोहे होने पर बरतें। दूषित व्रणों को धोयें।

कुमारिका वर्त्ति—तिल फूल ८० संख्या में, पिप्पली तण्डुल संख्या में ६०, चमेली के फूल ५०, मरिच १६ इनको एक साथ रगड़ लें।

उपयोग—अर्म-फूले में उपयोगी है।

चन्द्रप्रभा वर्त्ति—रसौत, सहजन बीज, पिप्पली, मुलेहठी, बहड़े की गिरी की मज्जा, शंखनाभि भस्म और मैनसिल प्रत्येक द्रव्य सम भाग लेकर बकरी के दूध से मर्दन करें। फिर वर्त्ति बनायें।

उपयोग—प्रतिदिन काम में लाने योग्य, काच, तिमिर, अधिमांस तथा अर्भ में उपयोगी है।

दारुषट्क लेप—देवदारु, सोंठ, कूठ, अजवायन, हींग, सैन्धव, प्रत्येक द्रव्य १ छटांक लेकर कांजी या खट्टी छाछ में पीस कर गरम करके सूजन पर लगायें।

उपयोग—आध्मान, सूजन, शोथ, एपैन्डीसाईटिस तथा विद्रीध में उपयोगी है।

फल वर्त्ति—मैनफल, पिप्पली, कूठ, वच, सरसों पीली—प्रत्येक द्रव्य सम भाग लें। सबके बराबर गुड़ तथा उचित परिमाण में दूध मिलाकर पीस लें। इसकी वर्त्ति बनायें।

उपयोग—अलसक, विलम्बिका रोग में आध्मान प्रबल होने पर, मल-मूत्र का अवरोध होने पर बरतें।

अगर्वादि लेप—अगरु, सरल (चीड़),कूठ, देवदारु और सोंठ इनका सूक्ष्म चूर्ण सम भाग लेकर गोमूत्र और कांजी या छाछ में लेप करके गुनगुना करके बरतें।

उपयोग—सूजन में वेदना होने, पार्श्व शूल, शिरः शूल, उदर शूल वृक्क शूल तथा वृद्धि रोग में उपयोगी।

मनःशिलादि धूम—मनःशिला को घिसकर या बारीक सूक्ष्म चूर्ण बनाकर इसको बेर के पत्तों पर लगा दें। इन पत्तों को धूप में सुखाकर चूर्ण बना लें।

उपयोग—कास या श्वास का वेग प्रबल होने पर इस चूर्ण को जला कर रोगी को धुआं दें (जिस प्रकार से स्ट्रामेनशियम के पत्तों को शोरा-पोटाशियम नाईट्रेट के घोल में भिगो कर सुखाकर धुवाँ लेते हैं)। बहुत वेग सहन न हो तो थोड़ा सा घी डाल लें या धूम देने के पीछे दूध में घी डाल कर पिलायें।

रोगानुसार औषधि संकेत

योगों के साथ में उपयोग विधि देने का यत्न किया गया है फिर भी कुछ योग रह गये हैं, जिनके साथ रोग का उल्लेख नहीं हुआ। सुगमता के लिए यहाँ पर रोगानुसार योग संग्रह किया गया है। इसमें भी प्रधानतः चिकित्सा में उपयोगी योगों का ही नाम निर्देश किया गया है।[1]

ज्वर औषध

सामज्वर में—मृत्युंजय, त्रिभुवन कीर्त्ति रस, मृत्युंजय काला, हिंगुलेश्वर,

१. अधिक देखने के लिए मेरी लिखी—आयुर्वेदिक चिकित्सा मार्गदर्शिका (आयुर्वेदिक गाईड) देखें। प्रकाशन-मोतीलाल बनारसीदास, नेपाली खपरा, वाराणसी

जयावटी, महा ज्वरांकुश, कफकेतु, कस्तूरी भैरव रस, कस्तूरी भूषण। पंच मूलादि कषाय, किरातादि क्वाथ, गुडूच्यादि क्वाथ पंचभद्र क्वाथ।

सन्निपात ज्वर में—मृत्युंजय, अघोर नृसिंह रस, कस्तूरी भैरव, महालक्ष्मी विलास, चतुर्भुज रस, कस्तूरी भूषण।

विषम एवं जीर्ण ज्वर में—चन्दनादि लोह, पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लोह, विषम ज्वरान्तक लोह, सर्वतो भद्र रस, बृहत् चिन्तामणि रस; सर्व ज्वर हर लोह, जय मंगलरस, ज्वर संहार चूर्ण (लाल गुड़ा),सुदर्शन चूर्ण, पटोलादि क्वाथ, भार्ग्यादिक्वाथ, क्षीर षट्पलक घृत, दशमूल षट्पलक घृत, अंगारक तेल,लाक्षादि तेल,किरातादि तेल, अगार्वादि तैल।

ज्वराति सार औषध

ह्रीवेरादि क्वाथ, नागरादि क्वाथ, सिद्ध प्राणेश्वर, प्राणेश्वर, कनक सुन्दर, महागन्धक, आनन्द भैरव, संजीवनी बटी।

प्लीहा यकृत औषध

अर्कलवण, रोहितकारिष्ट, रोहितकादि चूर्ण, प्लीहार्णव रस, रोहितक लौह, यकृदरि लौह, लोकनाथ रस, वृहत् लोकनाथ रस, गुड़ पिप्पली, मानकादि गुटिका, चित्रकादि लौह, वर्धमान पिप्पली, वारिशोषण रस, शंख द्रावक, नवायस चूर्ण, आरोग्य-वर्धनी, त्रिकत्रयादि लौह, पुनर्नवा मण्डूर, लोह पर्पटी, पंचामृत पर्पटी, शोथकालानल।

उदर औषध

पुनर्नवाष्टक, (पुनर्नवादि क्वाथ), दशमूलादि क्वाथ, पटोलाद्य चूर्ण,इच्छाभेदी रस, जलोदरारि रस, दुग्धवटी, पिप्पलाद्यलोह।

शोथ औषध

फलत्रिकाद क्वाथ, पटोलादि क्वाथ, शोथकालानल रस, शुष्क मूलादि तेल।

कास चिकित्सा

पंचमूलादि क्वाथ, पुष्करादि क्वाथ, एलादि चूर्ण,तालीशादि चूर्ण, अगस्त्य हरीतकी कन्टकार्याद्यवलेह, वासावलेह, कास कुठार, चन्द्रामृत लोह; श्रृंगाराभ्र, लक्ष्मी विलास वसन्ततिलक रस, च्यवनप्राश, वासाचन्दनादि तेल।

राजयक्ष्मा औषध

यक्ष्मारि लोह, क्षयकेसरी, वसन्त मालती रस, मृगांक, राजमृगांक, वसन्ततिलक रस, काञ्चनाभ्र रस, वृहद कांचनाभ्र रस, नित्योदय रस, सार्वभौम रस, च्यवनप्राश, छागलाद्य घृत, वासा चन्दनादि तैल, एलादिगुटिका, वासावलेह, वासा कुष्माण्ड खांड।

रक्त-पित्त औषध

शतमूल्यादि लोह, चन्दनादि चूर्ण, एलादिगुटिका, धात्री लोह, समशर्कर लौह, वासावलेह, कूष्माण्डवलेह, कुटजाष्टक, वासा घृत।

अतिसार औषध

धान्यचतुष्क, धान्य पंचक, विल्वादि क्वाथ, रसोजनादि चूर्ण, कुटजाष्टक, कुटजावलेह, अमृतार्णवरस, सिद्ध प्राणेश्वर, अग्नि कुमार, महागन्धक, गगन सुन्दर, जाति फलादि वटी, पीयूषवल्ली रस, दुग्धवटी, रस पर्पटी, लोह पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी विजय पर्पटी।

ग्रहणी रोग औषध

भास्कर लवण, अग्निकुमार रस, अमृतार्णव रस, नृपति वल्लभ, महाराज-नृपति वल्लभ, वृहत् पूर्ण चन्द्ररस, पीयूष वल्ली, लोह पर्पटी, स्वर्णपर्पटी, पंचामृत पर्पटी विजय पर्पटी, श्री मदनान्द मोदक, ग्रहणी मिहिर तैल।

अजीर्ण-अग्निमान्द्य, विसूचिका, अलसक औषध

बड़वानल चूर्ण, हिंग्वाष्टक चूर्ण, भास्कर लवण, हुताशन रस, अजीर्ण कण्टक रस, अग्नितुण्डी रस, शंख वटी, महाशंख वटी, सुकुमार मोदक, त्रिवृत्तादि मोदक।

अम्लपित्त औषध

गुडूच्यादि क्वाथ, दशांग क्वाथ, पटोलादि क्वाथ, पित्तान्तक रस, पानीयभक्त वटिका, अम्ल पित्तान्तक रस, सौभाग्यशुण्ठी मोदक, धात्री लोह, लीलाविलास रस, सितामण्डूर।

अर्शरोग की औषध

विजयचूर्ण, अग्निमुख लवण, प्राणदा गुटिका, चन्द्रप्रभा गुटिका, अर्श कुठार रस, कुटजावलेह, कुटजाष्टक, शूरण मोदक, अभयारिष्ट, कांकायन वटी, श्री वाहुशाल गुड़, कासीसादि तैल।

कृमिरोग चिकित्सा

विडंगादि चूर्ण, पलाशादि चूर्ण, कृमिमुद्‌गर रस, विडंग लोह, हरिद्राखण्ड।

हिक्का-श्वास चिकित्सा

शृंग्यादि चूर्ण, दशमूल क्वाथ, भार्ग्यादि क्वाथ, कन्टकार्याद्यवलेह, भार्गी गुड़, च्यवनप्राश, श्वास चिन्तामणि, श्वास कुठार रस, श्वासकास चिन्तामणि, वसन्त तिलक, कनकासिव, दशमूल षट्पल घृत, वासा चन्दनादि तेल, कफकेतु रस।

वातव्याधि चिकित्सा

रास्नासप्तक क्वाथ, रास्नादशमूल क्वाथ, माषबलादि क्वाथ, तगरादि क्वाथ, सूतिका क्वाथ, रसोन पिण्ड, नाराच चूर्ण, वैश्वानर चूर्ण, अश्वगन्धादि चूर्ण, वातारि गुग्गुलु, योगराज गुग्गुलु, महायोगराज गुग्गुलु, सिंहनाद गुग्गुलु, त्रयोदशांग गुग्गुल, पथ्यादि गुग्गुलु, शिवा गुग्गुलु, रसोनाष्टक, वातगजांकुश, वातारि रस, लक्ष्मी विलास, लघ्वानन्द रस, तालकेश्वर रस, चतुर्मुखरस, चिन्तामणि रस, योगेन्द्र रस, चिन्तामणि चतुर्मुख, वात चिन्तामणि वृहत्, रसराज रस, प्रसारणी तेल, नारायण तेल, माष तेल।

उन्माद-अपस्मार चिकित्सा

उनादवगज केशरी, कल्याण चूर्ण लक्ष्मीविलास, वातकुलान्तक, त्रैलोक्य चिन्तामणि, चैतस घृत, महा कल्याण घृत (पानीय कल्याण घृत), पैशाचिक घृत, चतुर्भुज रस, शतावर्यादि चूर्ण।

आमवात चिकित्सा

अमृतादि क्वाथ, रास्नादशमूल क्वाथ, वैश्वानर चूर्ण, योगराज गुग्गुलु, सैन्धवादि तेल, रसोन पिण्ड, शिवा गुग्गुलु—वातव्याधि की औषधियाँ।

वातरक्त चिकित्सा

पटोलादि क्वाथ, गुडूची क्वाथ, निम्बादि चूर्ण, कैशोर गुग्गुलु, त्रिफला गुग्गुलु, गुडूच्यादि लोह, विश्वेश्वर रस, द्वादसायस, पंचतिक्त गुग्गुलु घृत, महातिक्त घृत, गुडूची तेल, महापिण्ड तेल, गुञ्जाभद्ररस।

शूल रोग चिकित्सा

पटोलादि क्वाथ, शंखादि चूर्ण, चतुःसम चूर्ण, सामुद्राद्य चूर्ण, हरीतकी खण्ड, भास्कर लवण, शंखबटी, महाशंख बटी, धात्री लोह, नारिकेल खण्ड, सिता मण्डूर, शूल हरण योग, नारिकेल क्षार, फलवर्त्ति, वैश्वानर चूर्ण, इच्छाभेदी।

गुल्म रोग चिकित्सा

दन्तीहरीतकी, गुल्म कालानल, विद्याधर रस, त्र्यमण घृत, धात्री षट्पलक घृत।

हृद्रोग चिकित्सा

पुष्करादि चूर्ण, चिन्तामणि रस, विश्वेश्वरस रस, अर्जुन घृत, अर्जुनारिष्ट।

वृद्धि श्लीपद-चिकित्सा

हरीतक्यादि क्वाथ, वृद्धिवाधिका बटी, आमवातारिबटिका, शशिशेखर रस, सैन्धवादि तेल, गन्धर्व हस्त तेल, पिप्पल्यादि चूर्ण, नित्यानन्द रस, श्लीपद गजकेसरी, सौरिश्वर घृत, विडंगादि तेल।

शीतपित्त उदर्द चिकित्सा

नवकार्षिक योग, अमृतादि क्वाथ, हरिद्राखण्ड, आर्द्रक खण्ड, तिक्तक घृत।

उपदंश चिकित्सा

पटोलादि क्वाथ, निम्ब घृत, आगर धूमक तेल, शारिवादि क्वाथ, त्रिफला गुग्गुलु।

गलगण्ड अपची चिकित्सा

विकंकतादि लेप, शंखादि लेप, कांचनार गुग्गुलु, तुम्बी तेल, निर्गुण्डी तेल, गुञ्जाध तेल।

भगन्दर रोग चिकित्सा

खदिरादि क्वाथ, अमृतादि क्वाथ, नवकार्षिक गुग्गुलु, महातिक्तक घृत, सोमराजी तेल।

प्रमेह चिकित्सा

कुशावलेह, मेह कुलान्तक, शुक्र मातृका वटी, वंगेश्वर, स्वर्ण वंग, वृहद्वंगेश्वर रस, अपूर्व मालती वसन्त, वसन्त कुसुमाकर, चन्द्रप्रभा वटिका, सोमनाथ रस वृहत्, कालपूर्ण चन्द्र रस, तालकेश्वर रस, हेमनाथ।

मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात चिकित्सा

नाराच चूर्ण, चिन्तामणि रस, चतुर्मुख रस, योगेन्द्र रस, तारकेश्वेर रस, वरुणादि लोह, कुशावलेह, वरुणादि क्वाथ, कांकायन गुटिका।

अश्मरी चिकित्सा

वरुणादि क्वाथ, कुशावलेह, पाषाणभेद चूर्ण, चिन्तामणि रस, योगेन्द्र रस, वरुणादि लोह।

विसर्प विस्फोटक पिड़का चिकित्सा

अमृतादि क्वाथ, पटोलादि क्वाथ, दशांग लेप, पंचतिक्त घृत गुग्गुलु।

खसरा–मसूरिका चिकित्सा

लक्ष्मी विलास, कफ चिन्तामणि, कस्तूरी भूषण, अष्टांगावलेह, निम्बादि-क्वाथ, अमृतादि क्वाथ, वासादि क्वाथ, पटोलादि क्वाथ, खदिराष्टक, इन्द्रकला वटी, सर्वतोभद्र रस, पंचतिक्त घृत ।

कुष्ठ रोग चिकित्सा

ताल लेप, मंजिष्टादि क्वाथ, बृहत् मंजिष्टादि क्वाथ, अमृतादि गुग्गुलु, केशोर गुग्गुलु, विश्वेश्वर रस, माणिक्य रस, अमृतांकर लोह, मरिचादि तेल ।

शिरो रोग चिकित्सा

लक्ष्मी विलास, नारदीय लक्ष्मी विलास, दशमूल तेल, षड्विन्दु तेल, महालक्ष्मी विलास, भृंगराज तेल ।

नेत्र, कर्ण चिकित्सा

चन्द्रोदय वर्त्ति, चन्द्रप्रभा वर्त्ति, सप्तामृत लोह, त्रिफला घृत, महा त्रिफला घृत, विल्व तेल, शम्बूकादि तेल, दार्व्यादि तेल ।

मुख रोग चिकित्सा

दशन संस्कार चूर्ण , दन्तोद्भेदगदान्तक रस, कालक चूर्ण, पीतक चूर्ण, खदिरादि बटिका ।

स्त्री रोग चिकित्सा

रजःप्रवर्त्तनी बटी, कुमारिका बटी, दार्व्यादि क्वाथ, पुष्यानुग चूर्ण, अशोकारिष्ट, पत्रांगासव, पुष्कर लेह, प्रदरान्तक लोह, प्रदरारि लोह, नष्ट पुष्पान्तक रस, फल घृत, सितकल्याण घृत, कुमार्यासव ।

गर्भिणी रोग चिकित्सा

गर्भ चिन्तामणि, गर्भ विनोद रस, प्राणवल्लभ रस, भुवनेश्वर बटी ।

सूतिका रोग चिकित्सा

सूतिका दशमूल क्वाथ, देवदार्व्यादि क्वाथ, सूतिका विनोद रस, अष्टांगावलेह ।

शिशु रोग चिकित्सा

बाल चातुर्भद्रिका, दाड़िम चतुःसम, लवांगचतुःसम, महागन्धक ।

रसायन बाजीकरण योग

मकरध्वज, चन्द्रोदय मकरध्वज; मन्मथाभ्र रस, नारसिंह चूर्ण, मदनानन्द-मोदक, कामिनी विद्रावण रस, अकारकरभ वटी, सिद्ध मकरध्वज ।